वेदों में राष्ट्र का स्वरूप

EMBODIMENT OF NATION IN THE VEDAS



सी० एस० आई० आर० की पूल स्कीम के अन्तर्गत प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धान-कर्त्ता
डॉ० जातवेद त्रिपाठी
पूल आफीसर
वेद विभाग (सं० सं० वि० वि०)

मार्ग-निर्देशक
प्रो० युगल किशोर मिश्र
आचार्य एवं अध्यक्ष
वेद विभाग (सं० सं० वि० वि०)

१९९२

सरस्वती भवन पुस्तकालय को उपहार-स्वरूप समर्पित -

आलोक त्रिपाठी
5/1/93

वेदों में राष्ट्र का स्वरूप

EMBODIMENT OF NATION IN THE VEDAS



सी० एस० आई० आर० की पूल स्कीम के अन्तर्गत प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धान-कर्ता
डॉ० जातवेद त्रिपाठी
पूल आफीसर
वेद विभाग (सं० सं० वि० वि०)

मार्ग-निर्देशक
प्रो० युगल किशोर मिश्र
आचार्य एवं अध्यक्ष
वेद विभाग (सं० सं० वि० वि०)

१९९२

भूमिका

स्वाध्याय से वेद और प्रवचन द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों का अभिप्रेत रहा है। वेद का अध्ययन स्व का ही अध्ययन है, अपना ही विस्तार है। वेदों का अध्ययन सत्संग का सर्वश्रेष्ठ रूप है, क्योंकि अपौरुषेय वाणी सर्वथा निर्दोष होती है। हमें पृथ्वी पर बैठकर अपनी आँखें तो द्यौलोक की ही ओर टिकानी हैं। भौतिक विद्याओं की जानकारी का नाम ज्ञान है और अध्यात्म-शास्त्र के तथ्यों के ज्ञान का अभिधान वेद है। जहाँ मानव बाह्य-सम्पर्कों से विरत होकर अपने ही अन्दर निरत हो जाता है और कभी-कभी सान्द्रत्व में एकाग्र होकर प्रकाश के दर्शन करता है। उस वेद के मन्त्रार्थ त्रिधा हैं। स्थूल (भौतिकतापरक), 2- सूक्ष्म(आधिदैविक), 3- पर(आध्यात्मिक)।

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को अच्छी प्रकार जानता है पर कभी-कभी वह अपने प्रयोजनवश दुराग्रह व अविद्यादि दोषों के कारण सत्य को छोड़ असत्य में निरत हो जाता है। वेद पुन: उसे सही रास्ते पर ले आने में समर्थ है।

आज के लोग हिन्दी-माध्यम से पढ़ने के इच्छुक रहते हैं इसीलिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध हिन्दी में ही लिखा गया है।

इस ग्रन्थ में राष्ट्र के निम्न स्वरूपों का विवेचन किया गया है-- 1- भौगोलिक, 2- सामाजिक, 3- आर्थिक, 4- राजनैतिक, 5- धार्मिक व 6- वैज्ञानिक।

समाज और अर्थ, राजनीति का निर्माण करते हैं अत: राजनीति का प्रकरण इन दोनों के बाद रखा गया है। धर्मरूपी आधार पर विज्ञान का विकास हो अत: धर्म को विज्ञान के पूर्व रखा गया है।

इस प्रबन्ध के सम्पादन में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि मेरे मार्ग-निर्देशक प्रो० युगल किशोर जी मिश्र सज्जनता व उदारता की प्रतिमूर्ति हैं तथा उन्होंने मेरे लिए कहा कम है किया बहुत अधिक है। मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

प्रबन्ध-रचनाकाल में मुझे अपनी विदुषी माता, प्रभामयी श्रीमती प्रभावती देवी से भी पुनीत प्रेरणा मिली है। स्वर्गस्थ पिता वेदविद्वान् आचार्य प्रभामिश्र जी अमूर्त रूप में मेरी प्रेरणा के अजस्र स्रोत रहे हैं। सुश्री सुषमा, अर्चना (भगिनीद्वय) तथा डॉ० अत्रिदेव त्रिपाठी ने भी सदा मेरा उत्साह-संवर्द्धन किया है।

परमपूज्य पं० यामिनीभूषण त्रिपाठी, जो मेरे अग्रज हैं, उनमें मेरी पितृवत् श्रद्धा है तथा उनकी वाणी मेरे लिए दिव्य-वाणी(वेद) की भाँति पूज्य रही है।

यज्ञमयीपत्नी डॉ० प्रमिला तिवारी तथा मेरे पुत्रद्वय चि० धर्मकीर्ति व ज्योत्स्ना ने भी मुझे सदा माधुर्य से सराबोर किया है अन्यथा सर्वत्र मात्सर्य के वातावरण में ईर्ष्या-द्वेष मोल लेने तथा अपने आर्थिक लाभ की मृग-मरीचिका में भटकने वाले लोग नीरसता के सिवा आकण्ठित भी क्या कर सकते हैं ?

अन्त में परम पिता परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद है जिनकी कृपा से ही मुझे ये सब विचार मिले हैं।

जातवेद त्रिपाठी

वैशाखी पूर्णिमा
संवत् 2049

(डॉ० जातवेद त्रिपाठी)
पूल आफीसर,

संक्षिप्तिका

पृष्ठसंख्या

पृष्ठसंख्या

प्रथम अध्याय

वेदों में राष्ट्र का भौगोलिक स्वरूप

वेदों में राष्ट्र का भौगोलिक स्वरूप

उपोद्घात

वेद-परिचय

वेद शब्द विद् धातु से ज्ञान, सत्ता, लाभ और विचारणा अर्थों में घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिसका मुख्य अर्थ है "ज्ञापक"। "यजु: इति एष हि इदं सर्वं युनक्ति। साम इति छन्दोगा:, एतस्मिन् हि इदं सर्वं समानम्, उक्थम् इति बह्वृचा:, एष हि इदं सर्वं उत्थापयति। यातु: इति यातुविद: एतेन हि इदं सर्वं यतम्" (शत0, 10·3·6·20)। यह धर्म का प्रसव है, यज्ञ-क्रतु का प्रभव है, काम का प्रवर्तक है तथा इसका पर्यवसान मोक्ष में होने से यह धर्मार्थकाममोक्ष का ज्ञापक है। दयानन्द सरस्वती जी ऋ0भा0 भू0, पृ0 25 पर लिखते है "विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्या: सर्वा: सत्यविद्या यैर्येषु वा, तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा:।" अत: वेद सब सत्यविद्याओं का अधिष्ठान है। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है। "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै"(श्वेताश्वतर)। वेद सर्वजनहिताय व सर्वजनसुखाय हैं --

> "यथेमां वाचं कल्याणीं आवदानि जनेभ्य: ।
> ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ।"
>
> यजु0 26·2

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (आपस्तम्ब)

"God is holy, all knowing,pure in nature and just merciful etc in quality.The book that describes God exactly as he is, is God's not others, That book is God's in which there is nothing against laws of nature."

दयानन्द के कथन का अंग्रेजी रूपान्तर.

वेद संख्या में चार हैं -- ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम्वेद तथा अथर्ववेद। "यथा प्रदीप्तात् पावकात् विस्फुलिंगा: व्युच्चरन्ति, एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेद: साम्वेदोऽथर्वांगिरस इति"

(शत0ब्राह्मणका0 14)

अन्तर्हित वेदों को मन्वन्तर में ऋषियों ने अपने तप से इतिहास-सहित प्राप्त किया -- "युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षय:। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता: स्वयम्भुवा"। "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे।" (पुरुष सूक्त)। "कालादृच: समभवन् यजु: कालादजायत" (अथ0, 19·54·3) "एक एव पुरा वेद: प्रणव: सर्ववाङ्मय:" (भागवत, 9·14·49)। वैसे तो "अनन्ता वै वेदा:" (तै0ब्रा0)। आजकल ऋग्वेद की शाकल-संहिता ही उपलब्ध है। यजुर्वेद भी शुक्ल और कृष्ण के भेद से द्विधा है। इनमें शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ माध्यन्दिन और काण्व-संहिताएँ उपलब्ध हैं तथा कृष्ण यजुर्वेद की तीन संहिताएँ तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक उपलब्ध होती हैं। साम्वेद की दो शाखाएँ हैं कौथुम और जैमिनीय। तथा अन्तिम अथर्ववेद की शौनक और पैप्पलाद शाखाएँ प्राप्त होती हैं। गोपथ के अनुसार यज्ञ की 21 संस्थाएँ हैं "वेदा: यज्ञार्थं प्रवृत्ता:" ऐसा मानकर कुछ लोग वेदों में 21 यज्ञों का वर्णन मानते हैं यथा -- अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, आग्रायण, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, सायंहोम, प्रातर्होम, स्थालीपाक, नवयज्ञ, वैश्वदेव, पितृयज्ञ और अष्टका"। "स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत्" (गो0पू0, 1·12)। "सप्तसुत्या: सप्त च पाकयज्ञा: हविर्यज्ञा: सप्त तथैकविंशति:" (गो0पू0, 5·25)। अत: 21 यज्ञों की संस्था निम्नवत् हुई --

1- पाकसंस्था -- अष्टका, स्थालीपाक, मासिकश्राद्ध, पिण्डपितृश्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी ।

2- हवि:संस्था-- अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि,

निरूढ पशुबन्ध, सौत्रामणि ।

3- सोमसंस्था — अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, आप्तोर्याम, वाजपेय ।

गोपथ(5·7) में इन यज्ञों का क्रम बताया गया है -- "अथातो यज्ञक्रमा ---- ---- "। सायण तीनों वेदों को आमुष्मिक फलप्रदाता तथा अथर्ववेद को दोनों लोकों में फलदाता बताते हैं —

"व्याख्याय वेदत्रितयं आमुष्मिकफलप्रदम् ।

ऐहिकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति ।"

वेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्ञानां हृदये संबभूव' (गोप. 1.9)। 'अथर्वमंत्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति' (अथ. परि. 2.

वेदों की भाषा संस्कृत है जिसके बारे में कहा है --

"Sanskrit the greatist language in the world, the most wonderful and the most perfect."

Max Muller

"Without Sanskrit India will be nothing but a bundle of linguistic groups".

K.M. Munshi.

वेद का कोई कर्त्ता उपलब्ध न होने से चारों वेद अपौरुषेय हैं "न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्" (सांख्य०)। "नैयायिकानां मते तु वेदा पौरुषेयाः, परमेश्वरोऽपि पुरुष एवेति तन्निष्पादितानां वेदानां पौरुषेयत्वम्"।

"वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतो परः ।

शिष्टाचीर्णः परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनः।"

(महाभारत, अनुशासनपर्व, 141·65)

तथा ऋग्वेद को दुनियाँ का सर्वप्राचीन पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है। जिस प्रकार माता-पिता अपने बच्चे को बताते हैं कि हमीं तुम्हारे माता-पिता हैं तद्वत् परमात्मा भी अपने जीवात्माओं को स्वयं ही वेद के माध्यम

से अपना परिचय देते हैं। अत: कहा भी है "नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्"। "श्रुतिप्रमाणको धर्म:" (हारीत)। वेद नित्य हैं अत: सार्वकालिक और सार्वभौम हैं, इन्हें सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि,वायु,आदित्य और अंगिरा इन चारों ऋषियों को प्रदान किया। वेद-विषयक मनु के कुछ श्लोक अध:प्रदत्त हैं जिनसे इनका महत्त्व प्रकट होता है। राजाराम मोहन राय लिखते हैं --

"Whatever law is inconsistent with the code of Manu, which is the substance of the Veda is really inconsistent with Veda itself and therefore inadmissible."

"ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्रा आथर्वणश्च ये ।
महर्षिभिस्तु तत्प्रोक्तं स्मार्तस्तु मनुरब्रवीत् ।" मेधातिथि ।

"The influence of the Manusmriti spread even beyond the confines of India, which is used as a law book in the Island of Bali" P.V.Kane,(History of Dharma shastra)

मनु और वेद

1- वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । (3.6)
2- धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति:। (2.13)
3- नास्तिको वेद-निन्दक: (2.11)
4- वेद: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन: (2.12)
5- श्रुतिस्तु वेदोविज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृति: (2.10)
6- वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्यन् द्विजोत्तम:। (2.166)
7- वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु (2.183)
8- वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् (3.2)

9- वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा (11·245)

10- आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ (12·106)

11- योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः। (2·168)

12- प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ।

13- वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते। (12·102)

14- पितृदेवमनुष्याणां वेदचक्षुः सनातनम् । (12·94)

15- वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे। (1·21)

16- वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च । (2·26)

17- भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ।

18- वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्। (2·97)

19- सेनापत्यं च राज्यं च --- वेदशास्त्रविदर्हति ।

20- या वेदविहिता हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे ।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ । (5·44)

21- अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यान्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रांजिघांसति । (5·4)

22- अनधीत्य द्विजो वेदानुत्पाद्य तथा सुतान् ।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः । (6·37)

23- कर्मयोगश्च वैदिकः

24- वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् । (4·148)

25- य: कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तित: ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स: । (2·7)

उपर्युक्त उद्धरणों से प्रेरित होकर हम भी वेद के शब्दों को प्रमाण मानते है - "यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्" (पतञ्जलि)। दयानन्द जी ने मन्त्रों की पञ्चधा परीक्षा बतायी है --

1- ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध न होना,

2- सृष्टिक्रम के विरुद्ध न होना,

3- आप्त पुरुषों अर्थात् धार्मिक, विद्वान, सत्यवादी और निष्कपट पुरुषों के उपदेश के अनुकूल होना ।

4- आत्मा की पवित्रता के अनुकूल होना,

5- प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विरुद्ध न होना ।

वेद के पढ़ने में स्त्री और शूद्रों का भी समान अधिकार है। ऋषियों ने वेद के मन्त्रों का दर्शन किया तथा उनके अर्थ का उपदेश किया। यास्क कहते हैं --- "साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवु:। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादु:। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नासिषु: वेदं च वेदाङ्गानि च" ।

वेदों के उपदेशार्थ उनका गम्भीर अनुशीलन परमावश्यक है, क्योंकि "बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरेदिति" । अत: वेदों के विषय में यह कहना समीचीन होगा कि "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्"।(म०भा०) वेद के ऋषि तथा ऋषिकाएँ निम्नवत हैं ---

ऋषि --- विश्वामित्र, वसिष्ठ, परुच्छेद, गृत्समद, अङ्गिरा, सोमाहुति, वत्रि, सुतम्भर, च्यवन, भेष, अर्चनाना, श्यावाश्व, सप्तवध्रि, एवय, भौम, आत्रेय, सत्यश्रवा, अवस्यु, पौर, बाहुवृक्त, श्रुतविद्, शंयु, पुरुमीढ़ल, अजमीढ़ल, ऋजिश्वा, अतियाज, द्वित, विश्वमना, स्थूलयूप, पुरु, अयास्य, आप्त्यत्रित,

कुत्स, नारद, अवत्सार, रेणु, ऋषभ, यम, वत्स, विश्वक, ताम्ब, पार्थ्य, मायव, वत्सप्रि, देवमुनि, हविर्धान, विवस्वान्, शंख, दमन, वसुक्र, अभितपा, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु, गय, कवष्, सुमित्र, बृहस्पति, जरत्कर्ण, वैश्वानर, नारायण, अरुण, शार्यात, अर्बुद, मुद्गल, अप्रतिरथ, दुर्मित्र, दिव्य, जमदग्नि, जैमिनि, द्युति, पृथु, बृहद्दिव, मधुच्छन्दा, मेधातिथि, कण्व, शुनःशेप, अजीगर्ति, हिरण्यस्तूप, आंगिरस, घोरकण्व, प्रस्कण्व कण्व, सव्य आङ्गिरस, मेधा गौतम, पराशर, शक्त्य, गौतम ^ रहूगण, कुत्स अंगिरस, कश्यप मारीच, ऋज्राश्व आम्बरीष, दैर्घतमस, परुच्छेद दैवोदासी, दीर्घतमस औतथ्य, अगस्त्य, विश्रान्ति अगस्त्य, कक्षीवान्, एता, तुवीति, दध्यङ् अथर्वा, दधीचि, गौतम, अत्रि, रेभ, भरद्वाज, कलि, वृश, स्यूमरश्मि, विमद, ऋतस्तुभ, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति, पुरुकुत्स, सदस्यु, त्रिशोक, खेल, अश्व, वश, परावृज, श्रुतर्य, नर्य, वन्दन, नमी, ऋभुगण, शर्यु, श्याव और वामदेव।

ऋषियों के सम्बन्ध में भर्तृहरि लिखते हैं --

"आविर्भूत प्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्, अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्नातिरिच्यते।
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेणचक्षुषा, ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते।

ऋषिकाएँ -- सूर्यासावित्री, घोषा काक्षीवती, सिकता विवावरी, इन्द्राणी, यमी वैवस्वती, दक्षिणा प्राजापत्या, अदिति, वाक् आम्भृणी, अपाला, आत्रेयी, जुहू ब्रह्मजाया, अगस्त्यस्वसा, विश्ववारा आत्रेयी, उर्वशी, सरमा, देवशुनी, शिखण्डिन्यौ अप्सरसौ, पौलोमी शची; देवजामयः इन्द्रमातरः, श्रद्धा कामायनी, नदी, सर्पराज्ञी, गोधा, शश्वती आंगिरसी, वसुक्रपत्नी, रोमशा ब्रह्मवादिनी, मातृनामा, देवजामयः।

वेद के भाष्यकारों में जो प्रमुख हैं, उनके नाम हैं --

ऋग्वेद -- स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीथ, माधवभट्ट, वेंकटमाधव, धानुष्कयज्वा, आनन्दतीर्थ, आत्मानन्द, सायण।

कृष्ण यजुर्वेद -- कुण्डिन, भवस्वामी, गुरुदेव, तथा क्षुर ।
शुक्ल यजुर्वेद -- उव्वट, महीधर ।
साम-भाष्य -- माधव, भरतस्वामी तथा गुणविष्णु।

सायण के भाष्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्री अरविन्द कहते हैं --

'Sāyana the great commentator, gives us a ritualistic and where necessary a tentatively mythical or historical sense to the Riko, very rarely does he put forward any higher meaning though sometimes he lets a higher sense come through or puts it as an alternative as if in despair of finding out some ritualistic or mythical interpretation. But still he does not reject the spiritual authority of the Veda or deny that there is a higher truth contained in the Riko --

Aurobindo in "Hymns to the mystic fire."

किन्तु दयानन्द जी का ऋग्वेद पर आंशिक और यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य नितान्त वैज्ञानिक है --

(a) "In the matter of vedic interpretation, I am convinced that whatever be the final complete interpretation, Dayanand will be honoured as the first discoverer of the night-clubs of Vedic education".

(b) "The words of the Veda could only be known in their true meaning by one who was himself a seer or mystic, from others the verses withheld their hidden knowledge".

Aurobindo

(c) "To Swāmi Dayānand everything contained in the Vedas was not only perfect truth, but he went one step further and, by their interpretation, succeeded in persuading others that everything worthknowing even the most recent inventions of modern science were alluded to in the Vedas; Steam Engine, Electricity, telegraphy and wireless, moconogram were shown to have been known at least in the germs to the poets of the Vedas."

Prof. Max Muller (Biographical Essays).

वेद के बारे में एक विदेशी विदुषी लिखती हैं —

"We have all heard and read about the ancient religion of India. It, the land of the great Vedas, the most remarkable works, containing not only religious ideas on a perfect life, but also facts, which all the Science proved true. Electricity, Radium, Electrons, Airships, all seem to be known to the Ṛṣis who found the Vedas".

Mrs. W. Willox

वेद की व्याख्या करने के लिए हमें वेद से ही प्रारम्भ करना होगा और वेद पर ही निर्भर करना होगा। -

अरविन्द (वेद रहस्य, भाग 1, पृ0 11)

"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद:"

(तै0सं0 की भा0भू0)

अत: "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म: षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"

(महा0भा0 आह्निक)

"मन्त्राणामेव वेदसंज्ञा न ब्राह्मणग्रन्थानामिति" - दयानन्द

वेद सप्ताक्षर है -- "सप्ताक्षरं वै ब्रह्मऽर्गित्येकाक्षरं यजुरिति द्वे। सामेति द्वेऽथ यदतोऽन्यद् ब्रह्मैव तद् द्व्यक्षरे वै ब्रह्म। तदेतत्सर्वं सप्ताक्षरं ब्रह्म" (शत०, 10·3·4·6)।

…: साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्यु शाखा। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाऽथर्वणो वेदः (महा० पस्पशाह्निक)

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत" (म०भा०)

वेद में सभी विधियों का विकल्प या व्यत्यय हो जाता है - "सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते"। तथा वेद में, लुङ्, लङ् और लिट् सभी कालों में प्रयुक्त होते हैं (अष्टा०, 3·4·6)।

ऋग्वेद में 10 मण्डल, 1028 सूक्त और करीब 10,500 मन्त्र हैं। शुक्ल यजुर्वेद में मन्त्रों की संख्या लगभग 2,000 है। साम में मन्त्रों की संख्या 1600 से कुछ अधिक है तथा अथर्व में करीब 6,000 मन्त्र हैं।

वेदाङ्ग और उपवेद

सायण कहते हैं "अतिगंभीरस्य वेदस्य अर्थमवबोधयितुं शिक्षादीनि षडङ्गानि प्रवृत्तानि" (सायण, ऋ०वे०भा०भू०)। वेदाङ्ग छः हैं -- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष। शिक्षा ग्रन्थों में उदात्त, स्वरितादि स्वरों और वर्णोच्चारण के नियम बताए गए हैं। कल्प ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं -- श्रौत, गृह्य तथा धर्म। जिनमें कर्मकाण्ड सम्बन्धी विविध विधि-विधान प्रदर्शित हुए हैं। यथा श्रौतसूत्र में दर्शपूर्णमास आदि यज्ञों का विधि-विधान, गृह्यसूत्रों में गृह्य से सम्बद्ध यागों और विवाहादि संस्कार तथा धर्मसूत्र में चारों वर्णों व आश्रमों के विविध कर्तव्यों का उल्लेख हुआ है। व्याकरण लौकिक और वैदिक शब्दों की दृष्टि से रचा गया है जिसके रक्षा - ऊह-आगम-लघु और असन्देह प्रयोजन हैं। निघण्टु यदि शब्द-कोष हैं तो निरुक्त उन शब्दों की व्याख्याएँ हैं, निर्वचन हैं। सायण ने निरुक्त

की परिभाषा में कहा है -- "अर्थविबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्" तथा "एकैकस्य पदस्य सम्भाविता अवयवार्थां यत्र निःशेषेणो-च्यन्ते तन्निरुक्तम्"। निरुक्त के मूल में वेद और ब्राह्मण हैं। यास्क, गार्ग्य, दुर्ग और शाकपूणि इसके निर्वचनकर्ताओं में प्रसिद्ध हैं। पाद की व्यवस्था जहाँ अर्थ के अनुरोध से की जायेगी वहाँ छन्द का प्रयोजन होगा। अतः छन्द वेदों के आवरण हैं - "छन्दांसि छादनात्"। मुख्य वैदिक छन्द ये हैं -- गायत्री, उष्णिक्, ककुप्, अनुष्टुप्, बृहती, सतो बृहती, पुर उष्णिक्, पङ्क्ति, प्रस्तार पङ्क्ति, त्रिष्टुभ् और जगती। पिंगल का छन्दःशास्त्र इस दृष्टि से उत्कृष्ट ग्रन्थ है। यज्ञादि की दृष्टि से ऋतु, मास, नक्षत्र, वर्षादि के ज्ञान का उपाय ज्योतिष में हुआ है, "यो ज्योतिषं वेद स वेदयज्ञम्" (वेदाङ्ग ज्योतिष, 3)।

इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थवेद और गान्धर्ववेद ये 4 उपवेद हैं। नाट्यवेद, अश्ववेद तथा हस्त्यायुर्वेद का ज्ञान भी इन्हीं वेदों से निःसृत हुआ है। इसके अतिरिक्त छहों दर्शन (सांख्य- योग- न्याय- वैशेषिक- मीमांसा और वेदान्त) अर्थात् उपाङ्ग भी वेद से ही सम्बद्ध बताए जाते हैं।

वैदिक स्वर तथा अष्ट विकृतियाँ

वेदों में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन स्वर हैं। अनुदात्त में वर्ण के नीचे पड़ी लकीर, स्वरित में वर्ण के ऊपर खड़ी लकीर तथा उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगता। पर सामवेद में उदात्त के लिए संख्या 1, स्वरित के लिए 2, और अनुदात्त के लिए 3 संख्या का प्रयोग होता है। वेद के मन्त्रों के उच्चारण तथा उनकी सुरक्षा में कोई अन्तर कभी आ न पावे इसके लिए किए गए उपायों को विकृतियाँ कहते हैं, जो आठ हैं — जटापाठ, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन्। इनमें घनपाठ सबसे बड़ा है- उदाहरणार्थ — "ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा।" इसका क्रमपाठ

होगा — ओषधय: सम्। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन। सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।

वैदिक काल-निर्णय

वेदों के आविर्भाव काल को लेकर विद्वानों में गहरा मतभेद है, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे। यहाँ अथर्ववेद का एक मन्त्र द्रष्टव्य है जिसमें वेदों का आविर्भाव-काल वैवस्वत मनु का युग बताया गया है, जो आज से करीब 1,96,08,53,058 वर्ष पूर्व कहा जा सकता है। मन्त्र कुछ इस तरह है —

"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्म: ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनुमन्यन्तामहृणीयमाना:।।"
(अथ0, 8·2·21)

उपर्युक्त मत का आधार अपौरुषेयता पर आधृत है जबकि आलोचक-दृष्टि वाले इसे मनुष्य की कवित्व-शक्ति द्वारा प्रणीत मानते हैं जिनका मत निम्नवत् है —

मोक्षमूलर का मत

इनका कहना है कि बुद्ध के निर्वाण के बाद इस धर्म के प्रसार के समय वेदों का निर्माण हो चुका था। बुद्ध का निर्वाण 500 ई0पू0 की घटना है, तदनुसार वे मन्त्रों का निर्माण-काल 1500 ई0पू0 घोषित करते हैं।

मैक्डानल, अवेस्ता और ऋग्वेद की भाषा के साम्य के आधार पर इसकी रचना 1500 ई0पू0 से पीछे की स्वीकार करते हैं।

ज्योतिष-विषयक

शंकर बालकृष्ण दीक्षित, शतपथ की कृत्तिकाओं के तत्समय प्राची में उदय को आधार बनाकर इस ग्रन्थ के रचनाकाल के आधार पर इसका काल 3500 ई०पू० मानते हैं। इस समय कृत्तिकाएँ कुछ उत्तर की ओर उदित होती हैं। बालगंगाधर तिलक शतपथोक्त मृगशिरा युग से भी पूर्व पुनर्वसु नक्षत्र में वसन्त-सम्पात मानकर वेद का काल 6000 से 4000 ई०पू० तक मानते हैं। जैकोबी भी इसी तरह 4500 ई०पू० वेदों का काल मानते हैं।

दीनानाथ शास्त्री चुलेट ने भी अपनी गणना के आधार पर आज से तीन लाख वर्ष पूर्व वेदों का रचना काल मानने का स्तुत्य प्रयास किया है।

भूगर्भविज्ञानिक आधार

डॉ० अविनाशचन्द्र दास ने अपने "ऋग्वेदिक इण्डिया" नामक ग्रन्थ में ऋतुपरिवर्तन, समुद्रों और नदियों के अवस्थान के आधार पर ऋग्वेद का काल 75,000 वर्ष ई०पूर्व माना है।

परन्तु विदेशी विद्वानों में कुछ के विचार अति श्लाघनीय हैं। "वेद संसार में सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं और इनका समय नहीं निश्चित किया जा सकता। इनकी भाषा भारतीयों के लिए उतनी ही कठिन है, जितनी विदेशियों के लिए (श्लेगल)।

"वेदों का समय नहीं निश्चित किया जा सकता। वे उस तिथि के बने हुए हैं, जहाँ तक पहुँचने के लिए हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं है। वर्तमान प्रमाणराशि हम लोगों को उस समय के उन्नत शिखर पर पहुँचाने में असमर्थ है" (वेबर) ।

राष्ट्र क्या है ?

राष्ट्र का स्वरूप भूमि, जन और उसकी संस्कृति से मिलकर बनता है। जिसमें भूमि के निर्माणकर्ता देवगण हैं "सत्येनोत्तभिता भूमि:" । वे पृथ्वी पर मेघजल से वर्षा करते हैं तब उस पर लता-वनस्पतियाँ आदि का जन्म होता है। पृथ्वी के गर्भ में अमूल्य निधियाँ भरी पड़ी हैं। इसी में सागर, नदियाँ, जलचर, रत्न और पर्वतादि भरे पड़े हैं, अत: "नमो मात्रे पृथिव्यै"।

पृथ्वी पर समुत्पन्न जन-समुदाय "वैश्वानरं बिभ्रती भूमि:" (अथर्व0 12·1·6) पृथ्वी को माता मानकर पुत्र-भाव से इस पर विचरण करते हैं "माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:", "अदितिर्माता स पिता स पुत्र:" राष्ट्र का अन्तिम स्वरूपाधायक तत्त्व है संस्कृति, जिसके बिना जन की कल्पना कबन्धमात्र है। यही संस्कृति जन-मन का मस्तिष्क है, जीवन के विटप का पुष्प है। ज्ञान और कर्म के समन्वय से उत्पन्न प्रकाश है संस्कृति। जिस प्रकार जल के नाना प्रवाह नदियों के रूप में मिलकर समुद्र में एकरूप हो जाते हैं तद्वत् राष्ट्रीय जीवन की बहुविधियाँ भी राष्ट्रीय संस्कृति में समन्वय को प्राप्त हो जाती हैं। चाहे साहित्य हो, कला हो, नृत्य-गीत या आमोद-प्रमोद हो, इन विविध रूपों में राष्ट्रीय जन अपने-अपने मानसिक भावों को प्रकट करके आत्मा के विश्वव्यापी आनन्द भाव का प्रकटन करते हैं। यद्यपि बाह्य रूप से ये संस्कृति के बहिर्लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं पर आन्तरिक आनन्द की दृष्टि से उनमें एकसूत्रता है ही। सहृदय व्यक्ति के लिए प्रत्येक संस्कृति का आनन्द-पक्ष स्वीकार्य है।

"राष्ट्र" शब्द की निष्पत्ति राज् धातु से औणादिक प्रत्यय "ष्ट्रन्" जोड़कर होती है। 'वाचस्पत्यम्' में राष्ट्र का अर्थ जनपद किया गया है जिसकी पुष्टि में मनुस्मृति का श्लोक पर्याप्त होगा --

"अशासंस्तस्करान् यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥"
(मनु0, 9·254)

पाश्चात्य मनीषी मोनियर विलियम्स तथा पौर्वात्य संस्कृत मनीषी आप्टे ने राष्ट्र का अर्थ Kingdom, Realm, Empire, District, Territory, Country, Region, People, Nation तथा Subjects किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि "किंगडम" राज्य की पञ्च-प्रकृतियों में से एक है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हम उन्हीं तत्त्वों का सघन सर्वेक्षण करेंगे, जिनके द्वारा राष्ट्र एक सूत्र में ग्रथित है। वे तत्त्व मुख्यत: निम्न हैं —

प्रमुख तत्त्व

1- जनसमूह, 2- संस्कृति, 3- धर्म, 4- भाषा, 5- राजनीति, 6- अर्थ, 7- भूगोल आदि।

वस्तुत: राष्ट्र राजनैतिक सम्प्रभुता को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रतीक है "वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता:"। राष्ट्र एक भावना है, एक मन:संवेग है। राष्ट्रचेतना का फलक बहुत व्यापक है, वह राज्य की तरह ससीम नहीं है। राष्ट्र का एक संविधान व नैतिकता होती है। वेदों में जिस राष्ट्र की परिकल्पना की गई है, यदि वही सारे राष्ट्र का आधार बन जाये तो "यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्" का यह विचार बहुत ही सार-गर्भित होकर उतरेगा। इसी परिप्रेक्ष्य में हम प्रस्तुत विषय का विवेचन करेंगे। फिर वेद तो आरम्भिक संस्कृति है, "सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा"। रवीन्द्रनाथ का यह कथन देखें —-

"प्रथम प्रभात उदय तव गगने ।
प्रथम सामरव तव तपोवने ।"

अथर्ववेद 12·1·1 में सत्य, बृहत् (विकास), ऋत(निश्चित नियम) उग्रता (दुर्धर्ष शक्ति), दीक्षा (दक्षता और अनुशासन), तप(कठोर श्रम), ब्रह्म(ज्ञान) तथा यज्ञ (श्रेष्ठतम कर्म) इन आठों द्वारा मातृभूमि की सुरक्षा को सुनिश्चित किया गया है "आ राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्" (यजु०, 22·22)। "जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा ---- अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।" (यजु०, 10·14) ।

वेदों में राष्ट्र का भौगोलिक स्वरूप

(समुद्र- नदी- पर्वत और नगर)

(क) समुद्र

ऋग्वेदकालीन आर्य समुद्र से परिचय रखते थे या नहीं इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, प्राय: पाश्चात्य विद्वज्जनों में। कीथ और मैकडानल का कहना है कि पतवारों (Oars) को छोड़कर अन्य बातों यथा मस्तूल और छेने का वेदों में उल्लेख नहीं है अत: उसका अस्तित्व ही नहीं है। जिम्मर (Zimmer) का कहना है कि समुद्र का उल्लेख रूपकों के रूप में वेदों में हुआ है अत: समुद्री नौकायन और तद्गत व्यापारों का उस काल में सर्वथा अभाव रहा है (द्रष्टव्य वैदिक इण्डेक्स, 1·461)। किन्तु ऋग्वेद 6·61·2 तथा 7·95·2 में सरस्वती के समुद्र में जाकर तिरोधान होने का स्पष्ट वर्णन मिलता है तथा अन्यत्र ऋग्वेद 10·136·5 तथा 6 में पूर्व और पश्चिम के दो समुद्रों का उल्लेख मिलता है। अपर समुद्र को परावत् समुद्र भी कहते थे जिसमें सिन्धु नदी गिरती थी "उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापर:"। जिसे आजकल "अरेबियन सी" कहते हैं। तथा पूर्व समुद्र को अर्वावत् समुद्र भी कहते हैं जिसे राजपुताना का समुद्र माना जा सकता है जहाँ आजकल विस्तृत मरुभूमि में प्रशस्त बालुकाएँ लहर मार रही हैं।

मनुस्मृति में पूर्व और पश्चिम समुद्रों के मध्य को आर्यावर्त प्रदेश कहा है —

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ।"
(मनु०, 2·22)

ऋग्वेद 8·6·4 में "समुद्रायेव सिन्धवः" कहकर सिन्धु(नदी) तथा समुद्र का अन्तर स्पष्ट दिखाई दिया है। अन्यत्र "आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्रयत् समुद्रमीरयाव मध्यम्" (ऋ०, 7·88·3) का वर्णन भी मिलता है। ऋग्वेद 1·48·3 में एक व्यापारी द्वारा समुद्र में नाव भेजने का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद 1·71·7 में तथा 1·190·7 में सात महानदियों का समुद्र की ओर प्रवाहित होने का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद 1·47·6, 7·6·7 तथा 9·97·44 और अथर्ववेद 19·38·2 तथा 4·10·1,3 में समुद्रोत्पन्न वस्तुओं (मुक्तादि) का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद 1·116·5 "अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे । यदश्विनो ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्।" (ऋ०, 1·116·5) में तुग्र-पुत्र भुज्यु द्वारा एक सौ डाँड़ों वाले जहाज में बैठकर लम्बी समुद्र-यात्रा करने का सङ्केत प्राप्त होता है, जिसे डूबने से अश्विनौ ने बचाया था । कुछ विद्वान् कहते हैं कि सरस्वती से सम्बद्ध ऋग्वेद 7·95;96 में सरस्वत को नदीरूप पत्नियों का शक्तिशाली स्वामी (समुद्र) कहा गया है। यदि यह सत्य है तो इसे सप्तसिन्धु के दक्षिण में स्थित राजपूताना का समुद्र माना जा सकता है। शतपथ 5·20·127·7–10 में पूर्व और पश्चिम के समुद्रों का वर्णन प्राप्त होता है तथा सरस्वती की धारा जहाँ विलुप्त हुई थी, उस स्थान का नाम "विनशन" भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद में चार समुद्रों का वर्णन हमें प्राप्त होता है। "स्वायुधं स्ववसं सुनीथं, चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम्। चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः" (ऋ०, 10·47·2) "रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम, विश्वतः आ पवस्व सहस्रिणः" (ऋ०, 7·33·6)

इस मन्त्र में सप्तगु ऋषि द्वारा इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह चारों समुद्रों की सम्पत्ति लाकर उन्हें सौभाग्य-संयुक्त करें। अन्यत्र त्रित ऋषि सोमदेव से इन्हीं समुद्रों की अतुल सम्पत्ति की याचना करते हैं। एक जगह समुद्र से संवत्सर-निर्माण की बात कही गई है। "समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो ऽजायत" (ऋ0, 10·129·2)। इसके अतिरिक्त शतपथ0 1·6·3·11 में भी समुद्र का वर्णन उल्लेखनीय है। शतपथ ब्राह्मण में समुद्र को पृथ्वी का आवेष्टक कहा गया है और उसकी गति सूर्य की गति के अनुसार मानी गई है — "इमं लोकं सर्वत: समुद्र पर्यैति। —— इमं लोकं दक्षिणावृत्समुद्र: पर्यैति" (श0ब्रा0, 7·1·1·13) "तस्मादिमां ल्लोकान्त्सर्वत: समुद्र पर्यैति" (श0ब्रा0, 9·1·2·3)।

नदियाँ

आर्यों का विस्तार पश्चिम में अफगानिस्तान तक रहा होगा, क्योंकि पश्चिम में ही सिन्धु नदी की सहायक नदियाँ निम्नवत् बताई गई हैं —

कुभा (काबुल नदी), सुवास्तु (स्वात), क्रुमु (कुर्रम), मेहत्नु (केतु), गोमती (गोमल), तृष्टामा (गिलगिट), सुसर्तु (घोरबन्द) तथा रसा (पञ्जशिर)। "तृष्टामया प्रथमं यातवे सजू:, सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या। त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं, मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे" (ऋ0, 10·75·6) इसके अतिरिक्त पूर्व में सिन्धु नदी की पाँच सहायक नदियाँ इस प्रकार है—सुदूर पंजाब के पश्च-भाग में स्थित वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चेनाब), परुष्णी (रावी), आर्जिकीया (व्यास नदी) "अच्छा सिन्धुं मातृतमामयास विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म" (ऋ0, 3·33·3) और पंजाब के पूर्व भाग में स्थित शुतुद्रि (सतलज) नदी। "इमं मे गंगे यमुने सरस्वति, शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया।"

इसके अतिरिक्त अन्य नदियाँ हैं -- गंगा, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती और सरयू, सुषोमा(अटक जिले की सोहन नदी)। ऋग्वेद 7·18·19 में सुदास का युद्ध अज, शिग्रु और यक्षु से यमुना के तट पर होना बताया गया है। सरयू का ऋग्वेद में तीन बार (ऋ0, 5·30·18, 5·53·9 तथा 10·64·9) उल्लेख हुआ है। "सरस्वती सरयू: सिन्धुरूर्मिभि: महो महीरवसा यन्तु वक्षणी:" (ऋ0, 10·64·9)। जिसे जिम्मर वर्तमान में अवध की सरयू ही मानते हैं। इन नदियों में सरस्वती को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसे पापियों का समुद्धारक कहा गया है। "अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।" (ऋ0, 2·41·16)। तथा ऋग्वेद 7·36·6 में इसे नदियों की माता कहा है। ऋग्वेद 10·75 नदी सूक्त कहलाता है जिसमें सरस्वती को यमुना और शुतुद्रि की मध्यस्थ नदी माना गया है। सरस्वती नदी का सम्बन्ध नहुष-पुत्र ययाति तथा ययाति-पुत्र पुरु से रहा है। सरस्वती नदी का बहुश: वर्णन हमें ऋग्वेद में मिलता है -- "उतस्या न: सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनि:। वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम्" (ऋ0,6·61·7) "यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते। इन्द्रं व वृत्रतूर्ये ।" (ऋ0, 6·61·5) "सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरी: पयसा मा न आधक् ।" (ऋ0,6·61·14) "एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् (ऋ0,7·15·2) तथा तृत्सु-राज वाध्र्यश्व और उनके पुत्र दिवोदास से भी इस नदी का [illegible] का प्रभूत सम्बन्ध रहा है। इसके अतिरिक्त ऋ0, 3·23·4 में आपया नदी को सरस्वती की सहायक नदी के रूप में बताया गया है। "दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि" (ऋ0,3·22·4) इसके अतिरिक्त दृषद्वती (घाघरा) को भी सरस्वती की सहायक नदी कहा गया है। दृषद्वती (ब्रह्मपुत्र) और सरस्वती के मध्य के स्थान को मनुस्मृति में आर्यावर्त्त नाम से अभिहित किया गया है। "सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्तं प्रचक्षते।" (मनु0, 2·17) सदानीरा (गण्डकी) नदी का वर्णन शत0 1·4·1·17 में कोशल और विदेह राज्य की

सीमा के रूप में किया गया है, "सैषाप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा"। एक कथानक में सदानीरा का वर्णन इस तरह प्राप्त होता है - "स इमां सर्वां नदीरतिददाह सदानीरेत्युत्तराद् गिरेर्निर्धावति तां ह वै नातिददाह तां ह स्म तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्ति" (शत0, 1·4·4·14) इसके अतिरिक्त हमें मरुद्वृधा, श्वेत्या (ऋ0, 10·75·6), हरियूपीया (ऋ0, 6·27·5), यव्यावती (ऋ0, 6·27·6), वैशन्त (ऋ0, 7·33·2), श्वेत्यावरी वाष्ठिठा (ऋ0, 8·26·18), अञ्जसी (ऋ0, 1·104·4), कुलिशी (ऋ0, 1·104·4), वीरपत्नी (ऋ0, 1·104·4), अनितभा (ऋ0, 5·53·9), "मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत। मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्य स्मे इत् सुम्नमस्तु वः"। शर्यणावती (ऋ0, 8·64·11) "शर्यणावति कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे शर्यणावत्संज्ञे सरसि", वरणावती (अथ0, 4·7·1), शिफा (ऋ0, 1·104·3) तथा चिवाली (ऋ0, 4·30·12) नदियों के नाम भी दृष्टिगोचर होते हैं।

पृथ्वी की भाँति नदियों को भी माता कहकर सम्बोधित किया गया है (ऋ0, 7·36·6, 2·41·16, 1·46·2)। कहीं-कहीं उन्हें बहन भी कहा है (ऋ0, 3·33·9) तथा (ऋ0, 6·61·9) उनके जलों को मधुर और दिव्य कहा गया है (ऋ0, 3·7·2, 7·96·5) उन्हें मानव जीवन के लिए परम आश्रय बताया गया है (ऋ0, 7·95·5) तथा उनके संगमस्थल को आध्यात्मिक उपलब्धियों का महान् केन्द्र बताया गया है — "उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रोऽजायत" (यजु0, 26·15)। इसके अतिरिक्त सिंचाई के लिए भी नदियों की जलधाराओं का श्रेय स्वीकारा गया है (द्र0, ऋ0, 3·33, 7·36·6, 6·61·2-14, 7·96·2-3)। प्रैयमेध ऋषि एक जगह नदियों की स्तुति करते हुए कहते हैं "अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः। राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि।" (ऋ0, 10·75·4)।

पर्वत

भौगोलिक स्थिति की चर्चा करते समय इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि नदियों के अपने प्रवाह-मार्ग से विचलन के कारण ही पर्वतों का प्रमाण माना जाना वस्तुत: समीचीन है। कहा जाता है पहले पर्वतों के भी पंख हुआ करते थे जिन्हें कालान्तर में इन्द्रदेव ने काट डाला। पर्वत-विशेषों के नामों में महत्त्वपूर्ण है हिमालय(हिमवन्त) "यस्येमे हिमवन्तो महित्वा" (ऋ०, 10·121·4)। इसके अतिरिक्त हिमालय का वर्णन अथर्ववेद(4·9·9,5·4·2,8, 6·24·1, 19·39·1) में पाया जाता है। इसी श्रेणी का एक पर्वत है "त्रिककुद्" (अथ०, 4·9·8)। ऋग्वेद 10·34·1 में मूजवन्त को सोम का घर बताया है। "सोमस्येव मौज्वतस्य भक्ष:।" अथर्ववेद(5·22·5, 7, 8) में मूजवत को निवासियों का नाम बताया गया है जिनके साथ के लोग महावृष, गन्धारि और बाह्लीक कहलाते हैं। मूजवन्त को वर्तमान का हिन्दुकुश पर्वत कहा जा सकता है। पर्वत शब्द ऋ०, 2·12·11 में, अद्रि शब्द ऋ० 10·89·6 में तथा गिरि शब्द ऋ०, 10·89·7 में उपलब्ध होता है। पर्वतों के कारण ही जल-वृष्टि होती है। अपनी वनस्पतियों द्वारा नीरोगता प्रदान करके ये मनुष्यों का परम कल्याण करते हैं(ऋ०, 3·54·20)। ये आध्यात्मिक साधना के सर्वोत्कृष्ट स्थल हैं(यजु०, 26·15)। इन पर्वतों की सुरक्षा के लिए अथर्ववेद (12·1·11) में प्रार्थना की गई है — "गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु"। मनुस्मृति(2·21) में हिमान्चल और विन्ध्याचल के बीच के भाग को मध्यदेश कहा गया है। "हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेश: प्रकीर्तित:।" तै०आ० 1·31 में सुदर्शन, क्रौंच तथा मैनाग पर्वतों का वर्णन पाया जाता है।

नगर या प्रदेश

1- मत्स्यदेश

इसका वर्णन हमें ऋग्वेद 7·18·6 में मिलता है जो राजपूताना

और पूर्वी समुद्र की सीमा पर स्थित था जिसके तटों पर बहुतायत से मछलियों की उपलब्धि होती थी। इस देश का वर्णन हमें मनुस्मृति 2·19 में भी प्राप्त होता है। "कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पन्चालाः शूरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षिदेशो वै आर्यावर्तादनन्तरः।"

2- गन्धारि

इसका वर्णन ऋग्वेद 1·126·7 तथा अथर्ववेद 5·22 में हमें प्राप्त होता है। अथर्ववेद के उपर्युक्त मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हे ज्वर, तू गन्धारि जातियों में चला जा। इसे बाह्लीक के नाम से भी अभिहित किया जाता है। "गान्धारीणामिवाविका" (ऋ0, 1·26·7) से स्पष्ट है कि यहाँ का ऊन बहुत ही मसृण और सुन्दर होता था।

3- कुरु-पान्चाल

शतपथ-ब्राह्मण 13·5·4·7 में पान्चाल का पूर्व नाम क्रिवी बताया गया है। "हैतेन क्रैव्य ईजे पान्चालो राजा क्रिवय इति ह वै पुरा पन्चालानामाचक्षते, तदेतद्गाथयाभिगीतम् अश्वं मेध्यमालभन्त क्रिवीणामतिपूरुषः पान्चालः" (शत0, 13·5·4·7)।

यहीं परिचक्रा या एकचक्रा नगरी का उल्लेख मिलता है जहाँ राजा क्रैव्य पान्चाल ने अश्वमेध यज्ञ किया था — "अश्वं मेध्यमालभते क्रिवीणामतिपूरुषः पान्चालः परिचक्रायां सहस्रशतदक्षिणामिति" (शत0, 13·5·4·7)। शतपथ-ब्राह्मण 13·2·8·3 में पन्चाल की राजधानी काम्पिल्य का भी उल्लेख मिलता है। पर बाद में दोनों जनपदों के एक हो जाने से उसका नाम कुरुपान्चाल रखा गया। तभी से ये दोनों नाम सम्मिलित रूप से लिये जाते हैं। कुरुपान्चालों की याग-पद्धति सर्वश्रेष्ठ बतायी जाती है (शत0, 1·7·2·8)। यहाँ के राजा लोग राजसूय यज्ञ भी किया करते थे। यजुर्वेद 10·6 में राजसूय यज्ञ के समय जनता से यह कहा गया है कि यही

तुम्हारा राजा है।

कीकट

ऋग्वेद 3·53·14 में वर्णन है कि व्यास और शुतुद्री के पास अनार्यों का एक देश था जिसमें गायों का बाहुल्य था, वहीं कीकट प्रदेश था। विल्सन और वेबर (Indische Studien), 1·186 & Ind. Lit. 79 n) का अनुमान है कि कीकट मगध का पर्याय है जिसे दक्षिण बिहार कह सकते हैं। वेबर यहाँ के निवासियों को आर्य बताते हैं। पर यास्क कीकट के निवासियों को अनार्य घोषित करते हैं। "अनार्य-निवास:" (नि0, 6·32)। जिम्मर (Altin, Leben. , 31, 118) का भी यही विचार है कि कीकट-निवासी अनार्य थे। सायण ने भी कीकट-वासियों को अनार्य कहा है। कीकट को कुछ विद्वान् मगध- नाम से भी सम्बोधित करते हैं।

मद्र

मद्र देश की राजधानी शाकल थी जिसे आजकल स्यालकोट भी कहते हैं। हिमालय के उत्तर में स्थित उत्तरकुरु के साथ उत्तर मद्र नामक जनपद का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण (8·3·14) में किया गया है। मद्र का उल्लेख "मिलिन्दपन्हो" में मिलता है।

महावृष

अथर्ववेद में मूजवन्तों के साथ महावृष का उल्लेख प्राप्त होता है। जहाँ पर ज्वर को चले जाने का आग्रह किया गया है। सम्भवत: यह तराई का ही कोई प्रदेश होगा। "तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्। महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य।" (अथ0, 5·22·7,8)।

काशि

अथर्ववेद 5·22·14 में उल्लिखित काशी को वर्तमान काशी ही माना जाता है। शतपथ में कहा है कि काशिराज धृतराष्ट्र को शतानीक ने युद्ध में पराजित किया था। बृहदारण्यक में भी अजातशत्रु को काशि-नरेश बताया गया है। काशि और विदेह का सम्मिलित रूप में वर्णन कौषीतकि उपनिषद् में मिलता है। बृहदारण्यक में अजातशत्रु के लिए गार्गी ने काश्य या वैदेह का सम्बोधन किया है (बृहदा० 3·8·2)।

कोशल

यह नाम शतपथ-ब्राह्मण 1·4·1·17 में प्राप्त होता है। कोशलों का विदेहों के साथ सम्मिलित नाम भी मिलता है जिससे इनकी समीपता निःसन्दिग्ध जान पड़ती है।

विदेह

शतपथ-ब्राह्मण 1·4·10 में इसे "विदेघ" नाम से भी सम्बोधित किया गया है। इसे लोग आजकल बिहार में तिरहुत नाम से भी जानते हैं। उपनिषदकाल में विदेहराज जनक के कारण इसे विपुल ख्याति प्राप्त हुई। कोशल तथा विदेह की सीमा पर ही सदानीरा नदी प्रवाहित होती थी।

मगध

अथर्ववेद 5·22·14 में अङ्ग के साथ मगध देश में ज्वर के चले जाने की प्रार्थना की गई है। अतः इसे पूर्व का ही एक प्रदेश माना जा सकता है। यजुर्वेद(30·22) में मागध की बलि अतिक्रुष्ट के लिए बताई गई है। मागध व्रात्य का मित्र है "मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषम्" (अथ०, 15·2·5) लाट्यायन श्रौतसूत्र 8·6·28 में भी व्रात्य को मगधदेश का ब्रह्मबन्धु स्वीकार

किया गया है। अनुमान है कि मगध के जन सभ्यता व संस्कृति में नितान्त निकृष्ट कोटि के थे, फलत: यही भूमि वैदिक-याग के तिरस्कर्त्ताओं के लिए कालान्तर में चलकर अग्रगण्य बनी। तथा यहाँ का सङ्गीत विशेष लोकप्रिय हुआ। मागधों को पुरुषमेध की बलिसूची में नामांकित किया गया है।

अङ्ग

अथर्ववेद 5·22·14 में अङ्ग का उल्लेख मगध के साथ हुआ है। "गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यो अंगेभ्यो मगधेभ्य:। प्रेष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परिदद्मसि" (अथ०,5·22·14)। इसे आजकल का भागलपुर माना जा सकता है।

कम्बोज

सिन्धु नदी के उत्तर-पश्चिम में कम्बोजों का निवास था। यहाँ के आचार्य वैदिक अध्ययन-अध्यापन में विशेष निष्णात थे। यास्क ने निरुक्त 11·2 में कम्बोजों द्वारा "शवति" शब्द का प्रयोग'जाने'के अर्थ में दिखाया है। वंश ब्राह्मण जो साम्वेद से सम्बद्ध है, में कम्बोज के एक आचार्य औपमन्यव का नाम हमें प्राप्त होता है। मनुस्मृति 10·44,45 में कम्बोजों को अनार्य या दस्यु कहा गया है - " --- काम्बोजा यवना: शका: --- म्लेच्छवाचश्चार्यवाच: सर्वे ते दस्यव: स्मृता:" । इन्हें "कम्बुजीय" अभिधान से सम्बोधित किया जाता था। वैदिक ऋषियों ने कहा है कि हमारे नगरों का निर्माण हमार लिए देवताओं ने किया है "यस्या: पुरो देवकृता:" (अथ०, 12·1·44)। इससे हमारे प्रदेशों की दिव्यता प्रकट होती है। जिस प्रदेश की ऋषियों ने और मुनिजनों ने विविध यज्ञानुष्ठानों द्वारा अर्चना की। "यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिण:" (अथ०, 12·1·8); "यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचु:" (अथ०, 12·1·39)। मनु ने भी कहा है कि

इन्हीं आर्य-प्रदेशों में उत्पन्न मनीषियों से भूगोल के मनुष्य अपने-अपने योग्य चरित्रों की शिक्षा लें। "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:।" (मनु0, 2·20)।

आर्यों का आरम्भिक निवास-स्थान

कुछ विद्वान् आर्यों और ईरानियों में समता के आधार पर आर्यों को ईरान से आया बताते हैं। डॉ0 पी0एल0 भार्गव कहते हैं कि सप्त-सिन्धु क्षेत्र से आर्यों की दो शाखाएँ हो गईं जिनमें से एक सप्तसिन्धु प्रदेश में ही रही "य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वार्यात् सप्तसिन्धुषु"(ऋ0, 8·34·27) तथा दूसरी ने ईरान की ओर प्रस्थान किया -

"From this region one branch seems to have gone to the west and ... ultimately settled in the various countries of Europe, while another branch migrated to Saptasindhu from where in course of time it was divided into two sections one of which left Saptasindhu and settled in Iran".

India in the Vedic Age, p. 49.

अनेक शब्द वेद और अवेस्ता में समान मिलते हैं यथा - हओम (= सोम), जोअतर (= होता), अथ्रवन् (= अथर्वन्), मन्थ्र(= मन्त्र), यश्न(= यज्ञ) तथा आज़ुति(=आहुति), तथा इसके अतिरिक्त सारी याज्ञिक प्रक्रियाएँ और कर्मकाण्ड दोनों में समानधर्मी हैं। जैसे उपनयन-संस्कार, वैदिक और अवेस्ता दोनों में पाए जाते हैं। कुछ भी हो भारत भूमि को आर्यों की भूमि कहने में हमें कोई सन्देह नहीं है। ऋग्वेद में सर्वत्र आर्यों का निवास "सप्तसिन्धु" क्षेत्र ही बताया गया है। "अजयो गा अजय: शूर सोममवासृज: सर्तवे सप्तसिन्धून्" (ऋ0, 1·32·12), "एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्"(ऋ0, 9·61·7), "अयं स यो दिवस्परि

रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्म्यक्षरत्" (ऋ0, 9·39·4), "उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत्" (ऋ0,6·61·10) ये आर्यजन पञ्चजनों में विभक्त थे -- पुरु, यदु, अनु, तुर्वश और द्रुह्यु । इसके अतिरिक्त भरत, त्रित्सु, सृन्जय आदि जनों का भी उल्लेख वेद में है।

ये सातों नदियाँ ऋग्वेद के नदीसूक्त 10·75 में वर्णित हैं जिनमें कुभा, सुवास्तु, क्रुमु और गोमती प्रसिद्ध हैं। सिन्धु की भूयसी प्रशंसा हमें इसमें उपलब्ध होती है। प्रियमेधा ऋषि का कहना है कि सिन्धु तुमुल तरङ्गों से युक्त होकर अपने शब्द से आकाश को आच्छादित कर देती है तथा वृषवत् गर्जन करती है "दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना । अभ्रादिव प्रस्तनयन्ति वृष्टयः, सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ।" (ऋ0,10·75·3) एक अन्य मन्त्रमें सिन्धु के पास उसकी सहायक नदियाँ गाय से बछड़े के मिलने के समान और राजा के सैन्य की भाँति दौड़ी हुई चली आ रही हैं(ऋ0, 10·75·4) "अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः। राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ, यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि"। सिन्धु प्रदेश के घोड़े तथा वहाँ का ऊन काफी प्रख्यात थे। सिन्धु के लिए प्रयुक्त विशेषणों में स्वश्वा, सुरथा, सुवासा, वाजिनीवती, ऊर्णावती आदि विशेष उल्लेखनीय हैं (ऋ0, 10·75·8)। आर्यों का निवास सिन्धु के दोनों किनारों पर फैला हुआ था। इसी नदी के आधार पर आर्यों की कालान्तर में हिन्दू संज्ञा हुई तथा ग्रीक लोगों ने इन्हें इन्डस कहना आरम्भ किया जिससे पूरा देश इण्डिया ही कहाने लगा। अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि वैदिक सभ्यता सिन्धुघाटी से पुरानी है -

"Although Sir John Marshall's view is now generally accepted, some scholars still regard the Vedic civilization as older than that of the Indus Valley". - Pushalkar.

ऋग्वेद 10•136•5 में पूर्व समुद्र तथा पश्चिम समुद्र का स्पष्ट वर्णन मिलता है। आजकल यह पूर्व समुद्र वर्तमान नहीं है उसकी जगह समग्र गाङ्गेय प्रदेश, पाञ्चाल, कोसल, मगध, विदेह, अङ्ग और वङ्ग देश विद्यमान है। यही कारण है कि इन देशों का ऋग्वेद में कोई लेख नहीं पाया जाता। यमुना और गङ्गा भी सीमित अवधि वाली नदियाँ होने से विशेष उल्लेख को न प्राप्त हो सकीं। अपर समुद्र, अरब सागर का ही एक भाग रहा होगा, जो सप्तसिन्धु प्रदेश में बहता था। पंजाब के दक्षिण-भागस्थ (राजपूताना का रेगिस्तान) एक विपुल समुद्र था जिसमें सरस्वती, व्यास और सतलज नदियाँ आकर मिलती रही होंगी। सरस्वती की उत्पत्ति प्लक्ष-प्रस्रवण से मानी जाती है तथा जहाँ यह विलुप्त हुई है, उसे विनशन नाम से अभिहित करते हैं। ऋग्वेद में आर्यों की उत्तर दिशा में भी एक लहराने वाले समुद्र का वर्णन मिलता है (ऋ०, 10•47•2)। भूतत्त्ववेत्ताओं के अनुसार वाह्लीक, पारसीक देश के उत्तर में तथा तुर्किस्तान के पश्चिम में भूमध्यसागर विद्यमान था। यह दीर्घ समुद्र धीरे-धीरे सूखकर ठोसरूप में परिणत होने लगा पर जो भाग उसका सूख न सका वही आज काला सागर, काश्यप सागर (Caspean Sea) तथा अराल सागर और बाल्काश सरित् के रूप में वर्तमान है। यह ऋग्वेदोक्त चतुर्थ समुद्र था जहाँ से वणिक् लोग व्यापार की दृष्टि से आदान-प्रदान करके प्रचुर धनोपार्जन किया करते थे। इन्हीं चारों समुद्रों से आवृत्त भूमण्डल पर आर्यों ने अपने वैदिक धर्म और संस्कृति की पताका फहरायी जहाँ से पृथ्वी के समस्त मानवों ने सभ्यता और चरित्र की शिक्षा ग्रहण की। यह सप्तसैन्धव प्रदेश अनेक राष्ट्रों का समन्वित रूप था।

"At the initial stage the Sapta-Sindhu region had a large number of small states or Rāṣtras.

(Muir, Sans. Text Series, Vol. V, p. 454).

ऋग्वेद के मन्त्रों में अनेक भौगोलिक तथ्य ऐसे प्राप्त होते हैं, जो उत्तरी ध्रुव में ही यथार्थ रूप में उपलब्ध होते हैं। इसी कारण तिलकजी उत्तरी ध्रुव को ही आर्यों का आदिदेश मानते हैं पर भारतीय परम्परा के अनुसार भारत ही आर्यों की आरम्भिक भूमि है -

"To conclude we may say that though the Aryan problem is still far from solution, alongwith other theories the Indian home theory can not be rejected."

Vedic India, H.P. Chakraborti, p.20.

पतञ्जलि और मार्कण्डेयपुराण के अनुसार "प्रागादर्शात् प्रत्यक् कालकवनात् दक्षिणेन हिमवन्तम् उत्तरेण पारियात्रम्" - पतञ्जलि।
"एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थान संस्थितम्। दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः। हिमवानुत्तरेणास्य ।।" (मार्क०पु०, अ० 54)

मनु कहते हैं कि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल तथा पूर्व और पश्चिम में समुद्र ही आर्यावर्त की सीमा है।

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः।।।
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते।" मनु०, 2.22

इसपर व्याख्या करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती कहते हैं — "सरस्वती पश्चिम में, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग के पहाड़ से निकलकर बङ्गाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम और होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है, जिसको ब्रह्मपुत्र कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकलकर दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में आकर मिली है। हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वरपर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त इसलिए कहते हैं कि यह आर्यावर्त,

देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से यह आर्यावर्त कहाया है" (सत्यार्थ प्र०,समु० 8)। वह आगे लिखते हैं "इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था, और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल पश्चात् तिब्बत से सीधे इसी देश में आकर बसे थे" (वही)। वह आर्यों के ईरान से आने का खण्डन करते हैं, उनका कहना है, "आर्य नाम धार्मिक विद्वान् आप्त पुरुषों का, और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् दुष्ट डाकू, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है। "विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासद् व्रतान्। उत शूद्रे उतार्ये।"(ऋ०,1·51·8) बाद में इसी आर्यदेश के पूर्वी भाग में गौतम रहूगण, जो विदेह माथव के पुरोहित थे तथा जिनका वर्णन शतपथ 1·4·1·10 में आता है, ने आर्यसभ्यता का इतस्तत: प्रचार-प्रसार किया। शतपथ के इस वर्णन के अनुसार विदेह माथव अपने मुख में वैश्वानर अग्नि रखते थे, जो अकस्मात् बाहर पृथ्वी पर आकर सबको आगे-आगे जलाता चला गया। पीछे-पीछे विदेह माथव चले। उसने सदानीरा नदी को नहीं जलाया तो विदेह ने अग्नि से पूछा, मेरा निवास कहाँ हो, अग्नि ने कहा, इसी नदी के पूरब ओर। आज भी सदानीरा नदी विदेह और कोसल देशों की मर्यादा है और आज जहाँ ब्राह्मणों का निवास है। विदेह माथव के पुरोहित का नाम ऋग्वेद 178·6 में प्राप्त होता है, जो ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों के द्रष्टा हैं। "अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद् वच:" (ऋ०, 1·78·6)।

यास्कानुसार वेदों में ऐसे इतिहास भी हैं - "तत्रेतिहासमाचक्षते" (यास्क) । बाद में आर्य सभ्यता का विस्तार कम्बोज, कुरुओं की राजधानी आसन्दीवन्त, पान्चालों की राजधानी काम्पील, कौशाम्बी,वरणावती तथा काशी तक में पाया गया है। उपर्युक्त नगरों के शासकों के नाम यहाँ दिये जा रहे हैं — "पुरुरवा, नहुष, पिजवन, दिवोदास, सुदास, शर्याति,

शार्यात, अतिथिग्व, ऋजिश्वान्, सुश्रवा, तुर्वश, यदु, मनु, पठर्वा, जाहुष, पृथुश्रवा, पेदु, इष्टाश्व, इष्टरश्मि, मशशरि, स्वनय, रातहव्य, दुर्योणि, भरत, भरतगण, तृत्सुगण, सहदेव, रोमक, अर्ण, चित्ररथ, त्रसदस्यु, स्वश्व, श्रुतरथ, दुष्यन्त, क्षत्रश्री, प्रस्तोक, वृषभ, वेतसु, अभ्यवर्ती, चयमान, सृन्जय, शान्त, कवि, गाथ, प्रगाथ, याद, पाशद्युम्न, अनु, द्रुह्यु, राम, वेन, अरुण, यौवनाश्व, विभिन्दु, आसंग, स्याम, श्यावक, कृप, पाकस्थामा, कशु, परशु, तिरिन्दर, पथ्य, वरु, सहस्त्रबाहु, वपृथवस्त्र, ययाति, शन्तनु व पृथु आदि।

धातु

ऋग्वेद में स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह और मोती का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है। यजुर्वेद 18·13 में भी "हिरण्यं च मेऽयश्च मे ---- द्वारा धातु-वर्णन मिलता है।

अन्न

यजुर्वेद में तिल, मूँग, सरसों, व्रीहि और गोधूम का वर्णन मिलता है। यव यज्ञीय अन्न था।

वृक्ष

ऋग्वेद में अश्वत्थ, वट, शमी, पलाश, शाल्मली, खदिर तथा शिंशपादि वृक्षों का उल्लेख हुआ है।

पशु-पक्षी

ऋग्वेद में गाय को "अघ्न्या" कहा है तथा उसे मातृवत् पूज्य मानकर न मारने का उपदेश दिया गया है। इसके अलावा ऋग्वेद में हाथी, घोड़े, कुक्कुट, भेड़, बकरे, गर्दभ, अश्वतर, मेष, महिष, उष्ट्र, छाग, सिंह, वृष, गौरमृग, कस्तुरीमृग, कृष्णसार मृग, उलूक, शुक, कोक, सुपर्ण, गृध्र, वृष्ण, शकुन, श्येन, वार्तिक(बत्तख), कपिन्जल, चक्रवाक, सर्प, मण्डूक, गोधा,

वृश्चिक तथा मत्स्य का प्रभूत वर्णन प्राप्त होता है। इससे हमें वैदिक भूगोल का परिचय प्राप्त हो जाता है।

(डॉ॰जातवेद त्रिपाठी)
पूल आफिसर, वेद विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-2

द्वितीय अध्याय

वैदिक युग का सामाजिक जीवन

वैदिक युग का सामाजिक जीवन

वर्ण-व्यवस्था

प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था नामक कोई चीज न थी "एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर । कर्मक्रियाविशेषेण चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्"।(महा०) "वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन् न संकर:"(वायुपु०, 1·8·60)। उस अवस्था को हम अवर्ण अवस्था कह सकते हैं। इस रूप में दितिमूलक अवर्ण सृष्टि वहाँ होती है जहाँ सौर-तेज खण्डित हो जाता है, इसी कारण शूद्र, दस्यु, अन्त्य और अन्त्यावसायी ये चार विभाग अवर्ण हैं तथा सौर-तेज से सम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण-संज्ञा वाले हैं। अव्यय आत्मा अवर्ण है तथा उसी के शक्ति योग से वर्ण सृष्टि का उद्भव हुआ है -- "य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति विचैति चान्ते विश्वमादौ स देव: स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु" (श्वेताश्वतर०) ।

प्राचीन काल में दो ही वर्ण माने गए - आर्य और दस्यु "यो दासवर्णमधरं गुहाक:" (ऋ०, 2·12·4) "इन्द्र: समत्सु यजमानमार्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु । स्वर्मीहळेष्वाजिषु। मनवे शासदव्रतान त्वचं कृष्णामरन्धयत्।"(ऋ०, 1·130·8), "हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्" (ऋ०, 3·34·9), "दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मण: असुर्य: शूद्र:" (तै० ब्रा०, 1·2·6)।

ऋग्वेद में वर्णों के कार्यकलापों के आधार पर चार वर्णों का कथन किया गया है - अथर्ववेद (5·17·9) में भी कहा है --

"प्रियं मा दर्भकृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च"

ब्राह्मण परमपुरुष के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य जंघा से तथा पैर से शूद्र उत्पन्न हुआ - "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।" (ऋ0, 10·90·12)।

गुण-कर्म के विभाग से चातुर्वर्ण्य-सृष्टि का निर्देश गीता में भी किया गया है - "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः" (गीता) । यजुर्वेद में भी चारों वर्णों का उनके कर्मों के अनुसार परिगणन किया गया है - "ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्" (यजु0, 30·5)। महाभारत में कहा है --

"ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामनुजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ।
अतः पृथिव्या यन्तारं क्षत्रियं दण्डधारिणम्।
वैश्यस्तु धनधान्येन त्रीन् वर्णान् विभृयादिमान् ।।
शूद्रो ह्येतान् परिचरेदिति ब्राह्मणानुशासनम् ।" (महा0, 72·6·8)

तथा

"न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ।।"

(महा0, शान्तिपर्व, 188·10.)

इन चारों वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। मनु कहते हैं --

"ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ।।
वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ।।"

(मनु0, 10·3)

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ।।

(मनु०, 1·96-97)

ब्राह्मण किसे कहते हैं, इसके उत्तर में स्मृति कहती है --

"जातिकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः ।
वेदाध्ययनसंपन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः ।।
सत्यवाक् विद्यासी तु शीलवांश्च गुरुप्रियः ।
सत्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ।।"

(स्मृति०,)

अतः ब्राह्मण को सर्वयोग्य कहा है --

"सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणो ऽर्हति ।।"

(मनु०, 1·100)

"देवाः परोक्षदेवाः प्रत्यक्षदेवा ब्राह्मणाः। ब्राह्मणैर्लोका धार्यन्ते । ब्राह्मणानां प्रसादेन दिवि तिष्ठन्ति देवताः। ब्राह्मणाभिहितं वाक्यं न मिथ्या जायते क्वचित्" । (वि०ध०सू०, 19·20-23)

"ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणाम्" (ऋ०, 9·96·6)

"दैव्यो वैवर्णो ब्राह्मणः असुर्यः शूद्रः" (तै०ब्रा०, 1·2·6·7)

"चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः" तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतः श्रेयान्" (आप०ध०सू०, 1·1·4-5)

पर यहाँ ब्राह्मण ही प्रमुख हैं -- "ब्रह्म वै स्वं महिमानं ब्राह्मणेष्वदधाद्ध्ययनाध्यापनयजनयाजनदानप्रतिग्रहसंयुक्तं वेदानां गुप्त्यै" (बौ०ध०, 1·10·2)

इसके अतिरिक्त दिन, वसन्त, पलाश और अज की ब्राह्मण संज्ञा मानी गई है --

"ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यदहः" (शत०, 13·1·5·4)

"ब्रह्म वा अजः" (शत०, 6·4·4·15)

"ब्रह्म हि वसन्तः" (शत०, 2·1·3·5)

"ब्रह्म वै पलाशः" (शत०, 5·3·5·13)

ब्राह्मण का नाम मङ्गलयुत, क्षत्रिय का बलयुत, वैश्य का धनसूचक तथा शूद्र का सेवासूचक रखना चाहिए। ब्रह्म के जानने वाले को ही ब्राह्मण कहा है अन्यथा वह ब्रह्म-मूढ़ ही कहा जाएगा --

"अनुभूतिं विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते ।
प्रतिबिंबितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत् ।।"

(मैत्रे०उप०, 2·22)

ब्राह्मणादि के कर्मों का मनुस्मृति में इस प्रकार वर्णन है --

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।
प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ।
पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च ।
वणिक् पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।
एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।

(मनु०, 1·88-91)

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि --

"विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ।।

(मनु०, 2·166)

"ब्रह्मा खलु वै अग्रात् पूर्वम्" (ऐ०ब्रा०, 8·36·4)

वेदाध्ययन द्विजों के लिए परम अनिवार्य है। यथा ---

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय: ।।
वेदाभ्यासे हि विप्रस्य तप: परमिहोच्यते ।
अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ।।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यध: ।
(मनु०, 2·168, 166; 6·37)

"तावच्छूद्रसमो ह्येष यावद्वेदे न जायते" (महा०वन०, 180·10)

ज्ञान में श्रेष्ठ होने के लिए बुद्धि का शुद्ध होना परमावश्यक है ---
"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि: सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति:" (छा०उ०, 7·26·2)

अत: "सन्न्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न सन्न्यसेत्" (वसिष्ठ०, 10·4)

षड्विंश ब्राह्मण (1·1) में आता है - "अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणा:" ब्राह्मणों को आग्नेय भी कहा है - "आग्नेयो वै ब्राह्मण:" (तै०ब्रा०, 2·7·3·1) "ब्रह्म हि ब्राह्मण:" (शत०, 5·1·5·2)।

ब्राह्मण सारे संस्कारों से युक्त या सान्तपन होता है ---
"एष ह वै सान्तपनो ग्निर्यद् ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयन-जातकर्म- नामकरण- निष्क्रमण- अन्नप्राशन- गोदान- चूडाकरण- उपनयन- आप्लावन अग्निहोत्र- व्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपन:" (गोपथ, पू०, 2·23)

ब्राह्मण को सुरा वर्जित है --- "अशिव इव वा एष भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य" - शत०, 12·8·1·5 ।

"ब्राह्मणास: धर्मिण:" (ऋ०, 7·10·3·8); "ब्राह्मणोयुवत आसीत् (ऋ०, 8·58·1); "ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्य:" (अथर्व०, 4·6·1)।

व्रतचारी को ब्राह्मण कहते हैं -- "ब्राह्मणो व्रतचारिण:" (ऋ0, 6·103·1); "अनूचानो ब्राह्मणो" (ऋ0, 8·58·1)।

ब्राह्मण को नाचना-गाना नहीं चाहिए --

"ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येत्" (गोपथ, 2·21)

"सोमोऽस्माकम् ब्राह्मणानाम् राजा" (वा0सं0, 10·18)

दीक्षित क्षत्रिय या वैश्य को ब्राह्मण ही कहना चाहिए तथा -- "तस्मादपि दीक्षितं राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्राह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते" (शत0, 3·2·1·40)

यज्ञकर्ता ब्राह्मण ही माना गया है --

"य उ कश्चैव यजते ब्राह्मणीभूयेव यजते" (शत0, 13·4·1·3)

ब्राह्मण को ब्रह्मवर्चसी ही इष्ट होना चाहिए --

"तद् ह्येव ब्राह्मणेनेष्टव्यं यद् ब्रह्मवर्चसी स्यादिति" (शत0, 1·4·3·16)

विद्वान् ब्राह्मण ही बली है --

"यो वै ब्राह्मणानामनूचानतम: स एषां वीर्यवत्तम:" (शत0, 4·6·6·5)

"उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ।"

(अथर्व0, 5·4·19)

"यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् "

(अथर्व0, 5·4·13)

"तद् राष्ट्रमास्रवति नावं भिन्नमिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ।।"

(अथर्व0, 5·4·18)

"तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यङ्करोति मुखतो हि सृष्ट:"

(ता0ब्रा0, 6·1·6).

ब्राह्मण यज्ञरूप आयुध वाला होता है --

"एतानि वै ब्रह्मण आयुधानि यज्ञायुधानि" (ऐ०ब्रा०, 7·19)

"वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्‌ द्विज:" (मनु०, 11·33)

तीनों लोक ब्राह्मण में समाहित हैं --

"त्रयो लोका: संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम्।"

(अथर्व०, 12·3·20)

ब्राह्मण स्वयं अपना निर्माण करता है --

"स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।

महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।" (यजु०, 23·15)

"क्षत्रं राजन्य:" (ऐ०ब्रा०, 8·6) अर्थात्‌ जो बलवान्‌ है वह क्षत्रिय है तथा "क्षत्रं हि राष्ट्रम्‌" (ऐ०ब्रा०, 7·22)।

क्षत्रियों को भूयिष्ठ पशु वाला कहा गया है --

"तस्माद्‌ क्षत्रियो भूयिष्ठं हि पशूनामीष्टे" (गोप०,उ० 6·7)

क्षत्रिय भी वेदों में व्रतधारी कहा गया है --

"धृतव्रता: क्षत्रिया यज्ञ निष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रिय:"

(ऋ०, 10·66·8)

"क्षत्रियस्य परमोधर्म: प्रजानामेव पालनम्‌" (मनु०, 7·144)

अश्व, हिरण्य, व्याघ्र तथा प्रस्तर की क्षत्रिय संज्ञा कही गई है --

"क्षत्रं वा अश्व:" (तै०ब्रा०, 3·9·7·1)

"क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यम्‌" (शत०, 12·2·2·17)

"क्षत्रं वा एतदारण्यानां पशूनां यद्‌ व्याघ्र:" (ऐ०ब्रा०, 8·6)

"क्षत्रं वै प्रस्तर विश इतरं बर्हि:" (शत०, 1·3·4·10)

क्षत्रिय की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है - "क्षतात्‌ त्रायते" इति क्षत्रिय:। क्षत्रिय को ब्राह्मण से कनिष्ठ माना गया है --

"भूयान्वै ब्राह्मण: क्षत्रियादिति वरुण उवाच" (ऐ०ब्रा०, 33·4)

अत: "राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्" (गौ०ध०सू०, 11·1)। पर शासन-व्यवस्था क्षत्रिय को ब्राह्मण के परामर्श से करने को कहा गया है ताकि जोश और होश का तारतम्य न टूटने पाए। यथा --

"न वै ब्राह्मणो राज्यायालम्" (शत०, 511·1·12)

"यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरत: सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा: सहाग्निना।।" (यजु०, 20·25)

"तदत्र ब्राह्मण: क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते" (ऐत०ब्रा०, 8·9)

"यो वै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीयान्भवति"
(शत०, 5·4·4·15)

ब्राह्मण राजा के बिना हो सकता है पर यह अयुक्त ही है कि क्षत्रिय (राजा) ब्राह्मण के बिना हो --

"तत्तदवक्लृप्तमेव । यद् ब्राह्मणो राजन्य: स्याद्यद्राजानं लभेत समृद्धं तदेतद् त्वेवानवक्लृप्तं। यत्क्षत्रियो ब्राह्मणो भवति यद किंच कर्म कुरुते प्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण न हैवास्मै तत्समृध्यते तस्मादु क्षत्रियेण कर्म करिष्यमाणेनोपसर्तव्य एव ब्राह्मण: सं हैवास्मै तद्ब्रह्मप्रसूतं कर्मऽर्ध्यते" (शत०, 4·1·4·6)

युद्ध ही क्षत्रिय का बल है --

"युद्ध वै राजन्यस्य वीर्यम्" (शत०, 13·1·5·6) तथा घोड़ा, रथ, कवच, धनुष और तीर ही उसके शस्त्र कहे गये हैं -- "एतानि क्षत्रस्यायुधानि यदश्वरथ: कवच इषुधन्व" (ऐ०ब्रा०, 7·19)।

"न गृहे मरणं तात क्षत्रियाणां प्रशस्यते" (मह०, शा०, 97·25)

बाहुबलयुक्त तथा जंघाओं में शक्ति वाला क्षत्रिय राजा ही प्रिय होता है --

"तस्माद्राजा बाहुबली भावुक:" (शत०, 13·2·2·5) तथा

"तस्माद्राजोरुबली भावुक:" (शत०, 13·2·2·28)

अराजकता वाला देश युद्ध में सतत अक्षम है --

"नाऽराजकस्य युद्धमस्ति" (तै०ब्रा०, 1·5·9·1)

राजा न्याय-पूर्वक दण्ड देने वाला हो तो वह पापियों का कल्याण करने वाला होता है --

"राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।।
(वा०रा०, 4·18·20-21)

"राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः" (रघु०, 6·21) ।

क्षत्रिय दोनों वर्णों की रक्षा करता है --

"उभौ वर्णां: वृषिरुग्राः पुपोष" (ऋ०, 1·179·6)

अतः ब्राह्मण और क्षत्रिय एक दूसरे के पूरक हैं --

"अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्रविशावेति अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम्" (अथर्व०, 15·10·3-5)।

"ब्राह्मणेव क्षत्रम् संश्यति क्षत्रेण ब्रह्म तस्माद् ब्राह्मणो राजन्यवान् अत्यन्यम् ब्राह्मणम् तस्माद् राजन्यो ब्राह्मणवान् अत्यन्यम् राजन्यम्" (तै०सं०,5·1·10·8)।

शतपथ-ब्राह्मण(14·4·2·23) में क्षत्रिय की प्रभूत प्रशंसा की गई है-- "क्षत्रात् परम् नास्ति तस्माद् ब्राह्मणः क्षत्रियम् अधस्ताद् उपास्ते राजसूये"।

"अर्धात्मो ह वा एष क्षत्रियस्य यत्पुरोहितः।"
(ऐ०ब्रा०, 7·4·8)

उसे अनेक विशेषणों से युक्त बताया गया है --

"क्षत्रियोऽजनि विश्वस्य भूतस्याधिपतिरजनि, विशामत्ताजनि, अमित्राणाम् हन्ताजनि, ब्राह्मणानाम् गोप्ताजनि" (ऐ०ब्रा०, 8·17).

रजोगुण की अधिकता से मनुष्य क्षत्रिय होता है --

"सत्वाधिको ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियस्तु रजोऽधिकः ।
तमोऽधिको भवेत् वैश्यः गुणसाम्यात्तु शूद्रता ।।"

"शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षत्रकर्म स्वभावजम् ।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।

(गीता, 18·42-44)

वेद में क्षत्रियों की याचना की गई है --

"त्यान् नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे ।
सुमृळीकाँ अभिष्टये" (ऋ0, 8·67·1)

"तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य" (अथर्व0, 5·17·3)

"निषेदतुः साम्राज्याय क्षत्रिया" (ऋ0, 8·25·8)

"ऋतावाना क्षत्रिया" (ऋ0, 8·25·8)

वैश्यों को ही राष्ट्र कहा गया है -- "राष्ट्राणि वै विशः" (ऐ0ब्रा0, 8·26)।

कृषिरक्षा वैश्यों का स्वभावज कर्म कहा है। बौधायन धर्मसूत्र(1·5) में वेद-पठन और कृषि दोनों कर्तव्य कर्म माने गये हैं पर यदि न हो सके तो कृषि वैश्यों के लिए छोड़ दे --

"वेदाः कृषिविनाशाय कृषिर्वेदविनाशिनी ।
शक्तिमान् उभयम् कुर्याद् अशक्तस्तु कृषिं त्यजेत् ।।"

वैश्यों को क्षत्रिय से निर्बल बताया गया है -- "विशा वै क्षत्रियो बलवान् भवति" (शत0, 4·3·3·6)।

वैश्य और शूद्रों का अपनी स्त्रियों पर नियन्त्रण नहीं रह जाता है ––

"अर्यान्त्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति ।
कर्षणशुश्रूषाधिकृतत्वात्" (बौ०ध०सू०, 1·11·14-15)

वैश्य और शूद्र क्षत्रिय की आराधना करते हैं ––

"विशम् चैवास्मै शूद्रम् च वर्णमनुवर्तमानौ कुर्वन्ति" ।
(ऐ०ब्रा०, 8·8·36)

शूद्र का धर्म सेवा बताया गया है, उसकी उत्पत्ति परम पुरुष के चरणों से हुई है ––

"तस्मात्पादावनेज्यन्नातिं वर्धते पत्तो हि सृष्ट:"
(ता०ब्रा०, 6·1·11)

उसे चलता-फिरता श्मशान कहा है ––

"पद्यु ह वा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्" ब्राह्मण (वेदान्तसूत्र, 1·3·38 पर उद्धृत)।

उसे यज्ञ में भी अधिकार नहीं यत: वह अज्ञानी है ––

"तस्माच्छूद्रो यज्ञे नवक्लृप्त:" (तै०सं०, 71·1·6)

वह श्रम और अज्ञान का प्रतीक पशुतुल्य ही है ––

तपो वै शूद्र:" (शत०, 13·6·2·10); "असुर्य: शूद्र:" (तै०सं०, 1·2·6·7) "गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत: त्रिष्टुभा वैश्यम् न केनचिद् छन्दसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते"। (वसिष्ठ०, 4·3)। जैमिनी वेदों के पढ़ने में शूद्रों का अनाधिकार मानते हुए उनके उपनयन का विधान नहीं करते ––

"वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यम् शरदि वैश्यमिति"
(जै०, 6·1·33)

अथर्ववेद सबका प्रिय करने का निर्देश देता है ––

"प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उत आर्ये" (अथर्व०, 19·32·8)।

उसे "यथाकामवध्य" कहा गया है। वह "अहुताद" है। (ऐतरेय-ब्राह्मण)।

अन्त में हम कह सकते हैं कि गुण-कर्म से पुन: मनुष्य तत्तत वर्णों को प्राप्त कर सकता है -- "वर्णो वृणोते:" --

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यन्तथैव च ।।"

(मनु०, 10·65)

जैसे कवष ऐलूष ने अब्राह्मण होकर भी मन्त्र का दर्शन किया था --

"ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत ते कवषमैलूषं सोमादनयन् दास्या: पुत्र: कितवोऽब्राह्मण: कथं नो मध्य दीक्षिष्टेति ---- ते वा ऋषयोऽब्रुवन् विदुर्वा इमा देवा:" (ऐ०ब्रा०, 2·3·1) ।

अत: अभिमान न करे कि हम ऊँचे हैं वह नीचा है --

"तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमान:"

(शत०, 5·1·1·1)

"धर्मचर्यया जघन्यो वर्ण: पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।।"

(आप०ध०सू०, 2·5·11·10-11)

यहाँ यह ध्यातव्य है कि जाति का आधार जन्म है जबकि वर्ण का आधार मनुष्यकृत कर्म है।

"सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म, ममायत्तं तु पौरुषम् ।।

(वेणीसंहार)

"चतुर्वेदो ऽपि दुर्वृत्त: सशूद्रादतिरिच्यते" (महा०,वनपर्व,313·19)

अतः मनुष्य के लिए उचित है कि वह वर्णाश्रम धर्म का पालन करे और सारा जीवन सांसारिक संकट में ही न गँवा दे। ब्रह्मचर्य वह नींव है जो मानवता के उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए मूलभित्ति है, कहा भी है — "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" (अथर्व0, 11·5·19)। मन, वचन और शरीर से सभी अवस्थाओं में अष्टाङ्ग मैथुन को त्यागकर वीर्य रक्षा का नाम ही वास्तव में ब्रह्मचर्य है —

"कायेन मनसा वाचा सर्वास्ववस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन-त्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्षते ।
(याज्ञवल्क्यस्मृति,)

"ओजस्तु तेजो धातूनां, शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ।
यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम् ।
प्राणभूतं चरित्रस्य, परब्रह्मैककारणम् ।
समाचरन् ब्रह्मचर्य पूज्यैतरपि पूज्यते ।"

"मरणं विन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्"।

"स्मरणं कीर्तनं केलि, प्रेक्षणं गुह्य भाषणम् ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिर्वृत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टांगं, प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम् ।।"
(दक्षस्मृति, 7·31-32)

"चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायत्तं च जीवनम्" ।
(हठयोग प्र0, 3·10)

"मलायत्तं बलं पुंसाम् वीर्यायत्तं तु जीवितम्" ।

"यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा ।
एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ।।"
(चरक,

"देवनामेतत् परिवृतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
अस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ।।"
(अथर्व०, 11·5·23)

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:" (कठोपनिषद)

उसके बाद क्रम से गृहस्थ-वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों से होकर गुजरे तभी मोक्ष सम्भव है। मनुस्मृति कहती है --

"ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्" (मनु)

प्रजातन्तु का उच्छेद न करे या तो पूर्ण नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही बना रहे जिससे मुक्ति मिल सके -- गृहस्थाश्रम तीनों आश्रमों का आधार है --

"यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ।।"
(मनु०, 3·78)

"आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रिय: ।
भिक्षाबलिपरिश्रान्त: प्रव्रजन् प्रेत्य वर्धते ।।"
(मनु०, 6·33)

सद्गृहस्थ होने के लिए वेद में कामना की गई है --

"अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्ने हं गृहपतिना भूयासम् ।
सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूया: । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु" (यजु०, 2·27)

"एतेषां जातिविहितानां कर्मणां सम्यगनुष्ठितानां स्वर्गप्राप्ति: फलस्वभावत:। वर्णा आश्रमाश्च स्वकर्मनिष्ठा: प्रेत्य कर्मफलमनुभूय तत: शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलधर्मायुश्रुतवृत्त वित्त सुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यन्ते"
(आ०स्मृ०, 2·2·2·3)

अत: सारे वर्णाश्रमों से ऊपर उठकर "मनुर्भव" (ऋ०, 10·53·6)।

"पुमान्पुमांसं परिपातु विश्वत:" (यजु0, 29·51) ।

आश्रम शब्द का अर्थ है मर्यादा से जो अभिहित या युक्त हो, "आङ् मर्यादाभिविध्यो:" (अष्टा0, 2·1·12)

संन्यास के बारे में कहा है — "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् ।"

संस्कार

भारतीय संस्कृति में पञ्चमहायज्ञ और संस्कारों का व्यक्ति और समाज दोनों के लिए सर्वाधिक महत्त्व है। मनूक्त पंचमहायज्ञ निम्नवत् है —

"ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ।।"

(मनु0, 4·21)

"पञ्चैव महायज्ञा:। तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञ: पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति" (शत0, 11·5·6·1)।

यज्ञ की महिमा वेदों में निम्न रूप में कही गई है —
"यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति" – (अथर्व 4.1.11)
"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्"

(ऋग्वेद, 1.164.50)

"यज्ञैरथर्वा प्रथम: पथस्तते" (ऋ0, 1·83·5)

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, प्रजापतिर्वै यज्ञ:" (यजुर्वेद श.ब्रा. 1.5.4.5, गोप. 2.13)

"अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:" (अथर्व0, 9.10.14)

"मा यज्ञं हिंसिष्टम्" (यजु0, 5·3)

"यज्ञं दधे सरस्वती"; 'यज्ञेन वै देवा: दिवमुपोदक्रामन्' (अथर्व 7.3.1)

ज्ञान और विद्या की उन्नति में ब्रह्मयज्ञ, विश्व की नियन्त्रिका शक्तियों के लिए देवयज्ञ, अपने पितृ-पितामह की परम्परा में पितृयज्ञ, प्राणियों के हितार्थ भूतयज्ञ और मानवों के कल्याण के लिए मनुष्य को मनुष्ययज्ञ का पालन

करना ही चाहिए। इससे शरीर ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त होता है।

"स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।।"

(मनु०, 2·28)

"संस्कार" शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय करने पर बनता है। जिसका अर्थ है कि शारीरिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति के आधायक सविधि अनुष्ठान ही संस्कार कहे जाते है।मनु का कहना है कि गार्भ, होम, जातकर्म, चूडाकर्म और मौन्जीबन्धन नामक संस्कार के अनुष्ठान से द्विजों के बीज और गर्भ सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं —

"गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौन्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ।।"

(मनु०, 2·27)

अतः

"वैदिकै कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।।"

(मनु०, 2·26)

"आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशय: विशेषः संस्कारः"

(वीरमित्रोदय)

संस्कार से ही चरित्र विकसित होता है अतः शुद्ध संस्कार के लिए शुद्ध चरित्र आवश्यक है —

"चरित्रांस्ते शुन्धामि" (यजु०, 6·13)

आश्वलायन गृह्यसूत्र में 12, पारस्कर बौधायन और वाराह गृह्यसूत्र में 13, वैखानस में 18 और गौतम धर्मसूत्रों में 40 संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। पर हम ऋषि दयानन्द जी के मतानुसार 16 संस्कार मान्य करते हैं, जो शास्त्रसम्मत है। ये निम्न हैं —

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि।

वैसे संस्कारों का चतुर्धा वर्गीकरण किया जा सकता है --

1- अन्तर्गर्भ संस्कार

(क) गर्भाधान, (ग) सीमन्तोन्नयन ।
(ख) पुंसवन,

2- बहिर्गर्भ संस्कार

(क) जातकर्म (घ) अन्नप्राशन,
(ख) नामकरण (च) चौलकर्म ।
(ग) निष्क्रमण

3- अनुव्रत संस्कार

(क) कर्णवेध, (च) केशान्त
(ख) उपनयन (छ) समावर्तन
(ग) व्रतादेश (ज) विवाह
(घ) वेदाध्ययन (झ) अग्निपरिग्रह ।

4- धर्मशुद्धि संस्कार

ये प्रतिस्विक कर्म हैं जिनमें शरीर-शुद्धि, द्रव्यशुद्धि, अघशुद्धि, एनशुद्धि तथा भावशुद्धि परिगणित हैं।

गर्भाधान

"गर्भः सन्धार्यते येन कर्मणा तत् गर्भाधानम्" अर्थात् जिस कर्म की पूर्ति से स्त्री, प्रदत्त शुक्र धारण करें वह गर्भाधान कहलाता है। तैत्तिरीय-संहिता(6•3•10•5) में कहा है, "जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः। एष वानृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी वा स्यादिति"। अर्थात् देव, ऋषि और पितृऋण से वह भी मुक्त हो जाता है, जो पुत्र वाला है। अथर्ववेद(14•2•31) में आता है, "आरोह तल्पम् सुमनस्यमानेह प्रजाम् जनय पत्ये अस्मै" यहाँ स्पष्ट ही प्रसन्न मन वाली होकर पत्नी के लिए गर्भ धारण करने का निर्देश है। ऋग्वेद(10•85•37) में कहा है, "तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति। या ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्"। यहाँ स्पष्ट ही कामना वाली स्त्री के साथ मैथुन का वर्णन ही अभिप्रेत है। प्रश्नोपनिषद् (1•13) में रात्रिकाल को ही मैथुन के लिए श्रेष्ठ माना है जिससे मनुष्य के प्राण नहीं सूखते और वह दीर्घायु होता है। ऐसे मनुष्य भी ब्रह्मचारी ही हैं जो ऋतुकाल (16 दिन) में से प्रथम चार दिन छोड़कर शेष रात्रियों में सन्तानार्थ मैथुन करते हैं। पर पर्व आदि के दिन मैथुन का निषेध है, अष्टमी और चतुर्थी को भी "ब्रह्मचर्यमेव तद् यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते"। ऋग्वेद(10•40•2) में कहा है, "को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ" यहाँ विधवा द्वारा देवर से उसके पति के निमित्त सन्तान उत्पन्न करने का आग्रह है जो नीतियुक्त है। निरुक्त(3•15) में भी ऐसा ही कथन है। गर्भाधान से सम्बद्ध यहाँ कुछ मन्त्र उद्धृत हैं —

"विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।।"
गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वती ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ।।

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥"
(ऋ०, 10·184·1-3)

यहाँ गर्भ की निर्माण-प्रक्रिया तथा दशवें महीने में उसके विमोचन का यथार्थ वर्णन हुआ है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार गर्भाधान का वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद् तथा अन्य उपनिषदों में भी हुआ है --

"उपनिषदि गर्भलम्भनम् पुंसवनम् अन्वलोभनम् च"
(आश्व०गृ०सू०, 1·13·1)

"आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्य: ॥"
(अथर्व०, 3·23·2)

पुंसवन

"पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनमीरितम्"
अर्थात् जिसके अनुष्ठान से पुत्र का जन्म हो, वह पुंसवन है। "नापुत्रस्य लोकोऽस्ति" (ऐ०ब्रा०, 7·13)। जो गर्भ धारण के दूसरे या तीसरे मास में किया जाता है, "पुरा स्यन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा" (पारस्कर गृ०सू०, 1·14) । इस अवसर पर गर्भवती स्त्री के दाहिने नाक में वटवृक्ष का रस जो गर्भपात का निरोधक है और पुंसन्तति के जन्म का हेतु है, छोड़ा जाता था जिसका वर्णन सुश्रुत के सूत्रस्थान 3·28 में है। "न क्षुभेन्न स्रवेत्तेन तत्कर्मान्विलोभनम्"। पुंसवन को प्राजापत्य भी कहते हैं, "कृणोमि ते प्राजापत्यम्" (सा०मं०ब्रा०, 1·4·8-9)।

अथर्ववेद(6·11·1) में पुंसन्तति उत्पन्न करने का स्पष्ट उल्लेख है--

"शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम् ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥" अथर्व०,6·11·1

"सुवाना पुत्रान् महिषो भवति" - अथ०, 2·36·3

अथर्ववेद (3·23·6) में कहा है कि दिव्य औषधियों के प्रयोग से तुझे सन्तति की प्राप्ति होवे --

"यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
तास्त्वा पुत्राविद्याय दैवी: प्रावन्त्वोषधय: ।"

सन्तान बहुत नहीं होनी चाहिए --

"बहुप्रजा: निर्ऋतिमाविवेश" (ऋ०, 1·164·32) ।

सीमन्तोन्नयन

"सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत्सीमन्तोन्नयनम्" अर्थात् इस संस्कार में गर्भवती स्त्री के केशों को गर्भाधान के चौथे मास में हरी टहनी से तथा कुशाग्रास से उठाया जाता है। "चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्" (आश्व०गृ० सू०, 1·14)। केवल आश्वलायन गृह्यसूत्र में ही इस संस्कार का वर्णन हुआ है जिसका प्रयोजन स्त्री को प्रसन्न करना है और गर्भ के काल कवलित होने से उसकी रक्षा करनी है। सोष्यन्तीकर्म भी इसी में समाहित है, क्योंकि सीमन्तोन्नयन छठें या आठवें मास में भी होता है, "पुंसवनवत् प्रथमे गर्भे मासे षष्ठे ऽष्टमे वा" (पार०, 1·15)। इस कर्म में प्रसूता स्त्री को जल से अभ्युक्षित किया जाता है। यथा बृहदारण्यक उपनिषद्(4·6·23) में आता है, "सोष्यन्तीं अद्भिरभ्युक्षति यथा वायु: पुष्करिणीम् समिङ्गयति सर्व:, एव ते गर्भ एजतु सहावैतु जरायुणा, इन्द्रास्यायम् व्रज: कृत: सार्गल: सपरिश्रय:। तमिन्द्र निर्जहि गर्भेण सावराम् सहेति"। ऋग्वेद(5·78·7-9) में भी यही बात कही गयी है। यथा --

"यथा वात: पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वत: ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्य: ।।
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ।।

दश मासाञ्छशयान: कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि।"
(ऋ0, 5·78·7-9)

इसी प्रकार अथर्ववेद (1·11·4-6) में भी जरायु के दूर फेंकने तथा पुत्र और माता का वर्णन प्राप्त होता है --

"नैव मांसे न पीवसि नैव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जरायवत्तवे व जरायु पद्यताम् ।"
(अथर्व0, 1·11·4)

"यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिण: ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पतावजरायु पद्यताम्।।"
(अथर्व0, 1·11·6)

जातकर्म

यह संस्कार बालक को शूरवीर तथा वर्चस्वी बनाने के प्रयोजन से किया जाता था। जन्म लेते ही उसकी जिह्वा पर स्वर्ण-शलाका से घृत एवं मधु द्वारा ओउम् लिखा जाता था, पश्चात स्तनपान कराया जाता था और कान में "वेदोऽसि" कहा जाता था। तैत्तिरीयसंहिता(2·2·5·3-4) में कहा है कि पुत्र होने पर क्या करें यथा -- "वैश्वानरम् द्वादशकपालम् निर्वपेत पुत्रे जाते यदष्टकपालो भवति गायत्र्यैवेनम् ब्रह्मवर्चसेन ---- पशुमान् भवति"। इससे पुत्र वर्चस्वी और पशुयुक्त धन वाला होता है। बृहदारण्यक उपनिषद्(1·5·2) में कहा है, "तस्मात् कुमारम् जातम् घृतम् वैवाग्रे प्रतिलेहयन्ति स्तनम् वानुधापयन्त्यथ वत्सम् जातमाहु तृणादिति"।

आश्वलायन गृह्यसूत्र(1·15·1·4) में कहा है कि बच्चे के पैदा होने पर उसे शहद-घृत चटाये तथा उसके कर्ण में मेधाजनक मन्त्र फूंके यथाहि --

"कुमारम् जातम् पुराऽन्यैरालभात् सर्पिमधूनि हिरण्यनिकाषम् हिरण्येन प्राशयेत्। प्रते ददामि मधुनो घृतस्य वेदम् सवित्रा प्रसूतम् मघोनाम् । आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतम् जीव शरदो लोकेऽस्मिन्निति। कर्णयोरुप-निधाय मेधाजननम् जपति, "मेधाम् ते देवः सविता मेधाम् देवी सरस्वती। मेधाम् ते अश्विनौदेवावाधत्ताम् पुष्करस्रजाविति। अंसावभिमृशति", "अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतम् भव। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतमिति। इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेह्यस्मै प्रयन्धि मघवन् ऋजीषन्निति च नाम चास्मै दद्युः"।

मनु कहते हैं --

"प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ।। (मनु0, 2·29)

नामकरण

बृहस्पति "वीरमित्रोदय" में नामकरण की अनिवार्यता बताते हुए कहते हैं कि "समस्त नाम समस्त लौकिक व्यवहारों का हेतु है, शिव का आधायक है और भाग्योदय का हेतु है। मनुष्य अपने नाम के आधार पर ही कीर्ति प्राप्त करता है अतः नामकरण प्रशंसार्ह है, "नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्म सुभाग्यहेतुर्नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यः ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म"। शतपथ में गुह्य नाम का उल्लेख भी मिलता है। शतपथ का कथन है, "तस्मात् पुत्रस्य नाम कुर्यात्" (शत0, 6·1·3·9)। यह संस्कार पुत्रजन्म के दशवें या बारहवें दिन किया जाता है। अन्य ग्रन्थों में 11वें दिन, 101वें दिन और दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में करने का विधान मिलता है। शतपथ-ब्राह्मण(6·1·3·9) में कहा है कि पुत्र के दो या तीन नाम रखे जिससे वह बुराइयों से पृथक् रह सके, "तस्मात् पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात् पाप्मानमेवास्य तदपहन्त्यपि द्वितीयमपि तृतीयम्"।

ऋग्वेद(7·80·9) में चतुर्थ नाम का भी सङ्केत मिलता है - "तुरीयम् नाम यज्ञीयम्" (ऋ0, 10·56·4) में इन्द्र के चार नामों का उल्लेख है - "चत्वारि ते असुर्याणि नामदाभ्यानि महीषय सन्ति।" आश्वलायन (1·15·4, 10) में दो नाम रखने का वर्णन है, एक सार्वजनीन तथा एक गुप्त (अभिवादनीयम् च) जिसे केवल उसके माता-पिता जानते हों। पुरुष का नाम सम में और स्त्री का विषमाक्षरों में रखें। यह नामकरण दसवें दिन करें। गुह्य नाम का वर्णन ऋग्वेद(10·55·1, 2) में मिलता है।

1- दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत् त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।

2- महद तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग् येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।

ऋग्वेद(9·75·2) में तीसरा नाम भी आता है, जो माता-पिता के ज्ञान में न होकर स्वर्ग के दीप्त स्थान में है --

"ऋतस्य जिह्वा --- नाम तृतीयमधि रोचने दिव: । "

तैत्तिरीय संहिता(6·3·1·3) में दो नाम वाले ब्राह्मण की समृद्धि का वर्णन पाया जाता है, "तस्मात् द्विनामा ब्राह्मणो ऋधुक:" । शतपथ-ब्राह्मण(2·1·2·11) में इन्द्र का गुप्त नाम अर्जुन है तथा फाल्गुन नक्षत्र के अधिपति के रूप में उनका फाल्गुनीय नाम भी है, "अर्जुनो ह्वै नामेन्द्र --- फाल्गुन्य इति"। वाजसनेय संहिता(17·89) में घृत का गुह्य नाम बताया गया है, "घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभि:"। तैत्तिरीयसंहिता(1·5·10·1) में आता है, "मम नाम प्रथमम् जातवेद: पिता माताऽथ देधतुर्यदग्रे"। ऋग्वेद(5·33·8) में त्रसदस्यु का एक अन्य नाम पौरुकुत्स भी है, जो उसके पिता पुरुकुत्स ने रखा था, "उतत्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरे --- "। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद(8·2·40) में मेध्यातिथि काण्व एक गोत्र नाम है। इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् (3·1·1 तथा 2·1·1) में भौगोलिक नाम काश्य चैव्य और अजातशत्रु काश्य भी पाए जाते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्(3·1·1) में जनक वैदेह नाम भी भूगोल पर

आधृत है। माता पर आधृत नाम दीर्घतमा मामतेय(ऋ0, 1·158·6), कक्षीवत औशिज (ऋ0, 1·18·1) तथा महीदास ऐतरेय(छा0उ0, 3·16·7) भी प्राप्त होते हैं। पिता पर आधृत नाम यथा सुदास पैजवन(ऋ0, 7·18·22), देवापि अर्ष्टिषेण (ऋ0, 10·98·5-6) तथा भृगुवारुणि(ऐ0ब्रा0, 13·10) में भी प्राप्त होते हैं। शतपथ-ब्राह्मण(6·2·1·37) में नक्षत्र पर आधारित नाम "आषाढि सौश्रोमतेय" का भी उल्लेख मिलता है। वेदाङ्ग ज्योतिष में 28 नक्षत्रों के अधिपतियों का नाम रखना यज्ञकर्ता के लिए आवश्यक बताया गया है ताकि वह अभिचार कर्मों से मुक्त रहे। मनु महाराज नामकरण के विषय में कहते हैं --

"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वा स्य कारयेत् ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ।।
मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ।।
शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ।।
स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ।।"

(मनु0, 2·30-33)

निष्क्रमण

सम्पूर्ण विधि-विधानों के साथ बालक को प्रथम बार गृह से निकालने के समय किए जाने वाले संस्कार को निष्क्रमण कहते हैं। यह चतुर्थ मास में होने वाला संस्कार है। यथा --

"चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ।
बहिःनिष्क्रमणञ्चैव तस्य कुर्याच्छिशोः शुभम् ।।"

(पा0गृ0सू0, 1·17·5).

"चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्"

(मनु०, 2·34)

तृतीय मास में शिशु को सूर्य दर्शन तथा चतुर्थ मास में चन्द्रदर्शन कराने का भी उल्लेख प्राप्त होता है --

"ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् ।
चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्र दर्शनम् ।।

वस्तुत: इस संस्कार का उद्देश्य ही है बालक को सृष्टि का अवलोकन कराना व वायु का सेवन कराना।

अन्नप्राशन

माँ द्वारा मिलने वाले दुग्ध से बालक की तृप्ति न होने के कारण ही इस संस्कार द्वारा उसे पौष्टिक भोजन करने का लक्ष्य रखा गया है। सुश्रुत में भी छठें माह से बालक को पथ्याहार देने की सलाह दी गई है।"लघु हितम् च" (सु०,शारीरस्थान, 10·64)। "षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले" (मनु०, 2·34)। आश्वलायन गृह्यसूत्र(1·16·1) में भी यही कहा गया है। लौगाक्षि का कथन है कि "षष्ठे अन्नप्राशनम् जातेषु दन्तेषु जातेषु वा"। बालक को प्रथम क्षीर आदि खिलाने का विधान है। वाजसनेय संहिता(18·33) में कहा है, "वाजो नोऽद्य वाजपतिर्जयेयम्" तथा "अन्नपतेऽन्नस्य नो धेह्यनमीवस्य शुष्मिण:। प्र प्र दातारम् तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे"। (तै०सं०, 4·2·3·1) ।

चूड़ाकरण

जन्म के बाद सर्वप्रथम शिर मुँड़ने को चूड़ाकरण कहते हैं। यह संस्कार प्रथम वर्ष के अन्त में या तीसरे वर्ष के अन्त में अवश्य कर दें।

"तृतीये वर्षे चौलम्"

"चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।।"
(मनु0, 2·35)

इस अवसर पर बालों को गीला करके केशों को मूड़ा जाता है पुनः केशों को गीले आँटे में या गोबर के पिण्ड के साथ गुप्त रूप में कहीं गाड़ दिया जाता है और शिर के कोमल स्थान पर शिखा रख दी जाती है। इस संस्कार से गर्भ के भीतर के बाल जो उष्णता पैदा करने वाले और स्वास्थ्य के लिए आपत्तिकर हैं, हटा दिए जाते हैं, आयुर्वेद भी इसी मत का प्रतिपादक है। ऋग्वेद(6·75·17) में आता है —

"यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु ।।"

यहाँ विशिखा का अर्थ मुण्डित(सायण) या बहुशिखायुक्त(भार0गृ0सू0, 1·28) है। अथर्ववेद(6·68·1-3) में मुण्डन का वर्णन आया है। जहाँ कहा गया है कि मुण्डन से पहले बाल गीले किए जाएँ। फिर तेज उस्तरे से उन्हें उतारा जाय जिससे बालक चक्षुष्मित और दीर्घायु वाला होवे। इस संस्कार से बालक पशुधन तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त होवें —

"आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु स चेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः।
अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ।

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ।।"

यजुर्वेद (3·63) में उस्तरे से प्रार्थना की गई है कि वह बालक को हानि न पहुँचाए --

"शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नाम स ते मा माहिंसी:"

ऋग्वेद(6·33·1) में वसिष्ठों के दाहिनी ओर केश रखने का विधान द्रष्टव्य है --

"श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियं जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु:"

आश्वलायन गृह्यसूत्र(1·17·12) में इस संस्कार का मुख्य ध्येय जीवन को दीर्घायु बनाना है - "तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये"। चरक-संहिता में कहा है कि यह संस्कार पुष्टि, बल और आयुष्य का प्रदाता है-- "पौष्टिकीम् वृष्यम् आयुष्यम्"। सुश्रुत(6·83) में शिर के मर्मस्थल शिरा और सन्धि के जोड़ स्थान पर बालों का संगुच्छ रखने की सलाह दी गई है जिसे आयुर्वेद में "अधिपति" कहते हैं।

<u>उपनयन</u>

इस संस्कार का शाब्दिक अर्थ है गुरु के समीप ले जाना। मनु आदि उपनयन द्वारा बालक का द्वितीय जन्म मानते हैं। "मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जि बन्धने" (मनु0, 2·169)। ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य का 8वें, ग्यारहवें और बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत कर दे और अधिकाधिक 16,22 और 24 वर्ष में अन्यथा वह व्रात्य(पतित) संज्ञक हो जाता है। पहले लड़कियों का भी यज्ञोपवीत होता था --

"पुराकाले कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा ।।
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्पर:।" (यमस्मृति)

सुश्रुत(सूत्रस्थान) के द्वितीय अध्याय में कहा है कि ब्राह्मण तीन वर्णों का, क्षत्रिय दो वर्णों का और वैश्य केवल अपने वर्ण का यज्ञोपवीत करके उन्हें पढ़ा सकता है । शूद्र का उपनयन न करें बल्कि उसे केवल पढ़ावे। "ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य । वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके"।

मनुस्मृति में इस संस्कार पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यथा —

"गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ।।
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ।।
आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ।।
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ।।
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान्यौनांश्च संबन्धानाचरेद् ब्राह्मणः सह ।।
कार्ष्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ।।
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
क्षत्रियस्तु मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ।।
मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्बजैः ।
त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ।।
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविक सौत्रिकम् ।।

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ।
पैल्वोदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मत: ।।
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्ड: कार्य: प्रमाणत: ।
ललाटसंमितो राज्ञ: स्यात्तु नासान्तिको विश: ।।
ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणा: सौम्यदर्शना: ।
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनाग्निदूषिता: ।।
प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ।
प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद् भैक्ष्यं यथाविधि ।।
भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तम: ।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ।।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ।।
समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदर्थममायया ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुख: शुचि: ।।"

हिरण्य गृह्यसूत्र(1•5•2) में आता है कि गुरु शिष्य से कहलवाता है कि मैं आपके पास ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने आया हूँ। वस्तुत: जो यज्ञ है, इष्ट है और मौन है, वह सब ब्रह्मचर्य ही है -- "अथ यद् यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते, अथ यद् इष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वात्मानमनुविन्दते अथ यत् सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्, ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दते। अथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्, ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मानमनुविद्य मनुते"। (छा0उ0, 8•5)

गुरु शिष्य से कहलवाते है कि मुझे सवितृ द्वारा प्रेरित समझकर शिष्य बनाइए -- "अथैनमभिव्याहारयति ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व ब्रह्मचारी भवानि देवेन सवित्रा प्रसूत:।"(अथर्ववेद(11•5•3) में आता है कि गुरु शिष्य को

तीन रात अपने उदर में रखता है और जब उसका नवजन्म होता है तो देवगण उसे देखने आते हैं --

"आचार्यो उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त: ।
तम् रात्रीस्तिस्र: उदरे बिभर्तितम् जातम् द्रष्टुं अभिसंयंति देवा:।।"

ऋग्वेद(3·8·4) में उपनयन का वर्णन है। मेखला पहने बालक और रशनासहित यूप की उपमा प्रस्तुत की गई है -- "युवा सुवासा: परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमान:। तं धीरास: कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त:।" तैत्तिरीय संहिता(6·3·10·5) में ब्रह्मचारी को तीनों ऋणों से मुक्त कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् (6·2·7) में आता है कि पहले बिना उपनयन संस्कार के भी शब्दों द्वारा ही शिष्य गुरु के समीप जाता था "वाचा ह स्मैव पूर्वम् उपयन्ति"। छान्दोग्य उपनिषद् (6·1·1) में उपनयन हेतु अवस्था ऐसी कोई चीज दिखाई नहीं देती "द्वादश वर्ष उपेत्य --- चतुर्विंशतिवर्ष: सर्वान् वेदानधीत्य" , "आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते" (अथर्व0, 11·5·17) पर आश्वलायन गृह्यसूत्र(1·19·1·6) में तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (10·2), बौधायन गृह्यसूत्र(2·5·2) और गोभिल गृह्यसूत्र(2·10·1) में आकर आयु का निर्धारण ब्राह्मण के लिए 8, क्षत्रिय के लिए 11 और वैश्य-कृते 12 वर्ष किया गया। उपनयन की दृष्टि से अथर्ववेद का (11·5) सूक्त बहुत महत्त्वाधायक है। शतपथ-ब्राह्मण (2·3·4) में आता है, "अजातो वै तावत् पुरुषो यावन्न यजते"। तैत्तिरीय संहिता(2·5·11·1) में मनुष्यों के लिए निवीत, पितरों के लिए प्राचीनावीत तथा देवों के लिए उपवीत के प्रयोग का वर्णन है - "निवीतम् मनुष्याणाम् प्राचीनावीतम् पितृणाम् उपवीतम् देवानाम् उपव्ययते देवलक्ष्ममेव तत् कुरुते"। तैत्तिरीय ब्राह्मण (3·10·9) में गौतम द्वारा यज्ञोपवीत धारण करने का वर्णन आया है, "एतावती ह गौतम: यज्ञोपवीतम् कृत्वाऽधो निपपात नामोनम इति"।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2·2·4, 22;23) में आता है कि पवित्र यज्ञोपवीत उपरिवस्त्र के विकल्प के रूप में पहना जाता था - "नित्यमुत्तारम् वास: कार्यम् अपि वा सूत्रमेवोपवीतार्थम्" । अन्यत्र वहीं 1·2·6·18, 9 में आता है, "यज्ञोपवीती द्विवस्त्र: अधोन्निवीतस्त्वेकवस्त्र:।" शतपथ-ब्राह्मण(11·5·4·1-17) में आता है कि उपनयन के बाद गुरु शिष्य को गायत्री मन्त्र की शिक्षा एक वर्ष, छ: मास, 24, 12 या 3 दिन भी देता था -- "अथासौ सावित्रीमन्वाह । तम् ह स्मैतम् पुरा संवत्सरे थ द्वादशाहे ---- अथ त्र्यहे"। कभी-कभी यह सावित्री मन्त्र शीघ्र भी सिखाया जाता था, "सद्यो ह वा त्वाव ब्रह्मण्यायनब्रूयात्" शतपथ-ब्राह्मण(11·5·4) में आता है, "अथास्मै सावित्रीमन्वाह"। तैत्तिरीय आरण्यक(2·2) में आता है, "तानि ह वा एतानि रक्षांसि गायत्र्या भिमंत्रितेनाम्भसा शमयन्ति तदु ह वा एते ब्रह्मवादिन: पूर्वाभिमुख: संध्यायाम् गायत्र्याभिमंत्रिता अथ ऊर्ध्वम् विक्षिपन्ति त एता आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति।" यहाँ गायत्री से अभिमन्त्रित जल द्वारा राक्षसों के मन्देहारुण द्वीप में फेंके जाने का वर्णन है। पहले मौखिक शिक्षा का ही प्रचलन था जिसमें गुरु-शिष्य को सिखाता था और शिष्य उसे उच्चारित करता था- "यदेषामन्यो ऽन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाण:" (ऋ0, 7·103·5) । सत्यकाम जाबाल अपने गुरु से कहता है (छा0, 4·9·5) "आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठम् प्रापयतीति"। गुरु ही परब्रह्म है, "यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता: ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:"(श्वेता0, 6·23) । "देवमिवाचार्यमुपासीत" (आप0ध0सू0, 1·2·6·13)। आचार्य विद्यार्थी को प्राणायाम की भी शिक्षा देते थे जिससे उसके शरीर की पुष्टि, बुद्धि, तेज, यश और बल की वृद्धि होती थी --

"दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मला: ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषा: प्राणस्य निग्रहात् ।।"

(मनु0, 6·71)

गोपथ-ब्राह्मण (1·31) का कहना है - "सर्वे वेदा मुक्तो गृबीत:"। अत: विद्या- प्रतिदान का भागी वही होता था जो उपनयन-संस्कार से युक्त होकर गुरु के पास जाता था अन्यथा वह विद्या बिना गुरु के बताए अभिमान और भ्रम को उत्पन्न करती है अत: उपनयन में शिक्षा का मूलोद्देश्य समाहित है। वह अष्टाङ्गयोग का पालन करता था और शिवसंकल्प से युक्त होता था--

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधय:"

(योग0, 2·29)

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषाम् ज्योतिरेकं तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु।।"

(यजु0, 34·1)

निरुक्तकार के शब्दों में कहा जा सकता है कि विद्या भी संस्कारी का वरण करती है --

"असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती यथा स्याम् ।
यमेव विद्या: शुचिमप्रमत्तम् मेधाविनम् ब्रह्मचर्योपपन्नम् ।।
यस्ते न द्रुह्येत कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन् ।"

(नि0, 2·4)

समावर्तन

"तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनान्तरम् गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्" - (वीरमित्रोदय)अर्थात् वेदाध्ययन के बाद अपने घर की ओर प्रत्यावर्तन ही समावर्तन है। इसे स्नान संस्कार भी कहते हैं तथा दीक्षान्त संस्कार भी। ब्रह्मचर्याश्रम वस्तुत: एक दीर्घसत्र है, "दीर्घसत्रं वा एष उपैति यो ब्रह्मचर्यमुपैति" - गृह्यसूत्र। यह अध्ययन के उपरान्त का सांस्कृतिक स्नान ही है --

"गुरुणानुमत: स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि: ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।।"

(मनु0, 2·4)

तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्ली, अनुभाग 7 में समावर्तन संस्कार का अच्छा वर्णन है। "वेद-वेदाङ्गों को पढ़ाकर आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करते हैं -- "सत्यं वद । धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्मा प्रमदितव्यम् । धर्मान्मा प्रमदितव्यम्। कुशलान्मा प्रमदितव्यम्। भूत्यैर्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। ये के च, अस्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः तेषां त्वया- आसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एष वेदोपनिषद्। एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम्"।

विवाह

समस्त संस्कारों में विवाह का महत्त्वपूर्ण स्थान है - "स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह" (अथर्व0, 14·2·1)। अधिकांश गृह्यसूत्र विवाह से ही आरम्भ किए गए हैं। स्वामी दयानन्द इसे गृहाश्रम-संस्कार कहते हैं। सुश्रुतशारीरस्थान में(10·47-48) स्त्री-पुरुष की न्यूनतम परिपक्वावस्था 16:25 मानी गई है --

"ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थस्य स विपद्यते ।।
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ।।"

मनुस्मृति (9·90) में कहा है कि कन्या के रजस्वला होने के तीन वर्ष बाद (36 बार रजस्वला होने पर) ही उसका विवाह करे —

"त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम् ।।"

"वैवाहिको विधि: स्त्रीणां संस्कारो वैदिक: स्मृत:।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ।।"

(मनु0, 2·67)

" प्रजनार्थं स्त्रिय: सृष्टा: सन्तानार्थं च मानवा:।"

(मनु0, 9·96)

"भार्या मूलं त्रिवर्गस्य" (महा0वन0, 74·41)

"असंस्कृताया: कन्याया: कुतो लोकस्तवानघे"

(महा0,शल्य0,52·12)

"अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री" (गौतम0, 18·1)

इस जन्म में स्त्री के साथ उसका चौथा पति व्याहा जाता है —

"सोम: प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तर: ।
तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा: ।।"

(ऋ0, 10·85·40)

कन्या चाहे उम्र भर कुँवारी बैठी रहे पर उसका असदृश विवाह कदापि न करें —

"काममामरणात् तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ।।"

(मनु0, 9·89)

हमारे यहाँ विवाह को परम अनिवार्य मानते हुए कहा गया है -

"अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीक:" (तै0ब्रा0,2,2,2·6)

"अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायतेऽसर्वो हि तावद् भवत्यथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि हि सर्वो भवति"। (शत0, 5·2·1·10)

"अपत्नीको नरो भूप कर्मभ्यो न जायते ब्राह्मण: क्षत्रियो वाऽपि वैश्य शूद्रोऽपि वा नरे:" । (याज्ञ0स्मृति)

"अथोऽर्धो वा एष आत्मन: यत्पत्नी: ।" (तै0ब्रा0, 2·9·4·7)

वेदाध्ययन के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे --

"अविलुप्त ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्"

(मनु0, 3·2)

विवाह उसी से करें जो माता की छ: पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो तथा अन्य बातें भी द्रष्टव्य हैं, जो निम्नवत् है --

"असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितु: ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।।
महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यत: ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्धयेत् ।।
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ।।
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम् ।।
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ।।
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेश दशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ।।
यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता।
नोपयच्छेत: तां प्राज्ञ: पुत्रिकाधर्मशङ्कया ।।

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते।।"

(मनु०, 2·5-11)

"बुद्धिरूपशीललक्षणसम्पन्नाम् अरोगामुपयच्छेत् "

(आश्व०गृ०सू०, 1·5·1)

"यस्याम् मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्याम् ऋद्धिर्नेतरदद्रियेतेत्येके"

(आप०ध०सू०, 3·2·1)

"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्ये उशती सुवासोषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ।।"

(ऋ०, 1·124·7)

"अभ्रातरेव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः"

(अथ०, 1·17·1)

"वर्णान्तरे च मैथुने दोषः" (आप०ध०सू०, 2·6·13)

"दारानाहरेत् सदृशान् असमानार्षेयानसम्बन्धान्
आसप्तमपञ्चमात् पितृमातृबन्धुभ्यः"

(आप०ध०सू०, 2·5·11-16)

विवाह में गोत्र और प्रवर की भिन्नता आवश्यक है --

"Gotra is the latest ancestor or one of the latest ancestors of a person by whose name his family is known while the latter is constituted by sages or sometimes the remotest ancestor alone".

H.P.Chakraborty in Socio-Economic Life of India in the Vedic Period.

प्रवराध्याय(54) में बोधायन सगोत्र कन्या से मैथुन करने पर चान्द्रायण व्रत का विधान करते है तथा उसे बहन या माता सदृश देखने के लिए

कहते हैं और उससे पुत्र होने पर उसका गोत्र "कश्यप" बताते हैं।

"नाभ्रातृकामुपयच्छेत तत्तोकं ह्यस्य भवति"

(याज्ञ०स्मृति, 1·53)

"अभ्रातृका पुंसः पितृनभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम्"

(वसि०ध०सू०, 17·16)

और भी -

"अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत ।।
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।।"

दाराओं के अधीन ही धर्म है, स्वर्ग है, रति है, पुत्र है —

"प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ।।
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ।।
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ।।"

(मनु०, 9·26-28)

स्त्री क्षेत्र है पुरुष बीज है —

"क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ।
क्षेत्र बीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ।।"

(मनु०, 9·33)

विवाह का उद्देश्य दोनों का प्रसन्न रहना है —

"सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।।

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुन: पुंस: प्रजनं न प्रवर्तते ।।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ।।"

(मनु0, 3·60-62)

स्त्रियों का अप्रसन्न रहना शुभ नहीं है --

"शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ।।
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिता: ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्तत: ।।
तस्मादेता: सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनै: ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ।।"

(मनु0, 3·57-59)

स्त्रियाँ रत्न हैं उनके कर्तव्य के बारे में मनुस्मृति कहती है --

"स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम् ।"

(मनु0, 2·240)

"सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।।"

(मनु0, 5·150)

"स्त्रीरत्नं दुष्कुलाच्चापि विषादप्यमृतं पिबेत् ।
अदुष्या हि स्त्रियो रत्नमाप इत्येव धर्मत: ।।"

(महा0,शां0, 165·32)

स्त्री-पुरुष का वियोग न होना चाहिए यतः उनके दोष निम्न हैं --

"पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट् ।।"

(मनु०, 9·13)

उनका पुनर्विवाह भी हो सकता है यदि वह अक्षतयोनि है तो-

"या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्यात् गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ।।"

(मनु०, 9·176)

पुरुष के लिए उचित है कि वह विवाह करके ऋतुकालाभिगामी हो। और रजस्वला के साथ सम्भोग न करे --

"आत्रेय्या योषितैनस्वी"

(शत०, 1·4·5·13)

"रजसाभिलुप्तां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ।।"

(मनु०, 4·41)

पर्व, एकादशी, त्रयोदशी तथा दिन में मैथुन-कर्म न करे --

"ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद् व्रतो रतिकाम्यया ।।
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशः स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ।।
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ।।"

(मनु०, 3·45-47.)

आयुर्वेद में एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए अपनी स्त्री के साथ तीन-तीन दिन पर सहवास का विधान है "त्रिभिस्त्रिभिर्व्रजेताहोभिः" (वाग्भट)

पर वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में 15-15 दिन पर "पञ्चदशभिरेवाहोभि:" (सुश्रुत, वाग्भट)। क्योंकि विवाह का उद्देश्य भी त्यागपूर्वक भोग ही है। वेद में भी कहा है कि --

"इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि: मोदमानौ स्वे गृहे ।।"

(ऋ0, 10·85·42)

स्त्री को दश पुत्र उत्पन्न करने का निर्देश है --

"इमां त्वमिन्द्रमीढ्व: सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ।।"

(ऋ0, 10·85·45)

विवाह के समय पति- पत्नी से कहता है --

"गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथास: ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वदुर्गार्हपत्याय देवा: ।।"

(ऋ0, 10·85·36)

हम दोनों एक दूसरे में समाहित हो जायें --

"मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते स्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ।।

(पा0गृ0सू0, 1·8·8)

"यदेतद् हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम ।
यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ।।"

(मन्त्र ब्रा0, 1·3·9)

पति विवाह के अवसर पर कहता है मैं साम हूँ तू ऋक् है, मैं द्यौ हूँ, तू पृथ्वी है --

"अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथ्वी त्वम् ।
ताविव संभाव प्रजामाजनयावहै" (अथर्व0, 14·2·71)

विवाहिता को आशीर्वाद देते हुए कहा गया है --

"अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्य: सुमना: सुवर्चा: ।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।"

(ऋ0, 10·85·44)

"सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी अधिदेवृषु ।

(ऋ0, 10·85·46)

"जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्"

(अथर्व0 3·30·2)

भद्र वधू उसे कहते हैं, जो स्वयम् अपने पति का चयन करे --

"भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशा: स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्"

(ऋ0, 10·27·12)

अथर्ववेद (18·3·3) में स्पष्ट ही पति की मृत्यु होने पर विधवा विवाह का वर्णन है, वह अन्धतम से प्रगति की ओर जाती है --

"अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्य: परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम्।।"

विधवा अपने देवर से नियोग द्वारा सन्तति की उत्पत्ति कर सकती है --

"को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ"

(ऋ0, 10·40·2)

भाई-बहन में विवाह निषिद्ध था । यम-यमी सूक्त देखें --

"उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्"।

(ऋ0, 10·10·10)

ब्राह्मण ग्रन्थों के समय बहुविवाह का भी उल्लेख मिलता है --

"अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतु: मैत्रेयी च कात्यायनी च"

(शत0, 14·7·3·1)

मैत्रायणी संहिता (1·5·8) में कहा है -- "मनोर्वै दश जायाऽऽसन्।"

जबकि ऋग्वेद(10·101·11) में दो पत्नियों वाले पुरुष की उपमा उस घोड़े से की गई है जो दोनों धुरों के बीच दबकर चलता है --

"उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानि:"।

सूर्या के दान द्वारा उस समय कन्यादान का वर्णन प्राप्त होता है --

"सोमो वधूयुरभवदश्विना ता उभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ।।"

(ऋ0, 10·85·9)

यहाँ पति की कामना वाली सूर्या का सविता ने कन्यादान किया है, जो बाल-विवाह का निषेधक है। वर मिलने के पश्चात् पिता बहुत सुखी होता था। यथा --

"पिता यत्र दुहितु: सेकमृञ्जन् सं शग्म्येन मनसा दधन्वे"

(ऋ0, 3·31·1)

शतपथ-ब्राह्मण(4·1·5·9) में सुकन्या की पतिव्रता सराहनीय है --

"सा होवाच यस्मै मां पिता दान्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति।"

बहु विवाह की प्रथा ऋग्वेद में मिलती है। यथा --

"पतिं न नित्यं जनय: सनीळा:" (ऋ0, 1·71·1)

"जनीरिव पतिरेक: समान:" (ऋ0, 7·26·3)

राजाओं की चार पत्नियाँ होती थीं। 1- महिषी, 2- परिवृक्ती, अर्थात् पुत्रहीन पत्नी (ऋ0, 10·102·11), 3- वावाता (राजा की प्रियतमा) (ऐ0ब्रा0, 12·11), 4- पालागली (राजनैतिक उद्देश्य से व्याही गई) (शत0, 13·4·1·8)

ऐतरेय-ब्राह्मण में जीवन के चार पड़ावों का वर्णन है जहाँ मलम् (मैथुनकर्म), अजिन(ब्रह्मचर्य) और तप: अन्तिम दो अवस्थाओं के लिए प्रयुक्त है, "किम् नु मलम् किमजिनम् किमु श्मश्रूणि किं तप: । पुत्रं ब्राह्मणा इच्छध्वं

स वै लोकवदावद:" (ऐ०, 33·11)।

ऋग्वेद (10·85) तथा अथर्ववेद (14·1·2) में विवाहोत्सवों का वर्णन है। ऋग्वेद(3·53.4) में "जायेदस्तम्" कहकर उसे गृहस्थ जीवन का प्राणरूप बना दिया है। ऐतरेय-ब्राह्मण(1·2·5) में कहा है - "तस्मात पुरुषो जायाम् वित्वा कृत्स्नतरमिवात्मानम् मन्यते"।

विवाह के लिए मघा नक्षत्र उपयुक्त है। यथा —

"सूर्याया वहतु: प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्यो: पर्युह्यते ।।"

(ऋ०, 10·85·13)

स्मृतियों में विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं —

"ब्राह्मो दैवस्तथैवार्ष: प्राजापत्यस्तथाऽऽसुर: ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम: ।।"

(मनु०, 3·21)

इनमें प्रथम चार— ब्राह्म, देव, आर्ष और प्राजापत्य प्रशस्त माने गए हैं तथा शेष आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच अप्रशस्त माने गए हैं।

ब्राह्म विवाह विवाहों में श्रेष्ठ माना गया है। यह ब्राह्मणों के योग्य विवाह माना गया है जिसमें वर को आमन्त्रित करके पिता दक्षिणा सहित अलंकृत कन्या उसे दान कर देता था —

"आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्म: प्रकीर्तित: ।।"

(मनु०, 3·27)

"उत यत्पतयो दशस्त्रिया: पूर्वे अब्राह्मणा: । ब्रह्मा चेद्धस्त-मग्रहीत् स एव पतिरेकधा" । (अथर्व०, 5·17)

देव विवाह में पिता कन्या को आरब्ध यज्ञ में पुरोहित के लिए

दान कर देता था, "ऋत्विजे विततें कर्मणि दद्यादलंकृत्य स दैव" (आश्व०गृ०सू०)। यह कन्या दक्षिणारूप में दी जाती थी अत: इसे दैव कहते हैं "दक्षिणासु दीयमाना स्वन्तर्वेदि यत्त्वृत्विजे स दैव:" (बौ०गृ०सू०)। मनु कहते हैं --

"यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ।।"

(मनु०, 3·28)

आर्ष विवाह में कन्या का पिता वर से दो गो-मिथुन (यज्ञ-कार्य हेतु लेकर) कन्यादान कर देता था। यह विवाह ऋषि परम्परा में प्रचलित था --

"एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मत: ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्म: स उच्यते ।।"

(मनु०, 3·29)

प्राजापत्य विवाह में पति-पत्नी को समान धर्माचरण का उपदेश दिया जाता था, "सहधर्मं चरत इति प्राजापत्य:" । प्रजापति के प्रति अपना ऋण चुकाने अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने हेतु दम्पति का वैवाहिक निबन्धन ही प्राजापत्य है --

"सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधि: स्मृत: ।।"

(मनु०, 3·30)

आसुर विवाह में कन्या के माता-पिता को धन देकर कन्या से विवाह किया जाता है। आश्वलायन इसे गान्धर्व से श्रेष्ठ मानते हैं --

"ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तित: ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ।।"

(मनु०, 3·31)

गान्धर्व विवाह में स्त्री-पुरुष परस्पर सलाह करके जब समागम करते

हैं तब वह कामुकतावश स्वेच्छया सम्भोग हीगान्धर्व विवाह का आधार होता है। धार्मिक दृष्टिकोण से इसे कामचार समझकर अच्छा नहीं माना जाता पर महाभारत में इसे दो व्यक्तियों के पारस्परिक प्रेम पर आधृत मानकर इसे प्रशंसित किया है --

"सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रः श्रेष्ठ उच्यते" (महा0)

अथर्ववेद में एक जगह गन्धर्व पत्नियों का उल्लेख मिलता है ।

मनु कहते हैं --

"इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥"

(मनु0, 3·32)

राक्षस-विवाह में रोती पीटती कन्या के सम्बन्धियों को मारपीट कर कन्या के बलात् हरण को राक्षस-विवाह कहते हैं- "क्षत्रियाणाम् तु वीर्येण प्रशस्तम् हरणं बलात्" (महा0, 1·246·6) । जो प्राचीन युद्धप्रिय जनों में प्रचलित थी और कथमपि अनुचित न थी। भीष्म ने इसे क्षत्रियों के लिए उचित माना है -- "युद्ध हरणेन राक्षसः राक्षसो युद्धहरणादिति"।

मनु कहते हैं --

"हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥"

(मनु0, 3·33)

अप्रशस्त विवाहों में पैशाच विवाह नितान्त निकृष्ट है इसमें सुप्त या मत्त कन्या के साथ एकान्त में मैथुन बलात् सम्पादित किया जाता है। मनु कहते हैं --

"सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥"

(मनु0,3·34)

विवाह की प्रक्रिया छ: सिद्धान्तों पर आधृत है --

1- कन्यादान,

2- पाणिग्रहण - "पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव" (अथर्व0, 14·1·51)

3- अश्मारोहण

4- कुशण्डिका (लाजा होमादि) - लाजाहोम में पत्नी यह कहती थी --
"मुञ्चतु मा पते, आयुष्मानस्तु मे पति:, एधन्तां ज्ञातयो मम, समृद्धिकरणं तव"।

5- सप्तपदी --- "सप्तास्यासन् परिधय:" (यजु0, 31·15)

"इषे एकपदी भव। ऊर्जे द्विपदी भव। रायस्पोषाय त्रिपदी भव। मयोभवाय चतुष्पदी भव। प्रजाभ्य: पञ्चपदी भव। ऋतुभ्य: षट्पदी भव। सखे सप्तपदी भव।

6- आशीर्वितरण -- "इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु।"

(अथर्व0, 14·1·56)

"समापो हृदयानि नौ" (ऋ0, 10·85·47)

कुछ लोग विवाह के अवसर पर गौ-मारण का भी सङ्केत करते हैं, पर ऐसा है नहीं। वेद में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें से कुछ यहाँ द्रष्टव्य हैं। ऋग्वेद(1·112·19) में ब्राह्मण विमद और राजकन्या कमद्यु का विवाह अनुलोम है -- "याभि: पत्नीर्विमदाय न्यूहथु: --- ।" ऋग्वेद(5·61·17,19) में ब्रह्मर्षि श्यावाश्व द्वारा राजा रथवीति की कन्या दार्भ्य के साथ विवाह का उल्लेख है, "एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परावह"। यदि एक कन्या से ब्राह्मण- क्षत्रिय- वैश्य तीनों विवाह करने के इच्छुक हों तो प्राथमिकता अथर्ववेद(5·17·9) के अनुसार ब्राह्मण की हो, "ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्य:"। ऋग्वेद(10·109·6) में राजा द्वारा ब्राह्मण की पत्नी के अपहरण तथा बाद में उसे लौटाने का उल्लेख है-

"पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत। राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः"।

<u>अन्त्येष्टि</u>

बौधायन पितृमेध सूत्र (3·1·4) में लिखा है, "जातसंस्कारेणेमं लोकमभिजयति मृतसंस्कारेणामुं लोकम्"। इस संस्कार का वर्णन ऋग्वेद और अथर्ववेद में उपलब्ध है। इस संस्कार के करने से संक्रामक रोग और कीटाणु तो नष्ट हो ही जाते हैं मृतक और जीवित व्यक्ति के कर्तव्यों में भी सामन्जस्य बना रहता है। वेद में अग्नि का आह्वान किया गया है कि वह मृत व्यक्ति को यमलोक "यमो वायुः" में पहुँचाए तथा पिण्डीय शक्तियाँ ब्रह्माण्डीय शक्तियों के साथ एकरूप हो जायें --

"सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः"

(अथर्व0, 18·2·7)

अथर्ववेद(18·2·34) में मृत व्यक्ति के गाड़ने, बहाने, जलाने और एक ऊँचे स्थान पर रखने का वर्णन मिलता है --

"ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ।।"

अन्त्येष्टि संस्कार के समय पितरों का आह्वान किया जाता था कि वे यज्ञ में आयें इसे पिण्डपितृ यज्ञ कहते थे।

"ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभि स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ।।"

(ऋ0, 10·15·14)

अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह मृत को सुकृत वाले लोक में ले जायें --

"यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम्"

(ऋ०, 10·16·4)

"अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभि: ।
आयुर्वसान उपवेतु शेष: संगच्छतां तन्वा जातवेद: ॥"

(ऋ०, 10·16·5)

पारिवारिक जीवन

वेदकालीन समाज वस्तुत: पितृमूलक था। पिता अपने घर का मुखिया था "पिता माता मधुवचा: सुहस्ता:" (ऋ०, 5·43·2), "स्वस्ति मात्र उत पित्रे नोऽस्तु" (अथर्व०, 1·31·4) जिसकी छाया में पुत्र-पुत्री, बहू, स्त्री आदि रहा करते थे।

"इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्त: पयस्वन्त:"

(अथर्व०, 7·60·2)

"अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन"

(अथर्व०, 7·60·4)

"ऊर्जं गृहेषुधारय" (अथर्व०, 6·79·2)

"यत्रा सुहार्द: सुकृतो मदन्ति —— तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्"

(अथर्व०, 6·120·3)

पिता अपने पुत्र और पुत्रियों को उचित शिक्षा प्रदान करता था—

"साधुं पुत्रं हिरण्ययम्" (अथर्व०, 20·129·5)

"प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम" (ऋ०, 5·4·10)

"ते सूनव: स्वपस: सुदंसस:" (ऋ०, 1·159·3)

"यथा इयं इन्द्र मीढ्व: सुपुत्रा सुभगा असति"

(ऋ०, 10·85·25)

पुत्रियों का मौञ्जी-बन्धन भी होता था। एक पिता अपने पुत्र को जुआ खेलने पर दण्डित करता है ——

"पितेव कितवं शशास" (ऋ०, 2·29·5)

अन्यत्र ऋग्वेद(1·1·9) में पिता का अपने पुत्रों के प्रति सहज प्रेम-भाव अवश्य ही द्रष्टव्य है --

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव सचस्वा नः स्वस्तये"।

"इहैव स्तं मा वियोष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ।।"
(ऋ०, 10·85·42)

तथा

"स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ।।"
(अथर्व०, 14·2·43)

अथर्ववेद(18·4·75-77) में स्वधा का प्रयोग पिता, पितामह और प्रपितामहों के लिए किया गया है --

"एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ।
एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ।
एतत् ते तत स्वधा ।

छान्दोग्य उपनिषद्(4·1·1) में पौत्रायण शब्द के प्रयोग से(जानश्रुतिः पौत्रायणः) तत्कालीन समाज के चार पीढ़ियों की सहयोगात्मक झाँकी देखने को मिलती है।

"येन देवा न वियन्ति, नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे, संज्ञानं पुरुषेभ्यः ।।"
(अथर्व०, 3·30·4)

ऋग्वेद(5·3·2, 8·31·5) में दम्पति शब्द का प्रयोग मिलता है जहाँ वे दोनों मिलकर सोमरस निकालते हैं --

"या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः"

विश्ववारा (ऋ0, 5·28·3) जो अत्रि ऋषि की दुहिता थीं, उत्तम दाम्पत्य जीवन के लिए प्रार्थना करती दिखाई देती हैं। ऋग्वेद(1·179·1-4) में अगस्त्य और लोपामुद्रा का दाम्पत्य जीवन के आनन्द के विषय में संवाद चित्ताकर्षक है। ऋग्वेद(10·86·7-9) में इन्द्र-इन्द्राणी और वृषाकपि का कलहात्मक दृष्टिकोण भी दृश्यमान होता है। ऋग्वेद (4·42·9) में एक बार ही विवाह करने की प्रथा देखने को मिलती है। पुरुकुत्स की पत्नी पुरुकुत्सानी ने इन्द्र और वरुण की कृपा से त्रसदस्यु को प्राप्त किया था। पत्नी पर यहाँ पति का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। वरुणानी, इन्द्राणी और अग्नायी नाम भी देवताओं का उनकी पत्नियों पर वर्चस्व प्रदर्शित करते हैं। ऐतरेय-ब्राह्मण(3·11) में प्रासहा को इन्द्र की पत्नी कहा गया है, जो बहुविवाह का सूचक है। प्रजापति प्रासहा के श्वसुर हैं -- "प्रासहे कस्त्वा पश्यति" । ऋग्वेद(8·91·4) (कुवित् पतिद्विषो----) में अत्रि-पुत्री अपाला को उसके पति द्वारा छोड़ दिए जाने का वर्णन है क्योंकि उसे कुष्ठ रोग था जिसे इन्द्र ने ठीक कर दिया था। ऋग्वेद (1·191·10) में सुरागृह का उल्लेख है -- "सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे"। तैत्तिरीयसंहिता(1·8·9) में विभिन्न देवताओं के लिए विभिन्न सदनों में बैठकर आहुति देने का वर्णन मिलता है। गृहों के निर्माण का सुन्दर संकेत निम्न मन्त्र में है --

"उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि विचृतामसि ।।"

(अथर्व0, 9·3·1)

बृहस्पति को ब्राह्मण के घर में, इन्द्र को राजन्य के घर में, आदित्य को महिषी के घर में, निर्ऋति को साधारण पत्नी के घर में इत्यादि इससे स्पष्ट है कि उस समय सबके कमरे अलग-अलग बँटे होते थे और बहुविवाह की प्रथा थी। साधारणतया घर चार हिस्सों में बँटा रहता था --
1- हविर्धान, 2- अग्निशाला, 3- पत्नी-सदन, 4- सदस् ।

"हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ॥"

(अथर्व०, 9·3·7)

घर विशाल, शुद्ध प्रकाश वाला, शुद्ध भूमि वाला हो —

"अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रतिगृह्णामि त इमाम् । यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः। तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै" । (अथर्व०, 9·3·15)

"ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥"

(अथर्व०, 9·3·16)

"ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥"

(अथर्व०, 9·3·19)

"या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥"

(अथर्व, 93·21)

"वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि") ।

(अथर्व०, 9·3·24)

घर में क्या हो, देखें —

"उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥"
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवं शग्मं शंयोः शंयोः ॥"

(यजु०, 3·43)

ऋग्वेद में संयुक्त परिवार का दृष्टान्त ऋग्वेद के मन्त्र(7·88·5) से मिलता है जिसमें वरुण के घर में 1000 दरवाजे बताए गए हैं —

"बृहन्तम् मानम् वरुण स्वधावः सहस्रद्वारम् जगमा गृहं ते"।
अतः पुत्र और पत्नी वैदिक समाज में अपने पिता और पति के नाम से जाने जाते थे। यथा – त्रसदस्यु का एक नाम पौरुकुत्सी है। पुरुकुत्स की स्त्री का नाम पुरुकुत्सानी। इसी प्रकार मुद्गलानी नाम भी मिलता है। ऋग्वेद(1·117·7) में घोषा का प्रौढ़ावस्था तक अपने पिता के यहाँ पड़ी रहने का वर्णन मिलता है जबतक उसकी शादी न हो गई —

"घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्"

ऋग्वेद(5·47·6) में घरेलू काम औरतों के जिम्मे बताया गया है — "वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति"। ऋग्वेद(9·112·3) में "उपलप्रक्षणी नना" माता का ओखली में जौ कूटने का वर्णन है। ऋग्वेद(1·191·14) में स्त्रियों का पानी के घड़े ढोने का वर्णन है – "उदकुम् कुंभिनीरिव"। ऋग्वेद(2·32·4) में "सीव्यत्वपः सूच्याछिद्यमानाया" राका द्वारा सूई द्वारा सीने-पिरोने-काढ़ने का भी वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद(10·85·42 और 44) में स्त्रियों को पुत्र-पौत्रों से युक्त और "वीरसू" होने का भी आशीर्वाद दिया जाता था।

पत्नी को वेद में कुल का भूषण कहा जाता था —
"जायेव योनावरम् विश्वस्मै" (ऋ0, 1·66·5-6)
स्त्री ही परिवार की समृद्धि है —
"यन्त्री राड्· यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री"
(यजु0, 14·22)
"मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी"।
(यजु0, 14·21)

जुआड़ियों की स्त्रियों का बड़ा मार्मिक वर्णन हमें प्राप्त होता है – "जाया तप्यते कितवस्य दीना" (ऋ0, 10·34)। पत्नियाँ हवन के अलावा देवताओं को भोग भी देती थीं ताकि उन्हें अमरता प्राप्त हो, "दशस्यन्तामृताय कम्"। पत्नियाँ अपने पति की नाकामियों के विरुद्ध आवाज भी

उठाती थी यथा शश्वती – "सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि"। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (1·1·6, 14; 16; 20) में स्त्रियों के अधिकार का अतिसुन्दर वर्णन है --

"पाणिग्रहणाद्धि सहत्वम् कर्मसु --- द्रव्यपरिग्रहेषु च ।
न हि भर्त्तुर्विप्रवासे नैमित्तिके दाने स्तेयमुपदिशन्ति।।"

शादी के उपहारों की पत्नी ही स्वामिनी थी। "पत्नी वै परिणाह्यस्य ईशे" (तैत्सं०, 6·2·1·1)। वैदिक साहित्य में स्त्री धन के बारे में कोई स्पष्ट मन्तव्य नहीं मिलता। तैत्तिरीय संहिता (6·5·8·2) में आता है, "तस्मात् स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायादी:"। अर्थात् उसे विरासत में कुछ भी मिलने का अधिकार नहीं। बृहदारण्यक उपनिषद् (2·4) में याज्ञवल्क्य द्वारा अपनी दोनों पत्नियों के मध्य सम्पत्ति के बँटवारे का वर्णन प्राप्त होता है। स्त्रियाँ चल सम्पत्ति के रूप में हस्तान्तरित भी की जाती थी जैसा अक्षसूक्त (10·34·2, 4) से परिलक्षित होता है। डॉ० अल्तेकर (पी०डब्ल्यू०एच०सी०, पृ० 213) में लिखते हैं --

"In India too in very early times women were regarded as chattel. They were given away as gifts in the vedic age, as would appear from several hymns, which gratify the gifts of generous donors."

ऋग्वेद (8·19·36) में हमें दान में प्रदत्त वधुओं का उल्लेख मिलता है जो सम्भवत: विधवाएँ थीं या अनार्य जाति की अविवाहित महिलाएँ थी जो बाद में आर्य जाति में समाहित कर ली जाती थीं -- "अदान् मे पौरुकुत्स्य: पञ्चाशतम् त्रसदस्युर्वधूनाम्" । यहाँ त्रसदस्यु द्वारा 50 वधुओं को दान में देने की प्रशंसा की गई है। औरतों का बहुत सम्मान था यहाँ तक कि अन्धी औरत को भी विवाह में शामिल किया गया। ऋग्वेद (10·27·11) के अनुसार, "यस्या

नग्ना दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्यते अन्धाम्"।

अतिथि का वेदों में बहुत महत्त्व बताया है।

"एषवा अतिथिर्यत् श्रोत्रिय: तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्"

(अथर्व0, 9·6·37)

"इष्टं च वा एष पूर्त्तं च गृहाणामश्नाति ---- ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति य: पूर्वोऽतिथेरश्नाति" ।

(अथर्व0, 9·6·31, 33·35, 36)

वैदिक साहित्य में बहन के लिए भाई का बहुत महत्त्व बताया गया है। बिना भाई के बहन भाग्यहीन समझी जाती थी। भाई ही ऐसा है, जो पिता की अनुपस्थिति में या न रहने पर बहन का सहयोग या उसकी रक्षा करता था।

"मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यन्च: सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।"

(अथर्व0, 3·30·3)

"सं भ्रातरो वावृधु: सौभगाय" (ऋ0, 5·60·5)

ऋग्वेद (3·31·2) में स्पष्ट कहा है कि पिता की सम्पत्ति में लड़की का कोई भाग नहीं होता "न जामये तान्वो रिक्थमारैक" । पर भाई लड़की या उसके पति को धन अवश्य देता था। अथर्ववेद(2·10·1) में "जामिशंसाद्" शब्द भाई का बहन के प्रति भय परिलक्षित करता है। पर ऋग्वेद (3·31·1) में भाई बहन को समान साम्पत्तिक अधिकार देता है --

"शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितु: सेकमृन्जन् सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ।।"

ऋग्वेद के मन्त्र(1·124·7) की (अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्) व्याख्या में यास्क कहते हैं -- "अभ्रातृकेव पुंस: पितृनेत्यभिमुखी

सन्तानकर्मणि पिण्डदानाय न पतिम् ---- "। ऋग्वेद(1·109·2) में कहा है "अश्रवम् हि भूरिदावत्तरा वा घा श्यालात्"। यास्क कहते है श्याल: उसे इसलिए कहते है कि वह लाजा को श्या(सूप) द्वारा प्रदान करता है। ऋग्वेद 6·55·5 में आता है --

"मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जार: श्रृणोतु न:। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम"

अर्थात् पूषन् अपनी माता के दिधिषु (Lover) हैं, अपनी बहन के चाहने वाले हैं, इन्द्र के भ्राता और हमारे मित्र हैं। कुछ अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं।

"अनुव्रत: पितु: पुत्रो मात्रा भवतु संमना: ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।।"

(अथर्व0, 3·30·2)

"समन्जन्तु विश्वे देवा: समापोहृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ।।"

(ऋ0, 10·85·47)

"स्योना भव श्वसुरेभ्य: स्योना पत्ये गृहेभ्य: ।
स्योनाऽस्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ।।"

(अथर्व0, 14·2·27)

"ममेयमस्तु पोष्या" (अथर्व0, 14·1·52)

स्त्री का धन उड़ाने की सजा बहुत मँहगी हैं --

"उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि समन्जिं चारया वृषन् ।
य: स्त्रीणां जीवभोजन: । "

(यजु0, 23·21)

"प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयु: सविता कृणोतु ।।"

(अथर्व0, 14·2·75)

"अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि" (ऋ0, 10·85·27)

स्त्री गृहजीवन की उषा है --

"इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि"।

(अथर्व0, 14·2·31)

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

(अथर्व0, 3·30·1)

"येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥"

(अथर्व0, 3·30·4)

"ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥"

(अथर्व0, 3·31·5)

"सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥"

(अथर्व0, 3·30·7)

वस्त्र और आभूषण

वैदिक लोग प्रायः तीन प्रकार के वस्त्र पहनते थे -- वास(कटि के नीचे पहनने वाला), अधीवास (कटि के ऊपर पहनने वाला) तथा नीवि जिसे वस्त्र के नीचे पहनते थे --

"यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्" ।

(अथर्व0, 8·1·16)

"या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व --- ॥"

(अथर्व0, 14·2·50)

"अधीवासं परि मातु रिहन्नह --- ॥"

(ऋ0, 1·140·9)

"यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै" ।

(ऋ0, 1·162·16)

"यस्य ते वास: प्रथमवास्यं हराम:" (अथर्व0, 2·13·5)

"परीदं वासो अधिथा: स्वस्तये" (अथर्व0, 2·13·3)

शतपथ-ब्राह्मण में यज्ञीय परिधान के वर्णनों में (शत0, 5·3·5·20) शामुल्य, तार्प्य, पाण्डव, अधीवास और उष्णीष प्रमुख हैं। तार्प्य रेशमी वस्त्र है। पाण्डव एक ऊनी कपड़ा। उस याज्ञिक कर्मकाण्ड में स्त्रियाँ "कौश वस्त्र (कुशा निर्मित) या रेशमी वस्त्र धारण करती थीं --

"कौशं वास: परिधापयति" (शत0, 5·2·1·8)

अथर्ववेद (14·2·41, 49) में वाधूय वस्त्र और उपवासन (ओढ़ने की चादर) का उल्लेख है --

"देवैर्दत्त मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वधवश्च वस्त्रम्"

"यावती: कृत्या उपवासने ---- ---- "

यजुर्वेद (38·3) में "इन्द्राण्या उष्णीष:" का प्रयोग स्त्रियों की पगड़ी की ओर संकेत करता है।

शांखायन आरण्यक (11·4) में कौसुम्भ परिधान का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद (1·66·10) में अजिन् शब्द का प्रयोग हुआ है, जो बकरों के चर्म से बनता है। अथर्ववेद (18·4·31) में मृतकों के शरीर पर तार्प्य वस्त्र (तृण का सूत) पहनाने का उल्लेख आया है। ऋग्वेद (1·92·4) तथा 10·1·6) में उषा सुन्दरी का परिधान नितान्त चित्ताकर्षक है। सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत वधू का वर्णन द्रष्टव्य है --

"यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव" ।

(ऋ0, 8·26·13)

उषा की साड़ी रङ्गीन और सुनहरे तारों की बनी लगती है। उषा जो सुन्दर वस्त्रों से और स्वर्णभूषणों से अलंकृत हैं, उनका चित्रण निम्न मन्त्र में है --

"स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः"

(ऋ0, 1·122·2)

प्रतिधि(अथर्व0, 14·1·8) जो सिला वस्त्र था, दुल्हन के वस्त्रों में वर्णित है। ऋग्वेद(1·25·13) में वरुण द्वारा द्रापि (Jacket) पहनने का वर्णन है और 4·53·2 में सविता द्वारा पिशंग द्रापि तथा अथर्ववेद(5·7·10) में स्त्रियों द्वारा सुनहले द्रापि पहनने का वर्णन है --

"तस्यै हिरण्यद्राप्येऽसत्याऽकरम् नमः" ।

"बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्तनिर्णिजम्"।

(ऋ0, 1·25·13)

"दिवो धर्त्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रतिमुञ्चते रविः।"

"हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।

तस्यै हिण्यमद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ।"

दम्पत्तियों द्वारा सुनहले पेशस् परिधान धारण करने का वर्णन है जिस पर सोने का काम होता था और जो झलकता रहता था --

"पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।

उभा हिरण्यपेशसा।

(ऋ0, 8·31·6)

"पेशो न शुक्रमसितं वसाते" (वाज0सं0, 19·89)

"पेशो नदीनामनुत्तमस्मै----" (ऋ0, 7·34·11)

"अहरुष्णीषं रात्री केशा" (अथर्व0, 15·2) में व्रात्यों के उष्णीष

का वर्णन है, जो तिरछे बाँधे जाते थे, "तिर्यङ्•नद्धम्" (का0श्रौ0सू0, 21•4) शतपथ-ब्राह्मण(5•3•5•20) में उष्णीष को सिर से खींचकर खोंसने के बाद पहनने का वर्णन है -- "संवृत्य पुरस्तात् अवगूहयति" (शत0,5•3•5•20)। ऋग्वेद 5•55•6 में "हिरण्ययान् उत्कान्" का उल्लेख है जिसका अर्थ है सुवर्ण से काढ़े गए परिधान। शतपथ में "अजिनवासी" ब्राह्मणों का उल्लेख है "तत्सर्व दत्वाजिनवासिनी चरति" (शत0, 3•9•1•12) । ऋग्वेद(8•55•3) में प्रस्कण्व द्वारा काण्वकृश को दिए गए दानों में सौ "म्लातानि चर्माणि"(खूब कमायी हुई खालों) को (Tanned Skin) भी देने का वर्णन है जो निश्चय ही पहनी जाती रही होंगी।

"मुनयो वातरशना: पिशङ्•गा बसते मला" (ऋ0,10•136•2)

इन्द्राणी का उष्णीष विश्वतम रूप(रंग-बिरंगा) है, "इन्द्राण्या उष्णीष इतीन्द्राणी ह वा इन्द्रस्य प्रिया पत्नी तस्या उष्णीषो विश्वरूपतम: सोऽसीति" (शत0, 14•2•1•8)। अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं ।

"जायेव पत्य उशती सुवासा --- " (ऋ0,1•124•7)

पादत्राणों का वर्णन "वद्दरिणा पदा" द्वारा (ऋ0, 1•133•2) में मिलता है जो सेनानियों के लिए था। अथर्ववेद(5•21•10) में पत्सङ्•गिणी शब्द पादत्राण के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। जूता मृग या सुअर के चर्म का बनाया जाता था, "अथ वाराह्या उपानहा उपमुच्यते --- तत्पशूनाम्वैतद्रसे प्रतितिष्ठति तस्माद्वाराह्या उपनहा उपमुच्यते" (शत0, 5•4•3•19) । व्रात्यों के जूते नुकीले हुआ करते थे, "कर्णिन्यौ" (कात्या0श्रौ0सू0, 22•4)।

छत्र और दण्ड का भी प्रयोग होता था। उस्तरे से बाल बनाने का भी वर्णन है --

"यत क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु"

(अथर्व0, 8•2•17)

"स्त्रियाँ सुगन्धित द्रव्य भी लगाती थीं --

"आञ्जनगन्धिं सुरभि ---- " (ऋ0, 10·146·6)

"पुण्यगन्धा: स्त्रिय:"

वेदों में निष्कग्रीव का उल्लेख मिलता है, जो गले का हार कहा जाता था --

"नास्य क्षत्ता निष्कग्रीव:" (अथर्व0,5·17·14)

"निष्कग्रीवो बृहदुक्थ ---- " (ऋ0, 5·19·3)

ऐतरेय ब्राह्मण(8·22) में निष्कण्ठ का उल्लेख मिलता है। निष्क नामक सिक्का भी वैदिक युग में चलता था, सम्भवत: उसी से ये हार बनाए जाते थे। कर्णाभूषण का वर्णन भी एक जगह है -- "उत न: कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर ---- " (ऋ0, 8·78·3)। अथर्ववेद(6·138·3) में कुरीर को शिर के ऊपर धारण करने वाले आभूषणों में गिना गया है तथा कुम्ब का भी वर्णन आता है। कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि"।

कगने स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे --

"ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च संदधे"

(ऋ0, 1·168·3)

"अंसेष्वा व: प्रपथेषु खादयो ---- "

(ऋ0, 1·166·9)

शंख का भी वर्णन मिलता है --

"स नो हिरण्यजा: शङ्·ख: कृशन: पात्वंहस:"

(अथर्व0, 4·10·1)

यजुर्वेद(11·50) में सिनीवाली के लिएसुकुपर्दा और स्वौपशा विशेषणों का प्रयोग हुआ है। कपर्द का अर्थ है वेणी --

"सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा" ।

"चतुष्कपर्दा युवति: सुपेशा" (ऋ0,10·114·3)

वृत्र के अनुयायियों को स्वर्ण और मणियों से चमकता हुआ कहा गया है, "हिरण्येन मणिना शुम्भमाना:" (ऋ०, 1·33·8)। ऋग्वेद(1·122·14) में मणिग्रीव शब्द मणियों को गले में पहनने वाले की ओर सङ्केत करता है। रुक्म छाती पर पहनने वाला आभूषण था। ऋग्वेद(2·34·2) में मरुतों के लिए "रुक्मवक्षस:" शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद(10·85·6) में न्योचनी नामक आभूषण का उल्लेख है जिसे विवाह के अवसर पर वधुएँ पहनती थीं। रत्न धारण करने वाली स्त्रियों का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"ग्नाभिर्ऋतुपाभि: सजोषा ग्नास्पत्नीभि: रत्नधाभि: सजोषा:"

(ऋ०,4·34·7)

केशरचना के सम्बन्ध में अथर्ववेद (6·137·2) का यह मन्त्र द्रष्टव्य है---

"अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेया: ।

केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिता परि ।।"

(अथर्व०, 6·137·2)

जिसमें केश, नदी के किनारे के नरकटों की भाँति बढ़ते हैं।

"आसन्दी" का उल्लेख अथर्ववेद और यजुर्वेद में हुआ है --

"यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम्" (अथर्व०, 14·2·65)

"प्रोह्यमाण: सोम आगतो वरुण आसन्द्यामासन्नोऽग्नि ---- "

(यजु०, 8·56)

उपबर्हण (तकिया) और पीछे को ओर टेकने का (उपश्रय) नाम भी अथर्ववेद,(15·3·7,8,9) में मिलता है ---

"वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् । सामासाद उद्गीथोपश्रय: ।

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत्"

शुन्ध्यु(बकरी) के बालों का वस्त्र के लिए प्रयोग होता था -

"आधीषमाणाया: पति: शुचायाश्च शुचस्य च ।

वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत्" ।।

(ऋ०, 10·26·6)

परुष्णी देश का ऊन गान्धार की तरह विख्यात था --

"उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यव: ।"

(ऋ0, 5·52·9)

"शिवे परुष्णीमुष्माण ऊर्णा यस्या: पर्वाणि"

(ऋ0, 4·22·2)

"सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका"

(ऋ0, 1·126·7)

मुद्गलानी का वस्त्र उसके रथ पर फहराने का वर्णन है --

"उत स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत् सहस्रम्"

(ऋ0, 10·102·2)

माता द्वारा पुत्र को सिच (ऊपरी वस्त्र के किनारे से) ढकने का वर्णन है --

"माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि" ।

(ऋ0, 10·18·11)

डॉ0 उपाध्याय (वीमैन इन द ऋग्वेद) में लिखते हैं --

"The Cold climate of the Punjab and the North Western frontier must have necessitated the use of stitched clothes".

वेद में बुनाई के सारे सामान मिलते हैं। यथा --
तन्तु, ओतु (woof)(अथर्व0, 14·2·51), तसर (Shuttle)(ऋ0, 10·130·2)
तथा मयूख- खूंटी (Peg) (ऋ0, 10·130·2)

"पुमाँ एनं तनुत उत् कृणत्ति पुमान् वितत्ने अधि नाके अस्मिन्।
इमे मयूखा उप सेदुरू सद: सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ।।"

(ऋ0, 10·130·2)

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में प्रोष्ठ पर सोने वाली, वह्य पर सोने वाली और तल्प पर सोने वाली तीन प्रकार की स्त्रियाँ कही गयी हैं —

"प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरी:" ।

(ऋ0, 7·55·8)

"सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव"

(अथर्व0,5·20·3)

"आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये स्मै"।

(अथर्व0, 14·2·31)

शतपथ-ब्राह्मण(13·1·6·2) में तल्प पर उत्पन्न होने के कारण सन्तान को तल्प्य कहा गया है।

"रुक्मप्रस्तरणे वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगायकम् ।।"

(अथर्व0, 14·2·30)

वधुएँ बाहर जाते समय चादर से अपने शरीर को ढँक लेती थी —

"अयमुत्वा विचर्षणे जनीरिवाभिसंवृत: प्र सोम इन्द्रसर्पतु"

(ऋ0, 8·17·7)

सामान रखने के लिए पेटियों का प्रयोग (कोश) होता था -

"द्यौर्भूमि: कोश आसीत् ---- --- " ।

(अथर्व0, 14·1·6)

कलश, मिट्टी का, द्रोण लकड़ी का तथा दृति चमड़े का बना पात्र होता था(ऋ0, 9·3·1, 6·2·8, 1·191·10, 4·51·1) ।

भूमि परिवहन "अनस्" द्वारा होता था। रथ प्रमुख यातायात का साधन था। रथ के अलावा "बन्धुर" का अनेक प्रयोग प्राप्त होता है, जो अक्ष के ऊपर रथ का मुख्य भाग होता था। इसके अतिरिक्त जलयान और विमान का भी प्रयोग होता था। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है —

"वोढाऽनड्वान् आशुः सप्तिः रथेष्ठाः ।"

(यजु०, 22·22)

"हिरण्यशृंगो अयो अस्य पादा मनोजवा"

(यजु०, 29·20)

"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तति रजः"

(ऋ०, 4·36·1)

"समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहा।"

(यजु०, 6·21)

"पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवोनाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ।"

(यजु०, 17·67)

"सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्रां स्वस्तये ।"

(यजु०, 21·7)

"सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।"
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ।"

(यजु०, 21·6)

"यास्ते पूषन् नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासिदूत्यां सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छमानः ।।"

(ऋ०, 6·58·2)

"वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ।"

(ऋ०, 1·25·7)

"उर्वन्तरिक्षमन्वेमि- यजु०, 1·7;

"दिवं गच्छस्व: पत - यजु०, 12·4.

"श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ संस्कृतम् ।"

(यजु०, 4·34)

"सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्व: पत" ।

(यजु0, 12·4)

"इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षांस्यपहंस्यग्ने।
ताभ्यां पतेमसुकृतामुलोकं यत्र ऋषयो जग्मु: प्रथमजा: पुराणा:।।"

(यजु0, 18·52)

"तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपं स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम्"

(यजु0, 18·51)

"पथीनां पतये नम:" (यजु0, 16·17)

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के मन्त्र (6·46·9) में तीन खण्ड वाले घर का तथा अतिथिशाला(अथर्व0, 9·6·5) में वर्णन मिलता है --

"इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्य:।"

(ऋ0, 6·46·9)

"यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव"

(अथर्व0, 9·6·5)

इन अतिथिशालाओं का विस्तृत वर्णन आपस्तम्ब श्रौतसूत्र(5·9·3) तथा धर्मसूत्र (2·9·25·4) में किया गया है।

ऋग्वेद के 7·54 और 7·55 सूक्त में गृहों की रक्षा के लिए तद्देवता वास्तोष्पति से प्रार्थना की गई है कि वह द्विपदों और चतुष्पदों का कल्याण करें --

"वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ।।"

(ऋ0, 7·54·2)

यजुर्वेद में हमें गेहूँ, व्रीहि, यव, माष, तिल, मुद्ग, खल्व, प्रियंगु,

मसूर, श्यामाक, नीवार आदि कृषिजन्य पदार्थों का वर्णन प्राप्त होता है-
"व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे, मुद्गाश्च मे, खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·12)

"गोभिर्यवं न चर्कृषत्" (ऋ०, 1·23·15)

"यवमयं अपूपं कृत्वा" (शत०, 2·2·3·13)

"व्रीहिमयमपूपम्" (शत०, 2·2·3·12)

"जर्तिल यवाग्वा वा जुहुयाद् गवाधुक् यवाग्वा वा।" (तै०सं०, 5·4·3·2)

"महाव्रीहि को चावलों में सर्वोत्तम (तै०सं०(1·8·10) में माना है-
"साम्राज्यम् वा एतदोषधीनाम् यन्महाव्रीहय:"।

ऋग्वेद(4·1·6) में गाय के घृत को गरमाने से उसकी शुद्धता दिखाई गई है --

"शुचि घृतम् न तप्तम् अघ्न्याया:"

गाय का दूध (ऋग्वेद, 1·153·4), भैंस का दूध(ऋ०, 5·29·7) तथा बकरी का दुग्ध(शत०, 13·1·2·13) में द्रष्टव्य है। दधि का प्रयोग भी ऋ०, 10·90·8) में "सोमासो दध्याशिर:" द्रष्टव्य है।

मधु का प्रयोग पहले बहुत होता था - (ऋ०, 8·4·8)

"मध्वा संपृक्त: सारघे धेनव:" (अथ

"अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु" (अथर्व०, 18·4·22)

अथर्ववेद(6·109) में पिप्पली तथा अथर्ववेद(12·24·2) में हरिद्रा का वर्णन है। तैल का प्रयोग भी दर्शनीय है, "अग्ने तैलस्य प्राशान् यातुधानान् विलापय" (अथर्व०, 1·7·2)।

पवित नामक भोज्य पदार्थ का पुरोडाश के साथ वर्णन मिलता है---

"आदिद पवित: पुरोळाशं रिरिच्यात्।" (ऋ०, 4·24·5)

ऋग्वेद में अपूप को घृतवन्त कहा है ---

"यस्ते अद्य कृणवद् भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने"

(ऋ०, 10·45·9)

कुछ लोग आर्यों के शीत प्रदेश का निवासी होने के कारण उनके मांस खाने का पक्ष स्वीकार करते हैं ---

"तद्वो यामि द्रविणं सद्य ऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नृँरभि।

इदं सु मे मरुतो हर्यतो वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमा:।।"

(ऋ०, 5·54·55)

तथा मांस भक्षण के विषय में बैल, भेंड़, अज, अश्व के मांस खाने का विधान वेदों से इस प्रकार देते हैं ---

"पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनुदीव आसन्"

(ऋ०, 10·27·17)

"यदीदहं युध्ये सन्न यान्यदेवयून्तन्वा शूशुजानान् ।

अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं निषिञ्चम् ।।"

(ऋ०, 10·27·2)

"उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।

स्तोमैर्विधेमाग्नये"

(ऋ०, 8·43·11)

"अथ यस्यादातिथ्यं नाम ---- एतद्यथा राज्ञे वा ब्राह्मणाय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेत्तदह मानुषं हविर्देवानामेवामस्मा एतदातिथ्यं करोति" (शत०, 3·4·1·2)

"अथ य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विजिगीत: समितिंगम: शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रुवी त सर्वमायुरियादिति मांसौदनं

पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयित औक्ष्णेन वा वृषभेन वा"

(बृ०उ०, 6·4·18)

यहाँ यह ध्यातव्य है कि उक्ष काकड़ासिंगी को कहते है। उक्ष और वृषभ सुश्रुत में पित्त-विनाशक के रूप में तथा गर्भवती स्त्री के लिए परम लाभप्रद वर्णित किए गए है। अतः अजादि भी बीजों के लिए और वृषभ(सोमलता) के लिए प्रयुक्त हुए है। यथा --

"बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति या वैदिकी श्रुती: ।

अज संज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ ।

उक्ष और ऋषभ काकोल्यादिगण में सम्मिलित गुणकारी औषधियाँ हैं --

"काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशन: ।

जीवनोर्बृंहणो वृष्य: स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ।।"

गाय का मांस तो कदापि (विवाहादि में भी नहीं) नहीं पकाया जाता था। गाय को अघ्न्या कहा है। यथा --

"अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती"

(ऋ०, 1·64·47)

"दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय"

(ऋ०, 1·164·27)

"सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि व: ।

अन्यो ऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या"

(अथर्व०, 3·30·1)

अतः गोमांस खाये जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पक्व फलों के खाने का भी वर्णन मिलता है, "वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु," ऋ०, 3·45·4 ।

"या: फलिनीर्या अफला पुष्पा यश्च पुष्पिणी:"

(ऋ0, 10·97·15)

"स्वादो फलस्य जग्ध्वाय" (ऋ0, 10·146·5)

इसी प्रकार बेर (शत0, 10·5·4·22); बिल्व (अथर्व0,20·136·13), खर्जूर (तै0सं0, 2·4·9·2), आम्र(शत0, 14·7·1·41), आमलक(छा0उ0,7·3·1) और ककड़ी शब्द का प्रयोग(ऋ0, 7·59·12) और अथर्व0, 6·14·2) में प्राप्त होता है।

इक्षु का उल्लेख (ऋ0, 9·86·18) तथा अथर्व0, 1·34·5) में मिलता है। लवण का उल्लेख अथर्ववेद(7·76·1) तथा शतपथ-ब्राह्मण(5·2·1·16) में अनेकश: आया है।

अन्न की महिमा बखानते हुए ऋग्वेद(1·187·7) में कहा है --

"त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिम वसाऽवधीत् ।।"

सुरापान को मन्यु(क्रोध) और बिभीदक(जुआ) तथा अचित्ति: (अज्ञान) के साथ परम अनिष्टकारक वस्तुओं में परिगणित किया गया है--

"न स्वो दक्षो वरुण ध्रुति: सा ।
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्ति: ।।"

(ऋ0, 7·86·6)

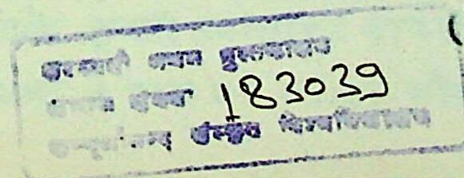
"दुर्मदासो न सुरायाम्" (ऋ0, 8·2·12)

"अथ यत्र सुरा भवति क्षत्रम् रूपम् तदथो न्नस्य रस" ---
अथास्मै सुरावंसं हस्त आदधाति" ।

(ऐ0ब्रा0, 37·4)

"सा सुरा मन्युर्बिभीदकोऽचित्ति: --- अनृतस्य प्रयोता।"

(ऐ0ब्रा0, 37·4)



"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यप:" ।

(छा०उ०, 5·11·5)

अथर्ववेद में मन्था, परिस्रुत (3·12·7, 20·127·8,9) तथा कीलाल(4·11·10) का वर्णन मिलता है। हरिस्वामी परिस्रुत् (शतपथ-5·1·2·14) की व्याख्या करते हैं। "सुरासाधनाय पर्याप्तपरिपाकै: शष्पैर्निष्पन्नो रस: परिस्रुद् इत्युच्यते"।

सोमपान का प्रभूत वर्णन ऋग्वेद में मिलता है जिसे पीकर मनुष्य महान् बनता है ---

"अहमस्मि महामहो भिनभ्यमुदिषित: ।
कुवित् सोमस्याऽपामिति"।

ऋ०, 10·119·12)

तथा

"अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्" ।

(ऋ०, 8·48·3)

नदियों का, कुओं, झरनों और वर्षा का जल अमृत माना जाता था तथा वैदिक आर्य इसे भेषज के रूप में ग्रहण करते थे, "अप्स्वन्तरमृतं अप्सु भेषजम्" (अथर्व०, 1·4·4) अथर्ववेद(19·2·1-5) में जल के विभिन्न स्रोतों का वर्णन हुआ है ---

"शं त आपो हैमवती: शमु ते सन्तूत्स्या: ।
शं ते सनिष्यदा आप: शमु ते सन्तुवर्ष्या ।
शं त आपो धन्वन्या: शं ते सन्त्वनूप्या:।
शं ते खनित्रिमा आप: शं या: कुम्भेभिराभृता: ।
ता अप: शिवा अपो यक्ष्मंकरणीरप: ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आदत्त भेषजी: ।

रजस्वला के हाथ का बनाया भोजन अपवित्र समझा जाता था,

"नास्याऽन्नमश्नीयात्" (तै०सं०, 2·5·1·5-6) । शूद्र के साथ का छुआ खाना निषिद्ध था तथा उसके साथ बैठकर खाना भी (द्र०, पं०ब्रा०, 12·3 और कौ०ब्रा०, 12·1·3)।

ऐतरेय ब्राह्मण(7·29) में बिना आग्रायणेष्टि के नवान्न का भोजन प्रायश्चित्त करने का विधान करता है। भोजन के आरम्भ में अन्न की प्रार्थना की जाती थी — "स्वादो पितो मधो पितो वयम् त्वा ववृमहे, अस्माकमविता भव" (ऋ०, 1·187·2) । ऋग्वेद(10·117·2,6) में भूखे को अन्न न देकर स्वयं ही उसके भोग करने को पाप की संज्ञा दी गई है —

"य आध्राय चकमानाय पित्वो —— स मर्डितारं न विन्दते"

(ऋ०, 10·117·2)

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता: —— केवलाघो भवति केवलादी"

(ऋ०, 10·117·6)

भोजन बैठकर तरीके से करना चाहिए —

"निपर्वता अद्मसदो न सेदु:" (ऋ०, 6·30·3), सायण इसकी व्याख्या करते हैं, "यथा ते भोजनार्थम् नेश्चल्येनासते"। भोजन सदा गुप्तरूप से ही करे। यथा – शतपथ-ब्राह्मण(10·5·7·9) में आता है, "तस्माज्जाया अन्ते नाश्नीयाद्वीर्यवान्हास्माज्जायते वीर्यवन्तमु ह सा जनयति यस्या अन्ते नाश्नाति"। अन्यत्र शतपथ-ब्राह्मण(1·9·2·12) में लिखा है – इसीलिए स्त्रियाँ पुरुषों से परे ही खाती हैं, "तस्मादिमा मानुष्य स्त्रियस्तिर इवेव पुंसो जिघत्सन्ति" । ऐतरेय-ब्राह्मण(7·29) में लिखा है – "सोम ब्राह्मणों का पेय है, उदुम्बर, अश्वत्थ और प्लक्ष का फल तथा न्यग्रोध का मूल क्षत्रियों के लिए है, दही वैश्यों के लिए और जल शूद्रों के लिए नियत है।"

मनोरञ्जन

पूरा सामवेद ही देवताओं की प्रशंसा में किया गया सङ्गीतमय गान ही है। ऋग्वेद 10•146•2 में आया है "आघाटिभिरिव धावयन् ---- " यहाँ अघाटि नाचने के लिए प्रयुक्त है। वाजसनेय संहिता(30•19) में प्रयुक्त "आडम्बर" शब्द एक प्रकार के नगाड़े का नाम है। कर्करी वाद्य का वर्णन अथर्व वेद(4•8•5) में आता है, "यत्राघाटा: कर्कर्य संवदन्ति"। कात्यायन श्रौतसूत्र (13•3•16) में काण्ड वीणा का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद(8•69•9) में गर्गर वाद्य का वर्णन मिलता है, जो युद्ध में बजाया जाता था। तैत्तिरीय संहिता (6•1•4•1) में तुणव वाद्य का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद(10•135•7) में नाडी वाद्य तथा ऋग्वेद(1•28•5) में "जयतामिव दुन्दुभि:" का वर्णन मिलता है । ऋग्वेद(1•85•10) में वाण नामक वाद्य का वर्णन मिलता है जिसमें सप्त स्वर निकलते हैं। यथा — "वाणस्य सप्तधातुरिज्जन:"।

शतपथ-ब्राह्मण(14•3•1•35) में कहा है कि साम मन्त्रों का संगीत मय गायन प्राय: औरतें करती थी, "पत्नीकर्मैव वे ते त्र कुर्वन्ति यदुद्गातार:"। गाने-बजाने वाले लोग ही स्त्रियों के प्रियपात्र बनते हैं। यथा —

"तस्मादप्येतर्हि मोघसंहिता एव योषा। तस्माद एव नृत्यति
यो गायति तस्मिन्नेवेता निमिश्लतमा इव" ।

(शत०, 3•2•4•6)

"तस्माद् गायन्त: स्त्रिय: कामयन्ते" ।

(तै०सं०, 6•1•6•44)

"तस्माद् गायन्स्त्रिया: प्रिय:" (मै०सं०, 3•7•3)

"मृगयु" शब्द अथर्ववेद(10•1•26) में प्रयुक्त है जिससे तत्कालीन समाज में शिकार का चलन भी मालूम होता है। वाजसनेय संहिता 30 और तैत्तिरीय ब्राह्मण(3•4) में मार्गार और कैवर्त्त शब्दों का प्रयोग शिकारियों की ओर

संकेत करते हैं। ऋग्वेद (2·42·2) में "इषुमान् वीरोऽस्ता" द्वारा बाण का प्रयोग निर्दिष्ट है। ऋग्वेद(3·45·1) में "पाशिनः" शब्द पक्षी फँसाने के लिए है। घुड़दौड़ उस समय का एक प्रसिद्ध मनोरंजन का साधन था। घोड़े धोए और अलङ्कृत किए जाने का वर्णन ऋग्वेद(2·34·3 और 9·109·10) में मिलता है —

"अश्वो न निक्तो वाजी धनाय" (ऋ0, 9·109·10)

"उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु" (ऋ0, 2·34·3)

शतपथ-ब्राह्मण(5·4·2·3) में राजसूय के समय घोड़े दौड़ाने के चलन का उल्लेख है।

अक्षसूक्त(10·34) तत्कालीन समाज की प्रसिद्ध बुराई जुआ का सुन्दर चित्र खींचता है, जो मनोरंजन से बरबादी की ओर ले जाता था।(ऋ0, 7·86·6 और 10·34·1) । पाँसे फेंकने का नाम है कृत, त्रेता, द्वापर, आस्कन्द और अभिभू या कलि।(तै0सं0, 4·3·3) । कलि की फेंक विजयी मानी जाती थी(अथर्व0, 7·114·2) । कृत पाँसा भी सबसे ऊँचा माना जाता था। कुल पाँसे "त्रिपञ्चाशः" (ऋग्वेद) हुआ करते थे।

वेदों में नारी

वैदिक युग में बालिकाएँ यज्ञोपवीतपूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थीं। शिक्षा के लिए ब्रह्मचर्य मूलभित्ति के रूप में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए आवश्यक है — "समानं ब्रह्मचर्यम्" (आश्व0श्रौ0सू0)। अतः स्त्रियाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर ही युवा पति को प्राप्त करती थीं -

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" (अथ0, 11·5·18)

यज्ञों में स्त्रियों का सहभागित्व था। तभी तो कितने आत्मविश्वास से एक वैदिक नारी उद्घोषित करती है —

"अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पति: सेहनाया उपाचरेत् ।।
मम पुत्रा: शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तम: ।।"
(ऋ०, 10·159·2-3)

शतपथ-ब्राह्मण में राजा वैदेह जनक की सभा में गार्गी का याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करना तो मानो स्त्रियों के वैदुष्य की पराकाष्ठा प्रस्तुत करता है। याज्ञवल्क्य उसके प्रश्नों से झल्ला उठे थे -- "कस्मिन्नु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति स होवाच गार्गी मातिप्राक्षीर्मा ते व्यपप्तदनतिप्रश्न्या वै देवता अतिपृच्छसि गार्गि मातिप्राक्षी:"। (शत०, 14·6·6·1)

ऐतरेय ब्राह्मण(5·4) में कुमारी गन्धर्वगृहीता का उल्लेख है, जो वक्तृता में परम निष्णात और विदुषी थी। मैत्रेयी का याज्ञवल्क्य से सांसारिक पदार्थों में विरक्तता प्रकट करके अमरता में रुचि दिखलाना शतपथ-ब्राह्मण (14·5·4·2-3) में आता है, जो मैत्रेयी के आध्यात्मिक जिज्ञासा का परिचायक है-- प्राचीन काल में स्त्रियाँ दो तरह की थी --

"द्विविधा: स्त्रियो ब्रह्मवादिन्य: सद्योद्वाहाश्च । तत्र ब्रह्मवादिनीनां अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति" ।

वीरमित्रोदय, (संस्कार प्रकाश)

"सा होवाच मैत्रेयी। यन्म इयं भगो: सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति ---- येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति"। अन्त में याज्ञवल्क्य उन्हें बताते हैं, "न वाऽरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति ---- आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति"। ऐसी आत्मकाम स्त्रियाँ कम ही दिखाई देती हैं। महाभारत में आता है कि कुन्ती अथर्ववेद में निष्णात थीं। अध्यापिका को उपाध्यायानी कहा जाता था।

रामायण में आया है कि सीता प्रतिदिन वैदिक सूक्तों से प्रार्थना किया करती थीं और कौशल्या रेशमी परिधान में अग्निहोत्र किया करती थीं। काशकृत्स्नी नामक महिला ने मीमांसा दर्शन पर एक ग्रन्थ की रचना की थी। वेद में पुत्रसन्तति न होने पर अन्योदर्य (दत्तक को) को सम्पत्ति देना अवान्छनीय मानकर पत्नी को ही उसकी स्वामिनी माना जाता था।

"न हि ग्रभायारण: सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोक: पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्य:।।"

(ऋ0, 7•4•8)

तान्व(औरस) पुत्र के होने पर प्राय: बहनें रिक्थ(पैतृक सम्पत्ति) में से हिस्सा नहीं प्राप्त करती थीं —

"न जामये तान्वो रिक्थमारैक्— "(ऋ0, 3•31•2)

विवाह होने पर भी कन्या धन के लिए पितृकुल में आती थी — "सनये धनानाम्" (ऋ0, 1•124•7)

अविवाहित कन्या(अमाजु:) यदि बूढ़ी भी हो तो पितृगृह में रहने पर उसे उसका हिस्सा मिलता था —

"अमाजूरिव पित्रो: स चा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्"

(ऋ0, 2•17•7)

कहीं-कहीं स्त्रियाँ पुंसन्तति से भी श्रेष्ठ होती थी —

" दुहिताऽन्यत्र जाताद्धि पुत्रादपि विशिष्यते"

(महा0, 13•80•11)

भाई न होने पर उसे पूरी पैतृक सम्पत्ति मिलती थी —

"अभ्रातृका समग्रार्हा चाधहित्यपरे विदु:" ।

(महा0, 13•88•22)

अस्तु, भाई का यह कर्तव्य होता था कि वह अपनी सम्पत्ति में से चतुर्थांश अपनी बहन को दे दे —

"असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ।
भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम् ।।"

(याज्ञ०स्मृ०, 2·124)

"स्वेभ्यो अंशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ।"
स्वात् स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिता स्युरदित्सवः ।।"

(मनु०, 9·118)

मनुस्मृति में नारी को अति सम्मान की दृष्टि से देखा गया है --

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।"

(मनु०, 3·55)

"तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ।।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमभीप्सुभिः ।"

(मनु०, 3·58-59)

वैदिक स्त्रियों में घोषा ब्रह्मवादिनी थीं। अन्य स्त्रियों में अपाला, (जिन्होंने इन्द्र को सोमयज्ञ अर्पित करके अपने चर्मरोग से मुक्ति पायी थी) शची, अदिति, विश्ववारा, आत्रेयी, श्रद्धा, वैवस्वती, यमी और वाग्देवी उल्लेखनीय हैं। अपाला, लोपामुद्रा, घोषा और सूर्या वेद की मन्त्रद्रष्टा महिलाएँ हैं।

शतपथ-ब्राह्मण में सुन्दरी स्त्रियों का वर्णन निम्न उद्धरणों में द्रष्टव्य है --

"एवमिव हि योषां प्रशंसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तरांसा मध्ये संग्राह्येति"

(शत०, 1·2·5·16)

"पश्चाद्वरीयसी पृथुश्रोणिरिति वैयोषां प्रशंसन्ति" ।

(शत०, 3·5·1·11)

"तस्माद्रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका"

(शत०, 13·1·9·6)

"त तदु वै योषायै समृद्धं रूपं यत् सुकपर्दा सुकुरीरा स्वोपशा"

(शत०, 6·5·1·10)

तैत्तिरीय ब्राह्मण(2·9·4·7) में पत्नियों को लक्ष्मी कहा है --

"श्रिया वा एतद्रूपं यत्पत्न्यः"

शतपथ ब्राह्मण(12·7·2·11) में ऊन और सूत कातना स्त्रियों का कर्म कहा है --

"तद्वा एतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम्"

वरुणप्रघास व्रत के समय शतपथ-ब्राह्मण(2·5·2·20) में कहा गया है कि स्त्री का स्वीकार किया हुआ पाप थोड़ा रह जाता है --

"स पत्नीमुदानेष्यन्पृच्छति केन चरसीति वरुण्यं वा एतत्स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरत्यथो नेन्मेऽन्तः शल्या जुहवीदेति तस्मात्पृच्छति निरुक्तं वा एनः कनीयो भवति सत्यं हि भवति तस्मादेव पृच्छति सा यन्न प्रतिजानीत ज्ञातिभ्यो हास्यै तदहितं स्यात्" ।

पत्नियों का स्थान गृह ही है --

"पत्यो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा" (शत०, 2·6·2·14)

"गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा" (शत०, 3·3·1·10)

"तस्मात्पुमांसः सभां यन्ति न स्त्रियः" (मै०सं०, 4·7·4)

स्त्रियों को इन्द्र ने वर दिया था कि वह पतियों के साथ सोवें --

"अपि नः श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सहशयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति" (वसि०धर्मसूत्र, 12·34)

नारी कहते ही उसे हैं जिसका कोई वैरी न हो(न+अरि) -

"न वै योषा कंचन हिनस्ति" (शत0, 6·3·1·39)

"न वै स्त्रियं घ्नन्ति" (शत0, 11·4·3·2)

स्त्रियों का स्वभाव मृदु-तीक्ष्ण होता है तथा वह स्थितिशील होती हैं जबकि पुरुष गतिशील। अत: आध्यात्मिक पुरुष को उन्हें माता या बहन-बेटी की दृष्टि से देखना चाहिए --

"अनृतं स्त्री शूद्र: श्वा कृष्ण: शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत्"

(शत0, 14·1·1·31)

"अया वा नैर्ऋता अक्षा: स्त्रिय: स्वप्न:"

(मै0सं0, 3·6·3)

"न वै स्त्रैणानि सख्य: सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता:"

(ऋग्वेद, 10·95·15, तर0)

तैत्तिरीय संहिता(2·2·8·1) में कहा है इन्द्राणी सेना की देवता है --

"इन्द्राणी वै सेनायै देवता । सैवास्य सेनां सं श्यति"।

"इन्द्राण्येतु प्रथमाऽजीताऽमुषिता पुर:"

(अथर्व0, 1·27·4)

"विषूच्येतु कृन्तती, पिनाकमिव बिभ्रती ।

विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायव: ।।"

(अथर्व0, 1·2722)

"उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा" ।

(अथर्व0, 20·26·9)

जाया ही घर है, वही कुलवृद्धि का आधार है --

"जायेदस्तं मघवन् त्सेदु योनि:"(ऋ0, 3·53·4)



सुशील युवतियों से मनुष्य प्रसन्न होता है ---

"याभिः सोमो मोदते हर्षते च, कल्याणीभिर्युवतिभिर्नमर्यः"

(ऋ०, 10·30·5)

स्त्री का गुण लज्जाशीलता है ---

"अधः पश्यस्व मोपरि, संतरां पादकौ हर ।

मा ते कशप्लकौ दृशन्, स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ।।"

(ऋ०, 8·33·19)

पतिव्रता नारी ही पतिप्रिया होती है ---

"अन्वद्या पतिजुष्टेव नारी" (ऋ०, 1·73·3)

"पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।

प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यम् विशेषतः ।।"

(रा०, उत्तर०, 47/17-18)

परिश्रमी स्त्री ही सौभाग्यवती होती है ---

"न मत् स्त्री सुभसत्तरा, न सुयाशुतरा भुवत् ।

न मत् प्रतिच्यवीयसी, न सक्थ्युद्यमीयसी ।।"

(अथर्व०, 20·126·6)

नारी कुलपालक है ---

"एषा ते कुलपा राजन्, तामु ते परि दद्मसि" ।

(अथर्व०, 1·14·3)

"कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः, स्योने सीद सदने पृथिव्याः"

(यजु०, 14·2)

नारी परिवार की स्वामिनी है ---

"सम्राज्ञी श्वशुरे भव ---- सम्राज्ञी अधिदेवृषु" ।

(अथर्व०, 14·1·44)

पत्नी ही गृहलक्ष्मी है ---

"कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते" (ऋ0, 3·53·6)

"पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृतायकम्" ।

(अथर्व0, 14·1·42)

"सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणाम् ---- " ।

(अथर्व0, 14·2·26)

"श्रिय एता स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता ।
पालिता निगृहीता च श्री:स्त्री भवति भारत ।।

(महा0,अनु0, 46·15)

"अनुकूला सदा तुष्टा, दक्षा साध्वी विचक्षणा ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरिव स्त्री न संशय: ।।"

(दक्षस्मृति

"पूजनीया महाभागा पुण्याश्च गृहदीप्तय: ।
स्त्रिय: श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्याविशेषत: ।।"

(महा0,उद्यो0,38/11)

पत्नी सदा पति के अनुकूल रहे --

"यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु संप्रिया पत्या विराधयन्ती ।।"

(अथर्व0, 2·36·4)

स्त्री को सदा जागरूक रहना चाहिए --

"प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो ---- " ।

(अथर्व0, 14·2·75)

स्त्री पुत्रवती बने --

"पुमांसं पुत्रं जनय, तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता, जातानां जनयाश्च तान् ।।"

(अथर्व0, 3·23·3)

ब्राह्मण की पत्नी भयङ्कर होती है --

"देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे यो निषेदुः ।
भीमाजाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ।।"
(ऋ0, 10·109·4)

कन्याओं को नृत्य शिक्षा दी जाय जैसे उषा नर्तकी है --

"उषा ह्वेव निर्णीते अप्सः" (ऋ0, 1·124·7)

नर का प्रेमाधार नारी ही है --

" यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः"
(अथर्व0, 6·70·3)

पहले स्वयंवर-विवाह प्रथा भी थी --

"भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्"
(ऋ0, 10·171·2)

कामनायुक्त वर-वधू का ही विवाह हो, बाल विवाह न हों --

"आगमन् पतिकामा, जनिकामो हमागमम् "।
(अथर्व0, 2·30·5)

कन्या का सुयोग्य पति से विवाह हो("चकास्तियोग्येन हि योग्यसंगमः"

"शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा, ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्
सादयामि" (अथर्व0, 11·1·27)

आदर्श विवाह का स्वरूप यह है जैसे अश्विनो सूर्या को ब्याह कर लाए --

"येन सूर्यां सावित्रीं,अश्विनोहतुः यथा" ।
(अथर्व0, 6·82·2)

पत्नी का सौभाग्य पति से ही होता है, "पतिरेको हि नारीणां गतिरन्यो न विद्यते"। यहीबात अथर्ववेद(2·36·3) में प्रोक्त है --

"इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट, सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति,गत्वा पतिं सुभगा विराजतु ।।"

(अथर्व0, 2·36·3)

पति-पत्नी का भाग्य उभयनिष्ठ है --

"अन्त:कोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम्"

(अथर्व0, 1·14·4)

पत्नियाँ कैसे पति को पसन्द करती हैं, एक मन्त्र में देखें --

"जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनुप्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे।"

(ऋ0, 10·40·10)

"दम्पती समनसा सुनुतः" (ऋ0, 8·31·5)

"अजन्ति दम्पती समनसा" (ऋ0, ~~10~~·5·3·1)

"को दम्पती समनसा वियूयोत" (ऋ0, 10·15·12)

"जाया विशते पतिम्" (ऋ0, 10·85·29)

"संजास्पत्यं सुयममस्तु देवाः" (ऋ0, 10·85·23)

पति को भी एक पत्नी व्रत वाला होना चाहिए --

"ममेदसस्त्वं केवलो, नान्यासां कीर्तयाश्चन"

(अथर्व0, 7·38·4)

स्त्री वशीकरण हेतु हृदय की शुद्धि आवश्यक है --

"यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ।।"

(अथर्व0, 2·30·4)

पति द्वारा पत्नी को प्रसन्न रखा जाना चाहिए --

"तेन जायामुप प्रियां, मन्दानो याह्यन्धसो"

(ऋ0, 1·82·5)

वधू के मनोरथ पूर्ण करें --

"वधूमिव त्वा शाले, यत्रकामं भरामसि" ।

(अथर्व0, 9·3·24)

आस्तिक स्त्री, नास्तिक पुरुषों से श्रेष्ठ होती है --

"उत त्वा स्त्री शशीयसी, पुंसो भवति वस्यसी ।

अदेवत्रादराधसः" (ऋग्वेद, 5·61·6)

"वि या जानाति जसुरिं, वितृष्यन्तं विकामिनम् ।

देवत्रा कृणुते मनः ।" (ऋ0, 5·61·7)

समृद्ध स्त्रियों का सौभाग्य निम्न मन्त्र में वर्णित है --

"प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया, नारीर्या वह्यशीवरीः ।

स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ।।"

(अथर्व0, 4·5·3)

स्त्री पराक्रमी और अजेय है --

"अषाढाऽसि सहमाना सहस्वारातीः, सहस्व पृतनायतः ।

सहस्र वीर्यासि सा मा जिन्व"।

(यजु0, 13·26)

स्त्री-सेना का युद्ध में जाना निम्न मन्त्र में द्रष्टव्य है --

"स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे, किं मा करन्नबला अस्य सेनाः"

(ऋ0, 5·30·9)

सौतिया-जलन वेद में दिखाई देता है, जो इस बात का प्रमाण है कि लोग एक से अधिक विवाह भी करते थे पर प्रबल स्त्री सौतिया-स्त्री पर विजय प्राप्त करती थी --

"असपत्ना सपत्नघ्नी, जयन्त्यभिभूवरी" ।

(ऋ0, 10·159·5)

निर्भीक नारी ही आगे बढ़ती है --

"अग्र एति युवतिरह्रयाणा" (ऋ0, 7·80·2)

"समजेषमिमा अहं, सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य, वीराजानि जनस्य च ।।"
(ऋ०, 10·159·6)

स्त्री वीर जननी हो --
"आ ते योनिं गर्भ एतु, पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां, पुत्रस्ते दशमास्य: ।।"
(अथर्व०, 3·23·2)

वैदिक नारी के पुत्रादि वीर और तेजस्वी थे --
"मम पुत्रा: शत्रुहणो थो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि संजया, पत्यौ मे श्लोक उत्तम: ।।"
(ऋ०, 10·159·3)

नारी उत्कृष्ट पुत्र को जन्म देवें --
"इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्येष्ठ्यो भवतु पुत्रस्त एष:"
(अथर्व०, 14·2·24)

नारी का सौभाग्य सूर्यवत बढ़े --
"उदसौ सूर्यो अगाद्, उदयं मामको भग: ।
अहं तद् विद्वला पतिं, अभ्यसाक्षि विषासहि: ।।"
(ऋ०, 10·159·1)

नारी सरस्वती के तुल्य बनें --
"प्रति तिष्ठ विराडसि, विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्रजायतां, भगस्य सुमतावसत् ।।"
(अथर्व०, 14·2·15)

स्त्री परिवार के लिए सुखद हो --
"अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्य: सुमना: सुवर्चा: ।
वीरसूर्देवकामा स्योना, शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।"
(अथर्व०, 14·2·17)

तथा वह नारी सबके लिए सुखद हो --

"शिवा भव पुरुषेभ्यो, गोभ्यो अश्वेभ्य: शिवा ।
शिवाऽस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ।।"

(अथर्व0, 3·28·3)

पति-पत्नी छिपकर कोई कार्य न करें, वरन् मतभेदों को दूर करके मिलजुलकर कार्य करें --

"यद् यद् जाया पचति त्वत् पर: पर:, पतिर्वाजाये त्वत् तिर:।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु,संपादयन्तो सह लोकमेकम् ।।"

(अथर्व0, 13·2·39)

आदर्श पत्नी का पति दीर्घायु होता है --

"इन्द्राणीमासु नारीषु सुभगामहमश्रवम् ।
न ह्यस्या अपरं चन, जरसा मरते पति: ।।"

(अथर्व0, 20·126·11)

माता पुत्रों के लिए केन्द्र-बिन्दु होती है --

"नाभिं जानाना: शिशव: समायान्"

(अथर्व0, 12·3·40)

स्त्रियाँ यज्ञों और युद्ध में भाग लें --

"संहोत्रं स्म पुरा नारी, समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणी, इन्द्रपत्नी महीयते ।।"

(अथर्व0, 20·126·10)

"त्वं विदथमावदासि" (ऋ0,

"अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद" ।

(अथर्व0, 7·39·4)

स्त्री प्रतिदिन यज्ञ का सम्पादन करें --

"उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषावस्तोर्हविष्मती घृताची
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः" (ऋ०, 7·1·6)

"इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे ।।"
(अथर्व०, 12·2·31)

वाग्देवी की महिमा निम्न मन्त्र में देखिए --

"अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।।"
(ऋ०, 10·125·5)

सरस्वती देवी माता के तुल्य दयालु हैं --

"अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ।।"
(ऋ०, 2·41·16)

"सरस्वत्यभि ---- पयसा मा न आधक्" ।
(ऋ०, 6·61·64)

"यज्ञं दधे सरस्वती"

"प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती धीनामवित्र्यवतु ।"
(ऋ०, 6·61·4)

"यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ।।"
(यजु०, 38·5)

"सरस्वति देवनिदो निबर्हय, प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्यो वनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ।।"
(ऋ०, 6·61·3)

तीन देवियाँ सुखदात्री हैं --

"इळा सरस्वती मही, तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।

बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः । (ऋ०, 5·5·8)

"तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु इडा सरस्वती भारती। मही गृणाना।

(यजु०, 27·19)

"आ भारती भारतीभिः सजोषा इडा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥"

(ऋ०, 3·4·8)

"इड एह्यदित एहि काम्या एत। मयि वः कामधारणं भूयात् ।"

(यजु०, 3·27)

"आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु इडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥"

(यजु०, 29·33)

"सरस्वती साधयन्ती धियं न इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदम् अच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥"

(ऋ०, 2·3·8)

"इहेन्द्राणीमुपह्वये, वरुणानीं स्वस्तये अग्नायीं सोमपीतये"।

(ऋ०, 1·22·12)

"आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥"

(यजु०, 29·8)

बहन और भाई एक पवित्र डोर से बँधे हैं —

"न वा उ ते तन्वं तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्यदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥"

(अथर्व०, 18·1·14)

भ्रातृहीन कन्या निस्तेज होती है —

"अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः" ।

(अथर्व०, 1·17·1)

नारी की शील रक्षा राष्ट्र का कर्तव्य है —

"हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ।।"

(अथर्व0, 5·17·3)

श्रद्धा का चित्रण निम्न मन्त्र में देखें —

"श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ।।"

(ऋ0, 10·151·1)

स्त्री-हरण राष्ट्र के लिए कलंक ही है —

"भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्" ।

(अथर्व0, 5·17·6)

परित्यक्ता स्त्री का स्थान पितृकुल में है —

"जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बद्धवृच्छतु" ।

(अथर्व0, 10·1·3)

पुनर्विवाह आपद्धर्म है —

"या पूर्वं पतिं वित्वाऽथान्यं विन्दते परम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः ।।"

(अथर्व0, 9·5·27)

स्त्रियों का स्वभाव चंचल बताया गया है —

"स्त्रिया अशास्यं मनः" (ऋ0, 8·33·17)

पतिद्वेषी स्त्रियाँ दुश्चरित्र हो जाती हैं —

"अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः"

(ऋ0, 4·5·5)

दुःशीला पत्नी से गृहकलह (नीललोहित) होता है —

"नीललोहितं भवति पतिर्बन्धेषु बध्यते" ।

जुआरी अपनी पत्नी को छोड़कर दु:खी होता है --

"न मा मिमेथ न जिहीड एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ।।"

(ऋ0, 10·34·2)

जुआरी की पत्नी सदा जुए का विरोध करती है --

"द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्।।"

(ऋ0, 10·34·3)

जुआरी की पत्नी का अपमान होता है --

"अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य ---- ---- " ।

(ऋ0, 10·34·4)

स्त्री के लिए सपत्नी सदा दु:खद होती है --

"सं मा तपन्त्यभित: सपत्नीरिव पर्शव:" ।

(ऋ0, 1·105·8)

पति मृत्यु पर स्त्रियों का विलाप मर्मान्तक पीड़ा देता है --

"अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्य: पुरुषे हते ---- "

(अथर्व0, 11·9·14)

पत्नी के वस्त्र को पति द्वारा नहीं धारण किया जाना चाहिए--

"अश्रीरा: तनू: भवति रुशती पापया अमुया ।
पति: यत् वध्व: वाससा स्वं अंगं अभि धित्सते ।।"

(ऋ0, 10·85·30)

श्रद्धावश वेद को भी माता कहा गया है, क्योंकि वह ज्ञान देकर हमारी रक्षा करती हैं --

"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।

आयुः प्राणम् प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्"। (अथर्व0, 19·71·1)

स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार निम्न मन्त्रों में स्पष्ट ही दिखाई देता है --

"कन्या वारवायती ---- शक्राय सुन्वे त्वा ।"
(ऋ0, 8·91·1)

"प्रति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची"
(ऋ0, 5·28·1)

ऋग्वेद (1·72·5) पत्नी सहित यज्ञ की अनुज्ञा देता है --

"संजानाना उपसीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्" ।
"भार्या दैवकृतः सखा" (महा0,वन0,312·8)

कुछ वेदों में प्रयुक्त शब्द उस समाज में अवैध प्रेम के परिचायक भी हैं यथा -- जारिणीव (ऋ0, 10·34·5), साधारणी (ऋ0, 1·167·4), महानग्नी (अथर्व0,20·136·9), पुंश्चली (अथर्व0, 15·2·5), तथा पुंश्चलू (तै0ब्रा0, 3·4·1)। योषा शब्द ऋग्वेद(7·75·5) में "वाजिनीवती सूर्यस्य योषा" तथा ऋ0,(1·92·11) में "योषा जारस्य" के रूप में मिलता है।

"सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्"
(ऋ0,1·115·2)

ऋग्वेद(6·55·4) में पूषा को अपनी बहन का प्रेमी कहा है, "स्वसुर्जारो उच्यते" तथा एक अन्य मन्त्र में भी कुछ ऐसा ही वर्णन है (ऋ0,10·162·5)।

"यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥"
(ऋ0, 10·162·5)

"जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान्" ।
(ऋ0, 1·117·18)

"प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव" ।

(ऋ०, 1·134·3)

"अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा ---- ।"

(ऋ०, 10·123·5)

आदित्यदेव से एक जगह प्रार्थना की गई है कि वह हमारे एकान्त में कृत पापों को दूर कर दें--

"धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त्त रहसूरिवागः।"

(ऋ०,2·29·1)

घोषा को प्रौढ़ावस्था तक काम-ज्ञान का अनुभव नहीं था --

"न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह तद्युवत्याः क्षेति योनिषु"।

कमद्यु का विमद से विवाह(प्रेम विवाह) ही था --

"---- कमद्युवम् विमदायोहथुर्युवम् ।"

(ऋ०,10·65·12)

युवतियों को सर्वत्र विचरण करने की अनुमति थी --

"अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोऽग्निम्"।

(ऋ०, 4·58·8)

"तेऽर्चन्ति समनेव योषा मातेव पुत्रम् बिभृतमुपस्थे।"

(ऋ०,

विवाह के बाद सब लोग वधू को देख सकते थे --

"सुमङ्गलीरियम् वधूरिमाम् समेत पश्यत"

(ऋ०, 10·85·33)

उषा का चित्रण ऋग्वेद में वस्तुतः एक सुलक्षणा नारी का ही चित्रण है। वहाँ उसका रूप, शील, गुण और स्वभाव तथा वेशभूषा एक दिव्य नारी का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करता है --

"विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या ---- विश्वम् जीवम् चरसे

बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः " ।

(ऋ0, 1·192·9)

वह गायों की माता भी हैं, "माता गवामृतावरी" (ऋ0, 4·52·2–3) तथा (ऋ0, 7·77·2)।

वह भग और वरुण की बहन है --

"भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व"

(ऋ0, 1·123·5)

वह ऋत (Cosmic order) की माता है --

"ऋतस्य मातरा" (ऋ0, 1·142·7)

माता अदिति की वेदों में बड़ी महिमा है --

"अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु"

(ऋ0, 1·162·22)

"स्वसा आदित्यानाम् दुहिता वसूनाम्"

(ऋ0,

वह अदिति ही सारे विश्व की संचालक है और विश्व के समस्त रूप उसी के हैं --

"अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।"

(ऋ0, 1·89·10)

वह माता गौ के रूप में अवध्य है --

"मा गामनागामदितिं वधिष्ट" ।

(ऋ0, 8·101·15)

वह मित्रदेव की माता हैं, "

"माता मित्रस्य" (ऋ0, 8·47·9)

अतिशय श्रद्धावनत होकर देवी भूमि को माता कहकर वेदों में पुकारा गया है --

"मातुर्महि" (ऋ0, 1•152•2)

"ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा"

(ऋ0, 6•70•6)

"माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:" ।

(अथर्व0, 12•1•3)

"उपसर्प मातरम् भूमिम्" । (ऋ0, 10•18•10)

"मे माता पृथिवी महीयम्" (ऋ0, 1•164•33)

अरण्यानी या वनदेवी का वर्णन भी निम्न मन्त्र में द्रष्टव्य है --

"नवा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।

स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं निपद्यते ।।"

(ऋ0, 10•146•5)

ऋग्वेद (1•116•15) में खेल राजा की पत्नी विश्पला की टाँग युद्ध में कट गई थी जिसे अश्विनो ने लोहे की टाँग लगाकर जोड़ा था --

"चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।

सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ।।"

मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी को वेद में युद्ध के मैदान में मुद्गल की सारथी बताया गया है (ऋ0, 10•102•2-3)।

"रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ।

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासत: ।।"

इन्द्र द्वारा युद्ध में वृत्र की माता को वज्र से मारने का वर्णन है --

"नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार"

(ऋ0, 1•32•9)

"माता गुरुतरा भूमे:" (मह0, वन0, 372•6)

कुछ लोग स्त्रियों को वृथा ही दोष लगाते हैं --

"प्रब्रूत सत्यं कतरोऽङ्गनानां दोषस्तु यो नाचरितो मनुष्यैः"

(बृहत्संहिता, 74·8)

"अहो धार्ष्ट्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः ।
मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ तिष्ठेति जल्पताम् ।।"

(बृहत्संहिता, 74·5-6)

शंकर दिग्विजय अध्याय 15 में जननी के प्रति शङ्कराचार्य की श्रद्धा देखें --

"आस्ताम् तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वारशूलव्यथा,
नैरुच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी ।।
एकस्यापि न गर्भभारभरणक्लेशस्य यस्याः क्षमो
दातुं निष्कृतिमुन्नतोऽपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः ।।"

पतन्जलि कहते हैं, "शब्द- स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन सबका समुच्चय ही स्त्री है।"

वस्तुतः "भारतवासियों के सब आदर्श स्त्रीरूप में ही पाए जाते हैं। विद्या का आदर्श सरस्वती में, धन का लक्ष्मी में, पराक्रम का महामाया या दुर्गा में, सौन्दर्य का रति में, पवित्रता का गङ्गा में है। परमशक्तिशाली भगवान् को भी जगज्जननी के रूप में देखा है" (स्त्रियों की स्थिति, पृ0 18)

आचार्य जैनेन्द्र का कहना है - "व्यक्तित्व की समग्रता और सार्थकता यदि स्त्री को प्राप्त करनी है तो घर को केन्द्र मानकर फिर उसकी परिधि चाहे विश्व तक बढ़ने दी जा सकती है।"

स्त्री को मातारूप में मानने का उपदेश तैत्तिरीय उपनिषद् में मिलता है --- "मातृदेवो भव"।

"पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते" ।

(मनु0, 2·145)

"जनानां वेदविहिता मातर षोडश स्मृता:" ।

(व्यास,

लक्ष्मणजी अपनी भाभी (सीता में) मातृदृष्टि ही रखते है --

"नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।

नूपुरं त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।।"

(वाल्मी०रा०, किष्क०, 6·22)

क्योंकि "माता निर्माता भवति" इमर्सन(Emerson) कहते हैं -
(Men are what their mothers made them) इसलिए
स्त्री की रक्षा करता हुआ मनुष्य अपने चरित्र और कुल की ही रक्षा करता है-

"स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।

स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति ।।"

(मनु०, 9·7)

बृहदारण्यक उपनिषद्(14·3) में कहा है --

"अयमाकाश: स्त्रिया पूर्यते" ।

वह सत्य तथा यश की विधात्री है --

"वेधा ऋतस्य" ।

"यथा यश: कन्यानाम्" (अथर्व०, 10·3·20)

"ऋतचिद्धि नारी" (ऋ०, 4·16·10)

गृह-प्रवेश में उन्हें आगे चलने को कहा है --

"आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे" (ऋ०, 10·18·7)

"गृहे गार्हपत्याय जागृहि" (ऋग्वेद - 10·85·27)

सत्पत्नियाँ धार्मिक कार्यों के मूल में हैं --

"क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्"

(कुमारसं०, 6·13)

"पत्युर्नो यज्ञसंयोगे" (पा०, 4·1·33)

"ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वां सहपत्या दधामि"।

"स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व"

नारी के अनेक रूप वाल्मीकि रामायण में दर्शित किए गए हैं --

"कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी, धर्मेषु पत्नी क्षमया धरित्री ।

स्नेहेषु माता शयनेषु रामा, रङ्गे सखी लक्ष्मण सा प्रिया मे।"

दाक्षिण्य को नारियों के लिए औषधि कहा है --

"दाक्षिण्यमौषधं स्त्रीणाम् --- "(बुद्धचरित)

ऋग्वेद में नारी को मेना कहा है, "मानयन्ति एना: पुरुषा:"

स्त्री की परिभाषा निरुक्त में "स्त्रिय: स्त्यायते: अपत्रपणकर्मण:" (नि0,3·21·2) लज्जाशीला के रूप में की गई है।

योषा की परिभाषा करते हुए आप्टे कहते हैं --

"योषा यौते: मिश्रणार्थस्य, यौति मिश्रीभवति, योषति पुमांसं,

सा हि मिश्रयति आत्मानं पुरुषेण साकम्" ।

छान्दोग्य उपनिषद् (5·2·9) में स्वप्न में स्त्रियों का दर्शन समृद्धि का हेतु माना गया है --

"यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्"

मीमांसा के टीकाकार जो यह कहते है "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" वह नितान्त अप्रासङ्गिक बात है और वेदविरुद्ध है। सायण कहते हैं -- "स्त्री शूद्रयोस्तु सत्यामपि ज्ञानापेक्षायामुपनयनाभावेनाध्ययनराहित्याद्वेदेऽधिकार: प्रतिबद्ध:" - तै0सं0भाष्य भूमिका ।

यजुर्वेद(26·2) में भी कहा है --

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य: ।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय"।

दयानन्द जी निम्न मन्त्र से वेदों में नारी के वेद-पठन प्रमाण को समुद्धृत करते है जहाँ एकपदी, द्विपदी आदि एक-दो-तीन वेदों के पठन के सूचक हैं --

"गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ।।"

(ऋ०, 1·164·41)

यजु० २६·२ में यहाँ स्वाय का अर्थ अपने भृत्य या स्त्री के लिए है। स्वामी दयानन्द जी सहशिक्षा को चरित्र-विघातक मानते हुए उसका निषेध करते हैं तथा 24 वर्ष के बाद स्त्री के ब्रह्मचर्य को अनुचित मानते हैं।

आधुनिक सन्तों और मुनियों ने भी स्त्री के प्रति कालुष्य की भावना का तथा स्त्री के संगदोष से उत्पन्न कामुकता का घोर विरोध किया है। वे कहते है --

"स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित: ।।"

(मनु०, 2·214)

"गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयो:"

(मनु०, 2·212)

"मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।।"

(मनु०, 2·215)

"अधम ते अधम अधम अति नारी" ।

(मानस,

"दीपसिखा सम जुबति तन मन जस होसि पतंग"

(मानस,

"नारी कृत्या मृत्यु उर्वशी जननी जाया माया"।

"शयाना चोपविष्टा वा स्थिता वा गमनातुरा ।
चित्रितापि बलान्नारी हरत्येव नृणां मन: ।"

(बुद्धचरित, 22·23)

"आवर्त: संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानाम् । दोषाणां
सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।। दुर्ग्राह्यं यन्महद्भि-
र्नरकुलवृषभैः सर्वमायाकरण्डम्, स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम्"।

(शङ्कराचार्य,

"स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु ।
संदृश्यते किमुत या: प्रतिबोधवत्य: ।।"

(अभि०शा०, 5·22)

वस्तुत: स्त्रियाँ कभी स्वतन्त्र नहीं रहतीं —

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।।"

(मह०, अनु०, 46·14)

अस्तु, नारियों के बारे में प्रेमचन्द जी के विचार सराहनीय हैं-- "स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अँधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूँ उसका सारा अध्यात्म औरयोग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।"

प्रसाद जी के शब्दों में हम कह सकते हैं —

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नगपग तल में ।
पीयूष-स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में ।।"

यहाँ कुछ स्त्रियों के नाम दिए जाते हैं जिन्होंने वेद-मार्ग पर चल कर अपने जीवन के आदर्श को प्रस्तुत किया --

मनु-पुत्री देवहूति जो सांख्यप्रणेता कपिलमुनि की माँ थीं। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा। उत्तानपाद की पत्नी सुनीति। सावित्री। तारामती, दमयन्ती, शकुन्तला, उर्मिला, सीता, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति,सुबाहुपुत्री शशिकला जिसने सुदर्शन को अपना पति मान लिया था। देवकी, बलराम की माता और वसुदेव-पत्नी रोहिणी, रुक्मणी, रेवती, विदुला, गान्धारी, कुन्ती, माद्री, द्रौपदी, वेदवती, सुभद्रा, उत्तरा, प्रवीर की माता जना, वाक्पुष्टा, उदयमती, मयमल्लदेवी, रूपसुन्दरी, मीरा, पद्मिनी, दुर्गावती, अहल्याबाई, मृगनयनी, लक्ष्मीबाई और सारन्धा।

वेदों में राष्ट्रीयता की भावना

"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता:" यही भावना हमें वेदों में सर्वत्र दिखाई देती है। ऋषियों के तप के फलस्वरूप राष्ट्र का अस्तित्व बना --

"भद्रमिच्छन्त ऋषय: स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।।"
(अथर्व0, 19, 41, 1)

वैदिक राष्ट्रगान में ऋषि राष्ट्र की समृद्धि के लिए आह्वान करते हैं -- "आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्; आ राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्; दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशु: सप्ति: पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा: सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्; निकामे निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु; फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्ताम्, योगक्षेमो न: कल्पताम्" - (यजु0, 22·22)

हमारे ऋषि राष्ट्रप्राप्ति की कामना से विविध देवताओं का आह्वान करते थे तथा अपने नायक के लिए कामनाएँ किया करते थे, जिसे राष्ट्र-यज्ञ भी कहा जा सकता है —

"वृष्ण उर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा; वृष्ण उर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि; वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा; वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।। ।

"अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्तस्वाहा, अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त; ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
अप: परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
अप: परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा;
अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि;
अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा;
अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि । 3 ।
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;

शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा;
विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
अप: स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा ।
अप: स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त;
मधुमतीर्मधुमधुमतीभि: पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना
अनाधृष्टा सीदत सहौजसो महिक्षत्र क्षत्रियाय दधती: ।" 4 ।

(यजु०, 10·1-4)

ऋषि लोग अदिति (पृथ्वी) के गीत गाते हुए उसका यशोगीत गाते हैं --

"अदितिर्द्यौ रदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र: ।
विश्वे देवा अदिति: पंचजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् । 1 ।
महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । 2 ।
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावस्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ।
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा न: शर्म त्रिवरूथं नियच्छात् ।"

(अथर्व०, 7·6·1-4)

अप "इह राष्ट्रमु धारय" (ऋ०, 10·173·5)

"राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्" (कात्या०श्रौ०सू०, 5·13)

अपनी जन्मभूमि को माता मानने की भावना सर्वप्रथम वेदों में ही मिलती है --

"तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः।
तद्ग्रावाण: सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ।।"

(ऋ०, 1·89·4)

"द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।"

(ऋ०, 1·164·33)

"द्यौर्व: पिता पृथिवी माता सोमो भ्राताऽदिति: स्वसा"

(ऋ०, 1·191·6)

"मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात्"

(ऋ०,5·42·16)

"उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयताम्"।

(यजु०, 2·10)

"माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:"

(अथर्व०, 12·1·12)

"भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्"

(अथर्व०, 12·1·63)

"सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पय:"

(अथर्व०, 12·1·10)

"माता पृथिवी महीयम्" (ऋ०,1·164·33)

"माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि"

(ऋ०,10·18·11)

"भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्"

(ऋ०, 10·18·11)

"सा नो भूमि: प्रणुदतां सपत्नामसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु"।

(अथर्व०, 12·41)

"सानो भूमिस्त्विषि बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे"।

(अथर्व०, 12·8)

"पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मा अहं त्वाम्"।

(शत०, 5·4·2·20)

"न हि माता पुत्रं हिनस्ति न पुत्रो मातरम्"

(शत०,5·4·3·20)

"आऽन्तादा परार्धात्पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति"।

(ऐत०ब्रा०, 8·15)

भारत की धरती पर जन्मा प्रत्येक व्यक्ति अपने छोटे, बड़े तथा मध्यमपन को भूलकर धरती को ही माता मानकर उसमें निवास करते हैं —

"ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो मध्यमासो महसा विवावृधु:।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन।

(ऋ०, 5·59·6)

"अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधु: सौभगाय"

(ऋ०, 5·60·5)

ऋग्वेद(5·5·8) में भूमि को सर्वजनसुखकारी कहा है —

"इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुव:। बर्हि: सीदन्त्वस्रिध:"

(ऋ०,5·5·8)

"स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा न: शर्म: सप्रथ:"

(ऋ०,1·22·15)

"स्योना चासिसुषदा चासि ऊर्जस्वती चासि पयस्वती च"

(यजु०, 1·27)

"शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा" तथा

"शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती। भूमिरधि-

ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह" (अथर्व0, 12·1·17 और 59)

वह पृथ्वी नानाविध ओषधियों को धारण करती है जिससे हमें नवजीवन मिलता है --

"नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथ्वी नः प्रथतां राध्यतां नः"

(अथर्व0, 12·1·2)

"विश्वस्वं मातरमोषधीनाम्" (अथर्व0, 12·1·17)

यहाँ की उर्वरा भूमि नानाप्रकार के अन्न उपजाती है --

"यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः"

(अथर्व0, 12·1·3)

"यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्चकृष्टयः"

(अथर्व0, 12·1·42)

यह पृथ्वी रत्नगर्भा है --

"विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी"

(अथर्व0, 12·1·6)

"तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः"

(अथर्व0, 12·1·26)

"निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु"

(अथर्व0, 12·1·44)

पृथ्वीस्थ पर्वत बड़े सुखकारी हैं तथा नदियाँ भी --

"आशर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम्" ।

(ऋ0, 8·31·10)

"गह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रोऽजायत"

(यजु0, 26·15)

यहाँ के वन और उसके फल बड़े रमणीय हैं --

"आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।

प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ।।"

(ऋ०, 10·146·6)

यहाँ की छहों ऋतुएँ बड़ी सुखकारी हैं --

"ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ।।"

(अथर्व०, 12·1·36)

जहाँ हंस, गरुड़, मोर और पक्षी इसकी शोभा बढ़ाते हैं --

"यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि"

(अथर्व०, 12·1·51)

इस यजमान को राष्ट्र के उत्तम पद पर आसीन करो--

"अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् ।

इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ।।"

(अथर्व०, 6·54·2)

ऋषि लोग अपने नायकों को आशीर्वाद देते थे --

"आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदेहि"

(अथर्व०, 3·4·1)

"वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व" ।

(अथर्व०, 3·4·2)

तथा उनसे यह अपेक्षा करते थे कि प्रजाएँ उन्हें चाहें और उनका राष्ट्र दृढ़ बना रहे --

"विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्"

इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ।।

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।

ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ।।" ऋ०, 10·173-1-

मेरा पृष्ठप्रदेश देश के समान सर्वाधार बने तथा मैं राष्ट्र और द्यावापृथिवी आदि में प्रतिष्ठित होऊँ-

"पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी" ।

(यजु०, 20·8)

"प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु --- प्रति द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे" (यजु०,20·10)

ऋषि राष्ट्र को शत्रुरहित और समृद्ध बनाने की अभिवर्त (विजय द्वारा प्रार्थना करते हैं ---

"अभीवर्त्तेन हविषा --- अभि राष्ट्राय वर्तय"

(ऋ०, 10·174·1)

"असपत्नः सपत्नहा अभिराष्ट्रो विषासहिः"

(ऋ०,10·174·5)

"अभीवर्त्तेन मणिना --- ब्रह्मणस्पते राष्ट्राय वर्धय"

(अथर्व०, 1·29·1)

"राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे"

(अथर्व०,1·29·4)

"सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः"

(अथर्व०,1·29·6)

पर्णमणि (इन्द्रजाल या वोट-पत्र) द्वारा मैं राष्ट्र के उन्नत शिखर पर पहुँच जाऊँ ---

"अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः"

(अथर्व०, 3·5·2)

विशाल और स्वतन्त्र लोकतन्त्रात्मक शासन ही प्रशंसनीय है ---

"युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौ यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः"

(ऋ०, 7·84·2)

ऋषि लोग वर-वधू को अपनी समृद्धि के साथ-साथ राष्ट्र की समृद्धि हेतु भी उपदेश दिया करते थे --

"अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ।।"

(अथर्व०, 6·78·2)

तेज और बल से परिपूर्ण भूमि ही उत्तम राष्ट्र होती है --

"सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे"

(अथर्व०, 12·1·8)

राष्ट्र भूमि के धारक तत्त्वों में 8 तत्त्व प्रमुख हैं, जो राष्ट्रभूमि को सुरक्षित बनाते हैं -- सत्य, बृहत्(विकास), ऋत(निश्चित नियम), उग्रता (दुर्धर्ष शक्ति), दीक्षा (दक्षता किंवा अनुशासन), तप (घोर लगन), ब्रह्म(ज्ञान) और यज्ञ(पवित्र क्रियाएँ)

"सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी न: कृणोतु ।।"

(अथर्व०, 12·1·1)

यहाँ के निवासियों की एकता देखते हुए ही राष्ट्रनायक को पान्चजन्य कहा गया है, जो पाँचों वर्णों का समेकित रूप था --

"एवं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु" ।

(ऋ०, 5·32·11)

"अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतस: पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते"

(अथर्व०, 4·23·1)

"चर्षणीप्रो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती"

(ऋ०, 1·100·12)

"य: पञ्चचर्षणीरभि निषसाद दमे दमे ---- "

(ऋ०, 7·15·2)

"ऋषिं नरावंहस: पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन"

(ऋ0, 1·117·3)

वह पृथ्वी बहुभाषा-भाषी और नानाधर्मा मनुष्यों का समान रूप से परिपालन करती है --

"जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्"

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।

(अथर्व0, 12·1·45)

वही पृथ्वी हमें शत्रुओं से रहित कर दे--

"सा नो भूमि: प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु"

(अथर्व0, 12·1·41)

हम सब एक हों--

"युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ---- "

(ऋ0, 1·17·4)

"यूयं पात स्वस्तिभि: सदा न:"

(ऋ0, 7·43·5)

"समान ऊर्वे अधिसंगतास: सं जानते न यतन्ते मिथस्ते।

ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमाना:।।"

(ऋ0, 7·76·5)

यदि कुछ भेदभाव हो तो उसे मिटा देना चाहिए --

"इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम्"

(ऋ0, 7·83·4)

सर्वजनसुखाय एक संवेश्य राष्ट्र के निर्माण की बात यहाँ कही गई है --

"आयातु मित्र ऋतुभि: कल्पमान: संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभि:।

अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ।।"

(अथर्व0, 3·8·1)

ऋषि लोग सबको एकजुट होने का आह्वान करते थे —

"सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि ।।"

(अथर्व0, 3·8·5)

ऋषिगण सिन्धु, वायु और पक्षियों की एकता को उद्धृत करके सबसे एक होने की कामना करते थे —

"संसंस्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ।
इहैव हवमायात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः ।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ।

(अथर्व0, 1·15·1-2)

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते । 2 ।
समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि । 3 ।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति । 4 ।

(ऋ0, 10·191·2-4)

तथा

"सं जानीध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।"

(अथर्व0, 6·64·1)

भारतभूमि के निवासियों में छोटे-बड़े का सम्बाध(मनमुटाव) नहीं है बल्कि उनमें परस्पर सापेक्ष भाव है —

"असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वत: प्रवत: समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न प्रथतां राध्यतान:।।"

(अथर्व0, 12•1•2)

हम सभी भारतमाता से उत्पन्न हैं अत: हम सब छोटे-बड़े उसी के हैं। हम परस्पर द्वेष-भाव न रखें --

"त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पद:।
त्वेमे पृथिवी पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति"

(अथर्व0, 12•1•15)

"तान: प्रजा: ---- मधु पृथिवि धेहि मह्यम्"

(अथर्व0, 12•1•16)

"मा नो द्विक्षत कश्चन" (अथर्व0, 12•1•18)

"प्रो आरत ---- सर्वया विशा" (ऋ0, 1•39•5)

"मायिनं मृगं ---- माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्" ।

(ऋ0, 1•80•7)

जिस पृथ्वी पर मनीषी लोग विचरण करते हैं और ऋषिगण मन्त्रोच्चार करते हैं वही हमें अभीष्ट है--

"यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिण: "

(अथर्व0, 12•1•8)

"रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् " (ऋ0, 3•53•12)

"यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचु:"

(अथर्व0, 12•1•39)

हम सब स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील रहें --

"व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये"

(ऋ0,5•66•6)

"अनागसोऽदितये" (ऋ0,5•82•6)

"नमस्विन उप स्वराजमासते" (ऋ0, 1·36·7)

"शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्"

(ऋ0, 1· 80)

"अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्"

(अथर्व0, 12·1·11)

हम शत्रुओं द्वारा अधिकृत भूमि का उद्धार करें --

"गा न व्राणा अवनीरमुञ्चद् ---- " ।

(ऋ0, 1·61·10)

"इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो र्चन्ननुस्वराज्यम्"

(ऋ0, 1·80·3)

"आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षिती: सुभगो नाम पुष्यन्"

(ऋ0, 5·37·4)

"उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते"

(ऋ0, 7·66·6)

"तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासोअमेभिरेषाम्।"

(ऋ0, 7·34·19)

"राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु" ।

(ऋ0, 7·34·11)

वेद में राष्ट्रदेवी की भी कल्पना की गई है --

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् ---- " ।

(ऋ0, 10·125·3)

वेद में सबके लिए मांगलिक शब्द और दृश्य देखने-सुनने की कामना के साथ-साथ यह करते हुए सौ वर्ष जीने की भी कामना की गई है --

"भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।"

(यजु0, 25·21)

"तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्।

(ऋ0, 7·66·16)

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्" (यजु0, 36·24)

हम सौ वर्ष तक हृष्टपुष्ट, ज्ञानी और अलङ्कृत रहें --

"बुध्येम शरदः शतम्। रोहेम शरदः शतम् ।

पूषेम शरदः शतम् । भवेम शरदः शतम् ।

भूषेम शरदः शतम् । भूयसीः शरदः शतात्।"

(अथर्व0, 19·67·1)

वेद में राष्ट्र मंगलकामना ही नहीं अपितु "यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्" इस दृष्टि से अन्ताराष्ट्रिय मंगलकामना की गई है, जो सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय की भावना से ओत-प्रोत है। ऋग्वेद का स्वस्तिवाचन और शान्ति प्रकरण ऐसे ही मन्त्रों से अनुस्यूत है।

"शं न द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नोऽस्तु ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।

शं न पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सहधीभिरस्तु ।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः

(ऋ0, 7·35·5,8,10,11,12)

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः शान्तिर्वनस्पयः शान्ति शान्ति सा मा शान्तिरेधि ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः" (यजुर्वेद 36·17)

हम सभी को तथा सब हमें मित्र की दृष्टि से देखें इस प्रकार विश्व के सभी मानव सभी मानवों को मित्र-दृष्टि से देखें --

"दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे
(यजु0, 36·18)

हम किसी के धन का लोभ न करें। अन्त में सब कुछ छूटना ही है, अतः त्यागपूर्वक भोग की आदत डालें --

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।"
(यजु0, 40·1)

वेद के नियम सार्वभौम और सार्वजनीन हैं, वह सबको कर्म का उपदेश देता है। कर्म से ही सब कुछ सम्भव है --

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे"।।
(यजु0, 40·2)

वेद सबके एकत्व और सुपथगामी होने का अभिलाषी है --

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ।।"
यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः को शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।।
(यजु0, 40·6-7)
अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान्विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।"
(यजु0, 40·16)

चारों ओर माधुर्य हो --

"मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तुसूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तुनः ।।
(यजु0, 13·28-29)

हममें लोककल्याणकारी सुमति हो --

"तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्"

(यजु०, 17·74)

हम सब हृदय और विचार में समान हों -

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।"

(ऋ०, 10·191·3)

सर्वत्र सद्भाव और माधुर्य हो --

"ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् व संमनसस्कृणोमि ।।"

(अथर्व०, 3·30·5)

मैं सभी का प्रिय देखूँ --

"प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।।"

(अथर्व०, 19·62·1)

मनुष्य का सदा उत्थान होवे, पतन नहीं --

"उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि"

(अथर्व०, 8·1·6)

"उत्क्रामातः पुरुष मावपत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।"

(अथर्व०, 8·1·4)

"उच्च तिष्ठ महते सौभगाय" (अथर्व०, 2·6·2)

"चरैवेति चरैवेति, इन्द्र इच्चरतः सखा"

(ऐत०ब्रा०)

"त्वमेकवृषो भव" (अथर्व०, 6·86·2)

हम पुरुषार्थी बनें --

"अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे भगवत्तरः"।

(अथर्व0, 4·13·6)

हम सर्वत्र निर्भय बने रहें --

"अभयं मित्रादभयममित्राद् अभयं ज्ञातादभयं पुरोयः ।
अभयं नक्तमभयं दिवानः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।"

(अथर्व0, 19·15·6)

हम सब महान् सौभाग्य हेतु कटिबद्ध हों --

"आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय"

(ऋ0, 3·8·2)

हममें जो न्यूनता हो उसकी क्षतिपूर्ति अग्निरूप परमात्मा करें --

"वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि, अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण" (यजु0, 3·17)

हम विद्या से अमरत्व की प्राप्ति करें तथा अध्यात्म मार्ग से भी --

"विद्ययाऽमृतमश्नुते" (यजु0, 40·14)

"संभूत्याऽमृतमश्नुते" (यजु0, 40·11)

अज्ञानी और नास्तिकों का उद्धार नहीं होता --

"अभि वेना अनूषते यक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः"

(ऋ0, 9·64·21)

यज्ञ सभी के लिए करणीय कर्म है --

"उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून्, कीर्तिं यजमानं च वर्धय ।।"

(अथर्व0, 19·6·1)

"स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ।।"

(यजु0, 17·68)

"उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत ।
रायस्पोषेण संसृज प्रजया च बहुं कृधि ।।"

(यजु०, 17·50)

हम उन्नत हों और दिव्य ज्योति पावें तथा संकीर्ण न बनें --

"पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहम् अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्" ।।

(यजु०, 17·67)

हम शुभ विचारों से युक्त हों --

"सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम् ।।"

(यजु०, 2·24)

हम तेजस्वी और दिग्विजयी बनें --

"महयं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाऽध्यक्षेण पृतना जयेम"

(ऋ०, 10·128·1)

"विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्"

(यजु०, 18·33)

मैं मनुष्यों में वर्चस्वी बनूं --

"वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम्" (यजु०, 8·38)

"ओजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्" (यजु०, 8·39)

"भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्" (यजु०, 8·40)

हम अज्ञानियों को ज्ञान दें --

"केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे"

(ऋ०, 1·6·3)

हम राष्ट्रहित में निद्रा और दुर्वचन छोड़ें --

"मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः"

(ऋ०, 8·48·14)

"यो जागार तमृच: कामयन्ते, यो जागार तमु सामानियन्ति"

(ऋ0, 5·44·14)

"स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्" (अथर्व0, 2·6·3)

हम सदा नीरोग और सुखी बने रहें --

"अपामीवामप विश्वामनुहुतिम्, अपारातिं दुर्विदत्रामधायत:।
आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरु ण: शर्म यच्छता स्वस्तये।।"

(ऋ0, 10·63·12)

"इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाच: सुदिनत्वमह्नाम्।।"

(ऋ0, 2·21·6)

हम सदा विजयी बनें - कापुरुष न बनें --

"इतो जयेतो विजय, संजय जय स्वाहा"

(अथर्व0, 8·8·24)

"तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति, न देवास: कवत्नवे"

(ऋ0, 7·32·9)

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा:"

(ऋ0, 4·33·11)

"प्रेता जयता नर, इन्द्रो व: शर्म यच्छतु"

(ऋ0, 10·103·13)

"अस्माकं या इषवस्ता जयन्तु अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु"

(ऋ0, 10·103·11)

"अभिप्रयन्तु नरो अग्निरूपा:" (अथर्व0, 4·31·1)

हमारे हाथ में शस्त्र और शिर में ज्ञान हो--

"हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम्" ।

(ऋ0, 2·16·2)

हम राष्ट्र के शत्रुओं को जीवित न छोड़ें --

"अर्हिं वृक इव मथनीत, स वो जीवन् मा मोचि"

(अथर्व0, 5·8·4)

"गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व, मामीषां कं चनोच्छिषः"

(अथर्व0,3·19·8)

"मान्तः स्थुर्नो ऽरातयः" (अथर्व0,13·1·59)

शठ के साथ शठता ही धर्म है --

"त्वं मायाभिरप मायिनो ऽधमः ---- "

(ऋ0, 1·51·5)

"घनेन हन्मि वृश्चिकम्, अहिं दण्डेनागतम्"

(अथर्व0, 10·4·9)

हमारा सबसे ऐकमत्य स्थापित हो-

"संज्ञानं न स्वेभिः, संज्ञानमरणेभिः" ।

(अथर्व0, 7·52·1)

हम राष्ट्र को सच्चरित्र बनायें तथा उसकी वृद्धि करें --

"इदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत्" (अथर्व0, 13·1·20)

"इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय" (अथर्व0, 7·35·1)

हम अकर्मशील और अमानुष न बनें --

"अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः"

(ऋ0,10·22·8)

द्वेषी का नाश हो, प्रेम का विस्तार हो --

"अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप ।

यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।"

(अथर्व0, 2·19·1)

वही परमात्मा प्राणिमात्र में व्याप्त है,अतः द्वेष न करो-

"जनं जनं जन्यो नातिमन्यते विश आ क्षेति विश्यो विशं विशम्"

(ऋ0, 10·91·2)

"धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं, योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व,यं वयं धूर्वामः।

(यजु0, 1·8)

हम परस्पर कलह करके नाश को न प्राप्त हों --

"मिथो विघ्नाना उपयन्तु मृत्युम्" (अथर्व0, 6·32·3)

कृपणों की अधोगति हो --

"अधोवचसः पणयो भवन्तु, नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम्"

(अथर्व0, 5·11·6)

संसार के सारे ऐश्वर्य अस्थिर हैं --

"ओहि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः"

(ऋ0, 10·117·5)

पापी को श्री नहीं मिलती --

"न दुष्टृती मर्त्यो विन्दते वसु" (ऋ0, 7·32·21)

हम सत्य ही बोलें, सत्य से ही भूमि टिकी है --

"सत्येनोत्तभिता भूमिः, सूर्येणोत्तभिता द्यौः"

(अथर्व0, 14·1·1)

"सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

तयोर्यत्सत्यं यतरद् ऋजीयस्तदित् सोमो वति हन्त्यासत्"

(अथर्व0, 8·4·12)

"सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो ---- "

(ऋ0, 10·37·2)

"तान् सत्यौजाः प्रदहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।

यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ।।"

(अथर्व0, 4·36·1)

"छिन्नन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवादति तं सृजन्तु"

(अथर्व0, 4· 16· 6)

हे प्रभु, हमें शुभवृत्तियाँ दीजिए ---

"शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नियच्छ"

(अथर्व0, 7· 115· 3)

हम पापी लक्ष्मी का नाश करें ---

"रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः याः पापीस्ता अनीनशम्"

(अथर्व0, 7· 115· 4)

हमें त्रिविध सम्पत्ति(अन्न, जन, पशु) प्राप्त हो ---

"अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा, भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्"

(अथर्व0, 5· 28· 3)

श्रद्धा और विश्वास सफलता हेतु अनिवार्य तत्त्व हैं ---

"एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ---- "

(अथर्व0, 6· 122· 3)

हम देश के लिए बलि दें ---

"ये युध्यन्ते प्रधनेषु, शूरासो ये तनूत्यजः ।

ये वा सहस्रदक्षिणाः, तांश्चिदेवापि गच्छतात् ।।"

(अथर्व0, 18· 2· 17)

आत्मबल औरसंयम से राष्ट्र की शोभा बढ़ती है ---

"मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय"

(अथर्व0, 6· 133· 3)

"ब्रह्म वर्म ममान्तरम्" (साम0, 1872)

"प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।

लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ।

(ऋ0, 10· 28· 4)

"भद्रं मन: कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासह:" ।

(ऋ0, 8·19·20)

मेरा व्रत परम दृढ़ है --

"न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये"

(अथर्व0, 5·11·3)

मैं अजेय हूँ-

"अयुतोऽहम्, अयुतो म आत्मा ---- अयुतोऽहं सर्व:"

(अथर्व0, 19·51·1)

हम में विश्व-कल्याणकारी सुमति उत्पन्न हो --

"त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम् अप्रयुतामेवयावो मतिं दा:"

(ऋ0, 7·100·2)

"दूर्वाया इव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मति:"

(ऋ0, 10·134·5)

कर्म और तप से ही राष्ट्र का उद्धार सम्भव है --

"तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।"

(अथर्व0, 11·8·2)

"इच्छन्ति देवा: सुन्वन्तं, न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्रा:" (अथर्व0, 20·18·3)

"कस्त्वा युनक्ति ---- कर्मणे वां वेषाय वाम्"

(यजु0, 1·6)

उत्साह (मन्यु) ही सफलता का मूल है --

"मन्युं विश ईडते ---- " (अथर्व0, 4·32·2)

हमें सच्चरित्रता की ओर बढ़ना चाहिए --

"परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज"

(यजु0, 4·28)

ताकि हम यशस्वी बनें --

"यशा विश्वस्य भूतस्य अहमस्मि यशस्तम:"

(अथर्व0, 6·58·3)

"वयं सर्वेषु यशस: स्याम" (अथर्व0, 6·58·2)

"मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृरु" (अथर्व0, 3·22·3)

उदय होती सूर्य की किरणें राष्ट्र से हृद्रोग और पीलियाँ को हटावें-

"उद्यन्नद्य मित्रमह, आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।

हृद्रोगं मम सूर्य, हरिमाणं च नाशय ।।"

(ऋ0, 1·50·11)

हम सर्वत्र शत्रु-रहित हों और निर्भय बनें --

"असपत्नं नो अधराद्, असपत्नं न उत्तरात्।"

(अथर्व0, 8·5·17)

"यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यत: ।

एवा मे प्राण मा बिभे:" (अथर्व0, 2·15·3)

हम सौ हाथों से कमाएँ, हजार हाथों से बाँट दें --

"शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर"

(अथर्व0, 3·24·5)

"दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्त: प्रतिरन्त आयु:"

(ऋ0, 1·125·6)

"स इद् भोजो यो गृहवे ददाति अन्नकामाय चरते कृशाय"

(ऋ0, 10·117·3)

"क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दा:" (ऋ0, 1·104·7)

"केवलाघो भवति केवलादी" (नि0, 7·3)

"अपृणन्तमभि सं यन्तु शोका:" (ऋ0, 1·125·7)

हम कभी हिंसा न करें --

"मा नो वधीः पितरं मोत मातरं ---- "

(यजु0, 16·15)

"मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः"

(यजु0, 16·16)

हम ईर्ष्या करके मृत मन वाले न बनें --

"एवेर्ष्यार्मृतं मनः" (अथर्व0, 6·18·2)

हम उल्लू की तरह मोह, भेड़िये की तरह क्रोध, कुत्ते की तरह द्रोह, चकवे की तरह काम, गरुण की तरह गर्व और गृध्र की तरह लोभ को न प्राप्त हों --

"उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातु मुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ।।"

अथर्व0, 8·4·22)

हम राष्ट्र में सात मर्यादाओं का पालन करें अर्थात् सात निषिद्ध कर्मों चोरी, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, मद्यपान, बार-बार दुष्कर्म, गर्भपात और पाप करके झूठ बोलने वाले कर्म न करें --

"सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्"

(नि0, 6·27)

हम द्यूत न खेलें --

"जाया तप्यते कितवस्यदीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित् ।"

(ऋ0, 10·34·10)

"अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व" (ऋ0, 10·34·13)

शरीर में ही सब है --

"विद्याश्च वा अविद्याश्च, यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदः, ऋचः सामाथो यजुः ।।"

(अथर्व0, 11·8·23)

"तस्माद् वै विद्वान् पुरुषं, इदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता ---- ---- ----।"

(अथर्व0, 11·8·32)

हम वेदप्रिय बनें --

"यदग्ने तपसा तप, उपतप्यामहे तप: ।
प्रिया श्रुतस्य भूयास्म आयुष्मन्त: सुमेधस: ।।"

(अथर्व0, 7·61·1)

"यावमानीर्यो अध्येति ऋषिभि: संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे, क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ।।"

(ऋ0, 9·67·32)

हम ऋणी बनकर न रहें --

"अनृणा अस्मिन् अनृणा: परस्मिन्, तृतीये लोके अनृणा:स्याम।
ये देवयाना:पितृयाणाश्च लोका: सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम।।"

(अथर्व0, 6·117·3)

हममें ज्ञान, शौर्य, राष्ट्रोन्नति, कान्ति, यश, तेज और धन की वृद्धि हो--

"ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च । त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं

(अथर्व0, 12·5·8)

हमारा पाप नष्ट हो सद्गुण नहीं --

"मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व ---- पाप्मा हतो न सोम:"

(यजु0, 6·35)

सभी वर्ण राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर हों --

"इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नम:।"

(अथर्व0, 6·55·3)

जो शुभ है, वहीहमें प्राप्त हो --

"यास्ते शिवास्तन्व: कामभद्रा ---- अन्यत्र पापीरप वेशया धिय:"

(अथर्व0, 9·2·25)

सारे राष्ट्र में प्रेम हो -

"इह रतिरिह रमध्वम् ----" (यजु0, 8·51)

हमें स्पृहणीय धन मिले -

"वसु स्पार्हं तदा भर" (अथर्व0, 20·42·2)

"अहं भूमिमददामार्याय" (ऋ0, 4·46·2)

"सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ।"

(अथर्व0, 16·2·4)

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" (ऋ0, 3·30·6)

"तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षित:"

(ऋ0, 6·140·2)

"मन्वश्रुत्यं चरामसि" (ऋ0, 10·134·7)

"घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।" (ऋ0, 3·26·7)

"प्रतिबुद्धा अभूतन" (ऋ0, 1·191·5)

वेद में राष्ट्रध्वज का भी वर्णन है, जो लाल रंग का सूर्य चिह्नित होता था --

"एता: देवसेना: सूर्यकेतव: सचेतस:"

(अथर्व0, 5·21·127)

"त्रिषन्धे: सेनया जिते अस्मा: सन्तु केतव:"

(अथर्व0, 11·10·7)

"ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनुरेतआगु:।"

प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षन्ति देवयूनाम् ।।

(अथर्व0, 8·5·9)

"अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात"

"येन देवं सवितारं परिदेवा अधारयन् ।

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परिराष्ट्राय धत्तन ।।"

(अथर्व०, 19.2.24)

तृतीय अध्याय

वैदिक राष्ट्र का आर्थिक स्वरूप

वैदिक राष्ट्र का आर्थिक स्वरूप

वेद में अनेक मन्त्रों में परमात्मा से धन की कामना की गई है। यथा --

"स नो वसून्याभर" (यजु0, 15·30)

"उभा हि हस्ता वसुना पृणस्व" (यजु0, 5·19)

"वयं भगवन्तः स्याम" (यजु0, 34·38)

"अग्ने नय सुपथा राये" (यजु0, 7·43)

"श्री: श्रयताम् मयि" (यजु0, 39·4)

"वसोर्दाता वस्वदात्" (यजु0, 4·16)

"श्रेयसे वित्तधम्" (यजु0, 30·11) और

"वयं स्याम पतयो रयीणाम्" (यजु0, 10·20)

वस्तुत:"धर्मस्य मूलमर्थ:।" धन के सदुपयोग से मनुष्य यशस्वी और महान् बनता है।

इस अर्थ के मूलाधार हैं - भूमि, पशु और मनुष्य । भूमि हमें सुखपूर्वक हमें निवास प्रदान करके तथा अपने गुप्तधन के कोषों से हमें सुख प्रदान करती है। यथा --

"स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा न: शर्म सप्रथ:।

(यजु0, 36·13)

"निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी ददातु सुमनस्यमाना ।।"

(अथर्व0, 12·1·44)

"जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रधारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।"

(अथर्व0, 12·1·45)

पशु भी अर्थ के आधार के रूप में हमें खाद्य-सामग्री और यातायात में सुख पहुँचाते हैं —

"इह गाव: प्रजायध्वमिहाश्वा इह पुरुषा: ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा निषीदति ।।"

(अथर्व0, 20·127·12)

और पुरुष के पुरुषार्थ के बिना तो सब असम्भव है —

"भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वप्नम्" (यजु0, 30·19)

हम धन के स्वामी तो बनें पर दूसरे का धन हड़पकर नहीं, गलत तरीके से नहीं ।

"मा गृध: कस्य स्विद्धनम्" (यजु0, 40·1)

अर्थ के लिए प्रयुक्त शब्दों में इष्टका, "इमा मे अग्न इष्टका धेनव:" (यजु0, 17·2), धेनु, नीहार (यजु0, 3·50), वस्न(यजु0, 3·49), वित्तायिनी (यजु0, 5·9), पण्य, क्रय और क्रत (यजु0, 8·55) प्रयुक्त हुए हैं।

व्यापार के मूल सिद्धान्त को निम्न मन्त्र में भली-भाँति दर्शाया गया है जो सभी कालों में व्यापार का प्राणस्वरूप रहा है —

"देहि मे ददामि ते निमे धेहि निते दधे ।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते ।।"

(यजु0, 3·50)

"शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन"

(यजु0, 4·26)

व्यवसाय की मन्त्रणा देने वाले को नमस्कार है —

"नमो मन्त्रिणे वाणिजाय" (यजु०, 16•19)

आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक होना चाहिए --

"शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर"

(अथर्व०, 3•24•5)

मरुद् सदृश गतिशील व्यापारी को इन कामों में नियुक्त करें --

"मरुद्भ्यो वैश्यम्" (यजु०, 30•5)

नाप-तौल के लिए वणिक को रखे --

"तुलायै वाणिजम्" (यजु०, 30•17)

दाशमिक प्रणाली की गणना निम्न मन्त्र में है --

"इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च।
शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च ।।"

(यजु०, 17•2)

व्यापार वाले द्रव्यों का नाम निम्न मन्त्र में आता है --

"व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे
खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे
नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

(यजु०, 18•12)

मृत्तिका, खनिज, पत्थर आदि के संग्रह और उपयोग के बारे में भी वेद में वर्णन मिलता है --

"अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे
सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे
श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।"

(यजु०, 18•13)

ईश्वर ही निधिपति हैं --

"निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे"

(यजु०, 23•19)

वही गण-विद्या का स्वामी और प्रिय विश्वासपात्र है --

"गणानां त्वा गणपतिं हवामहे" (यजु०, 23·19)

"प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे"(यजु०, 23·19)

धन की इकाइयों से द्रव्य का दोहन करना निम्न मन्त्र में बताया है। जहाँ मूल पूँजी दाशमिक प्रणाली से पद्म-शंख-परार्ध तक पहुँच जाती है--

"इमा मेऽग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं
च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च
प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्च
मेऽग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके।"

(यजु०, 17·2)

वेद में सामुदायिक आर्थिक समृद्धि की कामना की गई है वह व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए धनी होने का संकेत नहीं करता --

"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्" (यजु०, 7·43)

स्वयं ऐश्वर्यवान् बनकर अन्यों को भी उसे भोगने के लिए सुविधायें प्रदान करना ही वैदिक आर्थिक भावना का उद्देश्य रहा है। अतः प्रातः ही उच्चार्यमाण यह मन्त्र हमें अच्छी प्रेरणा देता है --

"प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ।
प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम ।"

(यजु०, 34·34-35)

कृपण लोग सामुदायिक भावना के शत्रु हैं, उनसे सावधान रहना है --

"पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः" ।

(ऋ०, 1·36·15)

ऋग्वेद(10·146·1) में वनों से ग्रामों की ओर आवर्तन का सङ्केत मिलता है --

"कथा ग्रामम् न पृच्छसि ---- " ।(ऋ0,4·41·6 में उर्वरा भूमि में कृषि कर्म करने का संकेत मिलता है --

"तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये"

(ऋ0,4·41·6)

ऋग्वेद(9·112·1-4) में हमें मनुष्यों के विविध व्यवसायों के प्रति प्रेम और उमंग की एक झलक मिलती है --

"नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।

तथा रिष्टं रुतं भिषग ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव-
जरतीभिरोषधीभि: पर्णेभि: शकुनानाम्।

कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव।

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।

नानाधियो वसूयवोऽनुगा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ।

अश्वो वोल्हा सुखं रथं हसनामुपमंत्रिण: ।

शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव।

ऋग्वेद(1·97·2) में अग्निदेव की सुक्षेत्रों, सुन्दर गृहों और धन के लिए प्रार्थना की गई है --

"सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे"।

पशुपालन से पूर्व आर्य लोग मनोरंजन तथा पशुओं की रक्षा के लिए जंगली हिंसक जानवरों का शिकार भी करते थे, कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य है --

"मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता" ।

(ऋ0, 2·42·2)

"गौरो न क्षेप्णोरविजे ज्याया:" (ऋ0, 10·52·6)

"युवं मृगेण वारणा मृगण्यवो" (ऋ0, 10·40·4)

" ---- अयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून्"

(ऋ0,1·88·5)

"मृगं न व्रा मृगयन्ते ----" (ऋ०, 8·2·6)

"मा त्वा केचिन्नियमन्वि न पाशिनो ---- "

(ऋ०, 3·45·1)

"गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः"

(ऋ०, 9·83·4)

अथर्ववेद (8·8·5) में आता है कि अन्तरिक्ष ही जाल था और दिशाएँ ही रज्जु बाँधने के डण्डे थे --

"अन्तरिक्षम् जालमासीज्जालदण्ड दिशो महि:" ।

सिंह के जाल में बाँधने का वर्णन यहाँ है --

"अवरुद्धः परिषदं न सिंहः ---- " ।

(ऋ०, 10·28·10)

ऋष्यद (मृगों को पकड़ने वाले) गड्ढे का भी वर्णन मिलता है --

"युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुः ----" (ऋ०, 10·39·8)

वराहों को पकड़ने में कुत्तों का भी प्रयोग होता था --

"श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुः --- ।"

(ऋ०, 10·86·4)

सिंहों को भी छिपकर पकड़ा जाता था --

"सिंहमिव द्रुहस्पदे" (ऋ०, 5·74·4)

मछली पकड़ने वालों में सायण तैत्तिरीय ब्राह्मण(3·4·12·1) में धैवर, दास, शौष्कल, कैवर्त्त, बैन्द, मैनाल, मार्गार और आण्ड तथा पर्णक का नाम लेते हैं जो जाल, बडिशा (Hook) की सहायता से मछली पकड़ते थे। वाजसनेयि संहिता(16·27) में शिकार को उत्तर वैदिक लोगों के व्यवसाय के रूप में बताया है। तैत्तिरीय संहिता(4·11·3) में आये अवटः शब्द को सायण गड्ढे के अर्थ में आया हुआ बताते हैं। कीट और कूर्म का वर्णन हमें अथर्ववेद 9·4·16 में मिलता है।

पशु-पक्षी पालन

पशु और पक्षी हमें आहार के पदार्थ, दूध, घी, दही, ऊन, चर्म, खाद, वाहन और सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा प्रकृति में होने वाली घटनाओं का हमें उनसे पूर्व संकेत भी प्राप्त होता है। वेद हमें पशुओं का पालन करने तथा उन्हें घर में रखने की आज्ञा देते हैं --

"यजमानस्य पशून्पाहि" (यजु०, 1·1)

"उपहूता इह गाव उपहूता अजावय: ।"

(यजु०, 3·43)

"प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत" (यजु०,

"त्वं न: पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपै: सुधायां माधेहि"

(अथर्व०, 17·1·7)

वेद में अघ्न्या गौ के अतिरिक्त अन्य पशुओं की रक्षा के लिए भी आदेश किया गया है --

"इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्" (यजु०, 13·47)

"इमं मा हिंसीरेकशफम्" (यजु०, 13·48)

"इमं साहस्रं शतधारं घृतं दुहाना मा हिंसी:"

(यजु०, 13·49)

"इममूर्णायुं ---- मा हिंसी:" (यजु०, 13·50)

"घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथाम्" (यजु०, 6·11)

"पशूनां पतये नम:" (यजु०, 16·17)

गायें प्रभूत संख्या में मधुरता का सम्पादन करती है --

"माध्वीर्गावो भवन्तु न:" (यजु०, 13·20)

"ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वी:"

(यजु०, 1·1)

पशु-पक्षियों के विविध उपयोग का वर्णन हमें यजुर्वेद 24वें अध्याय में मिलता है तथा प्रत्येक ऋतु में विभिन्न पक्षियों के आगमन से हमें ऋतु-सम्बन्धी ज्ञान भी होते हैं --

"अवस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्या:"

(यजु0, 24·1)

"वसन्ताय कपिञ्जलानालभते, ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीन् । शरदे वर्तिका हेमन्ताय ककरान् शिशिराय विककरान्।" (यजु0, 24·20)

मेघों का मेढ़कों से घना सम्बन्ध है। देखें --

"वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषु:"

(ऋ0, 7·103·1)

"वर्षाहू:" (यजु0, 24·38)

"संवत्सरं शशयाना" (ऋ0, 7·103·1)

"उप प्रवद मंडूकि" (अथर्व0,

"समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्। मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान्"

(यजु0, 24·21)

दिन में कबूतर का और रात में सीचापू का प्रयोग करें --

"अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयो:"

(यजु0, 24·25)

नीचे की दिशा का ज्ञान चूहों से, अन्तरिक्ष का पंक्तिबद्ध पक्षियों से प्राप्त करें --

"भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवेकशान् । दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्य: ।।"

(यजु0, 24·26)

वाणी के लिए क्रौंच पक्षी, चकवा, मैना और तोता आदि का प्रयोग करें --

"वाच क्रुञ्च:" (यजु0, 24·31)

"प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाक:" (यजु0, 24·32)

"सरस्वत्यै शारि:" "सरस्वते शुक: पुरुषवाक्" ।

(यजु0, 24·33)

"श्येनो मयूर: सुपर्णस्ते गन्धर्वाणाम्"

(यजु0, 24·37)

"प्रजापतये च वायवे च गोमृग:" (यजु0, 24·30)

"बगुली सूर्यगुण वाली है, कुक्कुट सूर्य धर्म वाला है --

"सौरी बलाका" (यजु0, 24·33)

"कृकवाकु: सावित्र:" (यजु0, 24·35)

"पुरुषमृग चन्द्रमा के धर्म वाला है --

"पुरुषमृगश्चन्द्रमस:" (यजु0, 24·35)

कोयल कामोद्दीपनार्थ और व्याघ्र, भेड़िया, अजगर क्रोध धर्म वाले है --

"कामाय पिक:" (यजु0, 24·39)

"शार्दूलो वृक: पृदाकुस्ते मन्यवे" (यजु0, 24·33)

रंगों की दृष्टि से पशुओं के गुणधर्म का विवेचन निम्न मन्त्र में है --

"रोहितो धूम्ररोहित: कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या ---- स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्य:" (यजु0, 24·2)

बालों के भेद से उनके गुण-धर्म देखिये --

"शुद्धवाल: सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विना:"

(यजु0, 24·3)

भूरी- लाल आँखों वाले रुद्र धर्म के, अच्छे कानों वाले पशु वायु देवता वाले और अन्य भी पशुओं का वर्णन यहाँ है --

"पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वो ---- उबस्या:"

(यजु0, 24•4)

खाद्य, परिवहन एवं यातायात की पूर्ति पशु ही करते हैं --

"दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशु: सप्ति:"

(यजु0, 22•22)

गम्भीर गति के निमित्त हस्तिपालक को, वेगपूर्वक गति हेतु अश्वपालक को, पुष्टि के लिए गोपालक को जानें या नियुक्त करें --

"अर्मेभ्यो हस्तिपं, जवायाश्वपं, पुष्ट्यै गोपालम्,

वीर्यायाविपालं, तेजसेऽजपालम्" (यजु0, 30•11)

पशुओं का दुग्ध और औषधियों के रस के लिए पशु और धान्य का महत्व निम्न मन्त्र में है --

"पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।

पय: पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पति ---- ।"

(अथर्व0, 19•31•5)

ऋग्वेद(7•13•3) में पशुपालक का वर्णन है --

"जातो यदग्ने भुवना व्यख्य: पशून् न गोपा ---- "।

पूषन् को पशुसाधनी (Controller of Cattle) ऋग्वेद (6•53•9) में कहा गया है। ऋग्वेद(1•42•8) में "अभि सूयवसं नय ---- " में पूषादेव से चरागाहों के लिए प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद(3•45•3) में पशुपालक द्वारा पशुओं को चारा देने का वर्णन है, "प्रसुगोपा यवसं धेनवो यथा"। तथा उनकी रक्षा करने का भी वर्णन है, "यूथेव पश्व: पशुपा ----" ऋ0(6•19•3)।

पशु चरते थे और उनके बछड़े रस्सियों में बँधे रहते थे --

"गवामिव श्रुतय: संचरणी: । वत्सानां न तन्तय: ---- "

(ऋ0, 6·24·4)

पूषा हमारे पशुओं की रक्षा करें --

"पूषा गा अन्वेतु न: पूषा रक्षत्वर्वत: "

(ऋ0, 6·54·5)

"माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे। अथारिष्टाभि-
रागहि"

(ऋ0, 6·54·7)

गोपालक के चरागाहों से आवर्तन-निवर्तन का वर्णन भी है --

"आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा निवर्तताम्"

(ऋ0, 10·19·5)

रुद्र से प्रार्थना है कि वे गायों पर मन्द-मन्द हवा चलायें --

"मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ---- ।"

(ऋ0,10·169·1)

ताकि वे औषधियों का अशन और जल का प्रभूत पान कर सकें-

"ऊर्जस्वतीरोषधीरारिशन्ताम् पीवस्वतीर्जीवधन्या: पिबन्तु ----"

(ऋ0, 10·169·1)

पशुओं को शुद्ध जल आहावन और द्रोणाहावम् में दिया जाता था-

"द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशंसिन्चता नृपाणम्" ।

(ऋ0,10·101·5,7)

उष्ट्र का वर्णन ऋग्वेद(8·5·37) में मिलता है --

यथा चिच्चैद्य: कशु: शतमुष्ट्राणां ददत् सहस्रादश गोनाम्"

(ऋ0, 8·5·37)

अश्व रथ खींचने में प्रयुक्त होता था --

"प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित् कृणुध्वम्"

(ऋ0,10·101·7)

ऋग्वेद(1·155·1) में, "महस्तत्थतुरर्वति साधुना" में घुड़सवारी का वर्णन है तथा उनके युद्ध में उपयोग का भी वर्णन है --

"उजन्ते अश्वान् अत्यामिवाजिषु"

"समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु"

(ऋ0, 6·47·31)

यहाँ अश्वपर्णा का अर्थ घुड़सवार है (Heroes Winged with horses)। ऋग्वेद(1·61·15) में "प्रेतशं सूर्ये पस्पृधानं" तथा ऋग्वेद(1·14·3) में घुड़दौड़ का वर्णन है। गधों को अश्विनो का रथ खींचने वाला कहा है --

"कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः"।

(ऋ0, 1·34·9)

ऋग्वेद(10·26·6) में भेड़ों के ऊन का वर्णन है, "वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत्" । गान्धार का ऊन प्रसिद्ध था --

"गान्धारीणामिवाविका" (ऋ0, 1·126·7)

ऋग्वेद(1·138·4) में अज का वर्णन है, "अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व"। अथर्ववेद(6·59·1,2) में पशुओं की वृद्धि और उनकी संरक्षा की कामना की गई है --

"अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।

अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ।।

करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ।"

"पुनर्न इन्द्र गा देहि" (ऋ0, 10·19·6)

अथर्ववेद(12·4·2) में ब्राह्मणों के लिए गोदान लाभकर बताया गया है --

"प्रजया स विक्रीणीते पशुभिश्चोपदस्यति ।

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति" ।।

हाथी की भी सवारी की जाती थी --

"हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो ---- " ।

(अथर्व0, 3·22·1,3,6)

चरागाह को व्रज भी कहते थे (ऋ0,10·26·3)

"व्रजं न आ पृषायति"

"व्रजमा पशुर्गात्" (ऋ0,2·38·8)

गायें प्रातः, दोपहर(संगवे) और सायं तीन समय दुही जाती थीं --

"गोष्ठ चरागाह को कहते थे" (ऐ0ब्रा0,3·18·14)

पशुओं पर कुछ चिह्न भी अंकित किए जाते थे। यथा --

"अष्टकर्ण्यः" -- कान पर आठ का चिह्न तथा हँसिये का चिह्न (मै0सं0, 6·2·9) ।

कुत्तों को पशुओं की तथा घर की रक्षा के निमित्त पाला जाता था --

"स्तेनम् राय सारमेय तस्करम् वा पुनः सर"

(ऋ0, 7·55·3)

शतपथ-ब्राह्मण(4·1·5·2) में प्रयुक्त अविपाल, अश्वपाल शब्द उनके पालकों को जानकारी देते हैं।

ऋग्वेद(1·162·14) में अश्व के क्रियाकलापों का वर्णन है --

"यच्च पपौ यच्च घासिं जघास ---- ।"

गौ का वैदिक समाज में बड़ा आदर था --

"शिवाः सती रुपा नो गोष्ठमस्माकमत्तासां ---- ।"

(ऋ0, 10·169·4)

"क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः"

(ऋ0, 4·24·10)

एक मन्त्र में एक लाख घोड़ों के दान का उल्लेख है --

"य: सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते"

(ऋ0, 10·62·8)

गाय ही भग, सोम और इन्द्र है --

"गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान्, गाव: सोमस्य प्रथमस्य भक्ष:।

इमा या गाव: स जनास इन्द्र ---।"

(ऋ0, 6·28·5)

ऋषियों का गान गायों के रँभाने के तुल्य है --

"अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातर:"।

(ऋ0, 9·12·2)

कुछ अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है --

"मा गामनागामदितिं वधिष्ट"।

(ऋ0, 8·101·15)

"यूयं गावो मेदयथा कृशं चिद्"। (ऋ0, 6·28·6)

"अभयं न: पशुभ्य:" (यजु0, 36·22)

"गां मा हिंसीरदितिं विराजम्" (यजु0, 13·43)

"गां मा वृधत मर्यो दभ्रचेता:" (ऋ0, 8·101·16)

"अन्तकाय गोघातकम्" (यजु0, 30·18)

"अनागा हत्या वै भीमा" (अथर्व0, 10·1·29)

"यजमानस्य पशून् पाहि" (यजु0, 1·1)

"आप्यायध्वमघ्न्या:" (यजु0, 1·1)

"आरे गोहानृहा" (ऋ0, 7·56·17)

"यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। तं त्वा सीसेन विध्यामो

यथा नोऽसोऽवीरहा" (अथर्व0, 1·16·4)

"स्वस्ति गोभ्य:" (अथर्व0, 1·13·4)

"पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत्।"

(अथर्व0, 19·31·1-6)

"मा हिंसी: तन्वा: प्रजा:" (यजु0, 12·32)

"इमं मा हिंसी: द्विपादं पशुम्" (यजु0, 40·18)

"घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथाम्" (यजु0, 6·11)

"अहं पशूनामधिप: असानि" (अथर्व0, 19·31·6)

"ये ग्राम्या: पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु"

(अथर्व0, 3·10·6)

"शंन: कुरु प्रजाभ्योऽभयं न: पशुभ्य: " ।

(यजु0, 36·22)

कृषि-कर्म

मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताओं में आहार का प्रमुख स्थान है जिसके लिए कृषिकर्म में कुशलता आवश्यक है तथा स्थान है भूमि --

"भूमिरावपनं महत्" (यजु0, 23·46)

इसमें पुरूषार्थ करके हम सोना उगा सकते हैं --

"नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या ----

कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा "

(यजु0, 9·22)

अत: हम सब उत्तम अन्नों वाली कृषि करें --

"सुसस्या: कृषीस्कृधि" (यजु0, 4·10)

वह कृषि, पृथिवी, वृष्टि और मरूत सब यज्ञ से अपनी सामर्थ्य प्रकट करते हैं --

कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु0, 18·9)

"पृथिवी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·22)

"वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·9)

"मरुतश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·17)

"वाजश्च मे प्रसवश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

(यजु०, 18·17)

औषधियाँ परिपाक को प्राप्त हों, वह निष्फल न हों -

"फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्" (यजु०, 22·22)

संगीतमय वाणी का अन्न के उत्पादन में योगदान हो सकता है --

"वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे"

(यजु०, 18·30)

अन्न साम्राज्यों का भी अधिपति है --

"अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः" (वेद

मैं सब दिशाओं में कृषि करके अन्नपति बनूँ तथा व्यापार करूँ-

"सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम्" (यजु०, 18·34)

"सर्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्" (यजु०, 18·32)

अन्न हमें धन के विभाग के लिए प्राप्त हो —

"वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु"

(यजु०, 18·32)

कृषि के लिए अग्नियाँ भी प्रदीप्त होनी चाहिए -

"विश्वे भवन्त्वग्नय समिद्धाः" (यजु०, 18·31)

कृषि के लिए वायु तथा संरक्षण भी हमें मिले ---

"विश्वे अद्य मरुतः" (यजु०, 18·31)

"विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु" (यजु०, 18·31)

"विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे" (यजु०, 18·31)

मैं जलों से पृथ्वी को सिंचित करके अन्न उत्पन्न करूँ

"सं मा सृजामि पयसा पृथिव्या: सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभि:।"
सोऽहं वाजं सनेयमग्ने"

(यजु०, 18·35)

विद्वज्जन कृषि कर्म करें --

"सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया। (यजु०, 12·67)

मेरा हल चलाना विद्वानों के निरीक्षण में हो --

"सीरं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·7)

कृषिकर्म का उत्तम रूप निम्न मन्त्र में मिलता है --

"शुनं सुफाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहै: ।
शुनासीरा हविषा तोषमाना सुपिप्पला ओषधी: कर्तनास्मै।।"

(यजु० 12·69)

हमारे अन्नादि पदार्थ मधुर हों --

"मधुमतीर्न इषस्कृधि" (यजु०, 7·2)

भूमि जोतने के बाद पटा चला देना चाहिए --

"लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·7)

वह पृथ्वी जल से खूब सिक्त की जावे --

"घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भि: ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना स्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व।।"

(यजु०, 12·70)

मैं धान्यों को ओषधियों(खाद) के साथ बोता हूँ --

"सं वपामि समाप ओषधीभि: समोषधयो रसेन"

(यजु०, 1·21)

वह कृषि जल-सिक्त हो तथा मधुर रस से संपृक्त हो --

"सं रेवती र्जगतीभि: पृच्यन्तां सं मधुमतीर्मधुमतीभि: पृच्यन्ताम्।"

(यजु०, 1·21)

मेरा उत्पादन, मेरी कृषि सब यज्ञकर्म द्वारा सार्थक बने --

"सूश्च मे प्रसूश्च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

(यजु०, 18·7)

"अन्नं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·10)

"व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

(यजु०, 18·22)

हे अन्नपते, आप हमें बलप्रदायक और रोगरहित अन्न दीजिए --

"अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः"

(यजु०, 11·83)

अन्नार्थ किसानों को उत्पन्न कीजिए, उन्हें नमस्कार है --

"इरायै कीनाशम्" (यजु०, 30·11)

"अन्नानां पतये नमः क्षेत्राणां पतये नमः"।

(यजु०, 16·18)

अश्विनौ ने ही आर्यों को कृषि करना और बीज बोना सिखाया --

"यवम् वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ।।"

(ऋ०, 1·117·21)

अश्विनौ ने पहले हल का आविष्कार किया और उसे मनु को सिखाया --

"दश स्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः"

(ऋ०, 8·22·6)

पृथु वैन्य को भी प्रथमतः हल का आविष्कारक माना जाता है--

"ताम् पृथी वैन्योऽधोक् ताम् कृषिं च सस्यं चाधोक्"

(अथर्व०, 8·10·11)

ऋग्वेद(10·34·13) में एक जुआड़ी को जुआ खेलने की बजाय कृषि करने की नेक सलाह दी गई है --

"अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व ---- "

दो बैल, जुए की रस्सी आदि का वर्णन ऋग्वेद(4·57·4) में है--

"शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय: ॥"

(ऋ०, 4·57·4)

"शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥"

(ऋ०, 4·57·8)

हल को छः बैल या आठ बैलों द्वारा खींचने का भी उल्लेख है --

"इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः"

(अथर्व०, 6·91·1)

"युनक्त सीरा वियुगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्"

(अथर्व०, 3·17·2)

पकी फसल हँसिये से सम्पृक्त हो --

"नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्" (ऋ०, 10·101·3)

कृषकजन यव की फसल को क्रम से काटते हैं --

"कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय:" ।

(ऋ०, 1·131·2)

ऋग्वेद(1·127·6) में अप्नस्वती(उपजाऊ) तथा आर्तना(पड़ती) दोनों प्रकार के खेतों का उल्लेख मिलता है ।

खेत की नपाई भी होती थी --

"क्षेत्रमिव विममुस्तेजनेन" (ऋ0. 1·110·5)

अपाला ने अपने उर्वरा खेत को अपने पिता के सिर के समानकोटि में रखा है --

"शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे"

(ऋ0, 8·91·5)

हल का नाम सीर या लांगल या वृक था। आगे के भाग को फाल कहते थे। हलवाहे को कीनाश कहते थे और वरत्रा रस्सी को। गोबर को करीष कहते थे। नापने वाले बर्तन को उर्दर कहते थे --

"तमूर्दरं न पृणता यवेन" (ऋ0, 2·14·11)

ढेरी को स्थिवि कहते थे --

"बृहस्पतिः -- उपे यवमिव स्थिविभ्यः"

(ऋ0, 10·68·3)

अथर्ववेद(1·34·4) में इक्षु का उल्लेख है --

"परित्वा परितत्नुने क्षुणागाम विद्विषे"

(अथर्व0, 1·34·4)

अथर्ववेद(6·30·1) में इन्द्र को सीरपति तथा मरुतों को कीनाश कहा है --

"इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः"

<u>सिंचाई</u>

पृथ्वी पर यदि वर्षा न हो तो नदी-तालाब आदि सारे स्रोत निष्फल हो जायें, अतः कहा है --

"निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु"

(यजु0, 22·22)

वेद में अत्यन्त वर्षा करने वालों, मेघ-विज्ञान, ऋतु-विज्ञान, वर्षा

विज्ञान और विद्युत्-विज्ञान में कुशल व्यक्ति को नमस्कार किया गया है—

"नमो मीढुष्टमाय नमो वीघ्ध्राय च, आतप्याय च, नमो मेध्यायच, विद्युत्याय च, नमो वर्ष्याय च अवर्ष्याय च"

(यजु०, 16·29,38)

मेरी वृष्टि यज्ञ द्वारा समर्थ बने जो प्रयोगसिद्ध यथार्थ है —

"वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु०, 18·9)

"अभ्यावर्तस्व पृथ्वी यज्ञेन पयसा सह"

(यजु०, 12·103)

एक मन्त्र में जल दो प्रकार का बताया है -- खनित्रिम और स्वयंज --

"या आपो दिव्या उतवा स्रवन्ति खनित्रिमा उतवा याः स्वयन्जाः समुद्रार्था या शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।"

(ऋ०, 7·49·2)

"तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे"

(यजु०, 17·30)

वेद में कुएँ के लिए अवट का प्रयोग मिलता है ऋग्वेद(1·58·8, 10·25·4) तथा कूप(ऋ०, 10·105·17, 4·17·16) आदि। कुओं का जल नालियों द्वारा सिंचनार्थ लाया जाता था —

"अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्य सुषिराम्वि"

(ऋ०, 8·69·12)

अक्षित कूपों का भी उल्लेख मिलता है —

"इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचम् । उद्रिणं सिचे अक्षितम्" ।

(ऋ०, 10·101·6)

रस्सी और ढोल से रहट द्वारा कुओं से भी पानी खींचा जाता था

"द्रोणाहावमवतमश्म चक्रम् सत्रकोशं सिंचता नृपाणम्"

(ऋ० 1·101·7)

ऋग्वेद(10·43·7) में "यथा ह्रदम् कुल्या इवाशत।" द्वारा कृत्रिम स्रोतों का बड़ी झील में जाना बताया है।

इन्द्र ही जल के स्रोत निकालते हैं --

"---- अर्ण: प्रवर्तनीररदो विश्वधेना: "

(ऋ० 4·19·2)

"इन्द्रोऽस्माँ अरदद् वज्रबाहुरपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्"

(ऋ० 3·33·6)

ऋग्वेद(1·116·9) में अश्विनो द्वारा तृषित गोतम ऋषि के लिए एक कूप खोदने का उल्लेख है।

"परावतं ---- सद्माय तृष्यते गोतमस्य" ।

अश्विनो ने ऋचत्क पुत्र शर के लिए नीचे से पीने का जल ऊपर खींचा-

"शरस्यचिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथु: पातवे वा:"

(ऋ०, 1·116·22)

बृहस्पति के लिए पर्वतीय स्रोतों वाले तथा मधुर स्रोतों वाले कूप भी खोदे गए --

"तुभ्यं खाता अवता आद्रिदुग्धा मध्व: श्चोतन्त्यभितो विरप्शम्"

(ऋ० 2·50·3)

रहट का भी वर्णन आता है --

"निराहावान् कृणोतन संवरत्रा दधातन।"

(ऋ०, 1·101·5)

ये कूप सिंचाई के अच्छे साधन हैं और कभी न सूखने वाले हैं --

"सिंचामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम्"

(ऋ०, 1·101·5)

त्रित कूप में गिर पड़े थे, उन्हें बृहस्पति ने निकाला था —

"त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये"

(ऋ0, 1·105·17)

पर्जन्य की कृपा से हमारी पृथ्वी समृद्ध और रक्षित है —

"कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्"

(ऋ0, 5·83·1)

"पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे स नो यवसमिच्छतु।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम्। पर्जन्यः पुरुषीणाम् ।।"

(ऋ0, 7·102·1-2)

मरुद्गण ही मेघों के लाने वाले हैं तथा समुद्र की तरंगें उठाने वाले हैं —

"य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आगहि।

(ऋ0, 1·19·7)

ऋतुएँ चन्द्रमा के अधीन हैं —

"पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम्।

विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्टे ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः।।"

(ऋ0, 10·85·10)

जलों की प्रशंसा निम्न मन्त्र में है —

"आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ विभ्रत्याप इत् ताः।

"इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः"।

(अथर्व0, 3·13·5,7)

अथर्ववेद(6·50) और(7·11-12) में अन्न के विनाशक चूहों को मारने के लिए अश्विनो से प्रार्थना की गई है तथा उसे अत्यधिक ताप से भी बचाने की प्रार्थना की है —

"हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम्।

यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ।।"

(अथर्व0, 6·50·1)

"मा नो वधीर्विद्युतादेव सत्यं मोत वधी रश्मिभि: सूर्यस्य"

(अथर्व0, 7·11)

खाद का वर्णन अथर्ववेद(3·14·3) में मिलता है -

"अस्मिन् गोष्ठे करीषिणी:।"

यह करीष शब्द गोबर के अर्थ में शतपथ-ब्राह्मण(2·1·1·7) में प्रयुक्त है। ऋग्वेद(1·161·10) में भी ऋभुओं को गोबर निकालने वाला कहा गया है — "आनिम्रुच: शकृदेको अपाभरत्" ।

"इदमाप: प्रवहत यत्किंच दुरितं मयि" ।

(ऋ0, 10·9·8)

वन

कृषि के लिए आवश्यक है जल और जल आश्रित है वन पर । वन मिट्टी के कटाव तथा बाढ़ आदि को रोकते हैं। लकड़ी देते हैं। कार्बन डाई आक्साइड का निस्सन करते हैं और आक्सीजन देते हैं। पशु-पक्षियों के लिए भी वन की महती आवश्यकता है। अत: वेद ने इसी उपयोगिता को ध्यान में रखकर कहा है —

"नमो वृक्षेभ्य:" (यजु0, 16·17)

"ओषधीनां पतये नम:" (यजु0, 16·19)

"वनानां पतये नम:" (यजु0, 16·18)

"नमो वन्याय च" (यजु0, 16·34)

"अरण्यानां पतये नम:" (यजु0, 16·20)

"मोषधीर्हिंसी:" (यजु0, 6·22)

"ओषधे त्रायस्व" (यजु0, 4·1)

"सुमित्रिया न आप ओषधय: सन्तु(यजु0, 36·23)

"ओषधय: शान्ति:वनस्पतय: शान्ति:"(यजु0, 36·17)

"भेषजमसि भेषजम्" (यजु0, 3·59)

"माध्वीर्न सन्त्वोषधी:" (यजु0, 13·27)

"दीर्घायुस्त ओषधे खनिता" (यजु0, 12·100)

"त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तय:" (यजु0, 12·101)

"वनस्पतयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु0, 18·13)

"अरण्याश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु0, 18·14)

"ओषधीभ्य: स्वाहा" (यजु0, 22·28)

जो सृष्टि से पूर्व की दशा थी, वही वनों की —

"किं स्विद्वनं क उस वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षु:"

(यजु0, 17·20)

"शतवल्शा रोह सहस्रवल्शा प्ररोह"

दिव्य संसार वृक्ष का वर्णन वेदों में है, जो तीनों लोकों को छूता है —

"देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाख: सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्।

दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज।।"

(यजु0, 28·20)

यजुर्वेद(35·4) में आया है कि अश्वत्थ(अ+श्व+स्थ) वृक्ष पर हे जीवों तुम्हारा निवास है, पर्णसदृश तुम्हारा गृह है। तुम इन्द्रियों के सुख भोग में लगे हो। प्रभु का भी सेवन करो —

"अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।

गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।"

(यजु0, 35·4)

ओषधियों का उत्पादक पर्जन्य है —

"तृतीय: पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा"

(यजु0, 17·32)

ओषधियाँ दिव्य हैं और जीवनदाता हैं --

"अवपतन्तीर वदन्दिव ओषधयस्परि ।

यं जीवमश्न वामहै न स रिष्याति पूरुष: ।।"

(यजु०, 12·91)

ओषधियों का राजा सोम है तथा वह ब्राह्मण के लिए है --

"ओषधय: समवदन्त सोमेन सह राजा ।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ।।"

(यजु०, 12·96)

मैं सारी ओषधियों को ठीक-ठीक जानूं --

"या ओषधी: पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।

मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ।।"

(यजु०, 12·75)

हे मातृरूपा ओषधियों तुम सहस्र शाखा वाली हो, इस रोगी को रोगरहित करो --

"शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुह: ।

अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽगदं कृत ।।"

(यजु०, 12·76)

हे ओषधियों तुम खूब फलो फूलो --

"ओषधी: प्रतिमोदध्वं पुष्पवती: प्रसूवरी: ।

अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुध: पारयिष्णव: ।।"

(यजु०, 12·77)

वृक्षों के माता-पिता का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव"

(अथर्व०, 8·7·2)

"विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ।।"

(अथर्व0, 1·2·1)

"विद्मा शरस्य पितरं मित्रम् ।
विद्मा शरस्य पितरं वरुणम् ।
विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रम् ।
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यम् । (अथर्व0, 1·3·2,3,4,5)

यहाँ कुछ यक्ष्मनाशक, कफ-ज्वरनाशक, केशवर्धक, कुष्ठनाशक और वाजीकरण औषधियों के नाम प्रदत्त हैं जिनका राष्ट्र के आर्थिकविकास में चरम योगदान है --

"अश्वत्थ" (यजु0 12·79), अपामार्ग (यजु0, 35·11), अजशृंगी (अथर्व0, 4·37·2), अर्जुन (अथर्व0, 4·37·4), उदुम्बर (अथर्व0, 19·31·1), ऋषभ (अथर्व, 4·38·5), केशवर्द्धिनी (अथर्व0, 6·21·3), खदिर (यजु0, 3·6·1), गुगल (यजु0, 19·38·1), जंगिड (यजु0, 19·34·1), दर्भ (अथर्व0, 8·7·20), न्यग्रोध (अथर्व0, 4·37·4), पलाश (यजु0, 12·79), पिप्पली (अथर्व0, 6·109·1) पृश्निपर्णी (अथर्ववेद, 2·25·1), पुनर्नवा (अथर्व0, 8·7·8), मधुला (अथर्व0, 5·15·1), सोम (अथर्व0, 8·7·20), शेपहर्षिणी (अथर्व0, 4·4·1), कुष्ठ (अथर्व0, 5·4·1), अरुन्धती (अथर्व0, 6·59·1), अप्सरा (अथर्व0, 4·38·1), असिक्नी (अथर्व0, 1·23·3), कृष्णा (अथर्व0, 8·7·1), पाठा (अथर्व0, 2·27·4) इत्यादि। कुछ अन्य वर्णन भी मिलते हैं --

"तन्नो राय: पर्वतास्तन्न आपस्तद् रातिषाच ओषधीरुतद्यौ:।
वनस्पतिभि: पृथिवी सजोषा ---- ।"

(ऋ0, 7·34·23)

"शं नो ओषधीर्वनिनो भवन्तु" (ऋ0, 7·35·5)

"अरण्यानी सूक्त" (ऋ0, 10·146·6)

महावनों का वर्णन ऐतरेय-ब्राह्मण(3·44) तथा शतपथ-ब्राह्मण (13·3·7·10) में द्रष्टव्य हैं।

यातायात

आर्थिक प्रचार-प्रसार के लिए यातायात का बहुत महत्त्व है। वेद में कहा है --

"समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ।
स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहा"

(यजु०, 6·21)

"पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्"

(यजु०, 17·67)

वृषभ-घोड़े और रथादि पृथ्वी पर यातायात के साधनों में आते हैं --

"वोढाऽनड्वान् आशुः सप्तिः रथेष्ठाः"

(यजु०, 22·22)

"अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयं स्वस्तये"

(यजु०, 35·13)

"हिरण्यशृङ्गो अयो अस्य पादा मनोजवा"

(यजु०, 29·20)

बिना घोड़ों का तीन चक्र वाला रथ निम्न मन्त्र में हैं --

"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः"

(ऋ०, 4·36·1)

वेद में सामुद्रिक व्यापार का भी वर्णन है। यातायात के साधनों में शताधिक चप्पे वाली नौकाओं - दिव्य नौकाओं, पाल नौकाओं का वर्णन मिलता है --

"सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्रां स्वस्तये" ।

(यजु०, 21·7)

"सुत्रामाणं पृथिवीं --- दैवीं नावं सरित्रमनागसमस्रवन्तीनामारुहेमा स्वस्तये" (यजु०, 21·6)

"शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्" (ऋ०, 1·116·5)

"युवं भुज्युं समुद्र आ रजस: पार ईङ्खितम्।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ।।"

(ऋ०, 10·143·5)

"--- वेद नाव: समुद्रिय:" (ऋ०, 1·25·7)

"आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम्"

(ऋ०, 7·88·3)

"यदश्विना ऊहतु: भुज्युमस्तं शतारित्रा नावमातस्थिवांसम्"

(ऋ०, 1·116·5)

"राय: समुद्रांश्चतुरो स्मभ्यं सोम विश्वत:"

(ऋ०, 9·33·6)

"युवमेतं चक्रथु: सिन्धुषु प्लवमात्मवन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम्"

(ऋ०, 1·182·5)

ऋग्वेद(6·58·3) में हमें अन्तरिक्ष एवं समुद्र के भीतर चलने वाली नौकाओं का वर्णन मिलता हैजैसा आधुनिक युग में द्रष्टव्य ही है ---

"यास्ते पूषन् नावो अन्त: समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छमान: ।।"

(ऋ०, 6·58·3)

अन्तरिक्ष परिवहन जैसा आजकल होता है उस समय भी वर्णन में आता है। यथा ---

"वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेदनाव: समुद्रिय:"

(ऋ०, 1·25·7)

"उर्वन्तरिक्षमन्वेमि" (यजु०, 1·7)

"दिवंगच्छ स्व: पत" (यजु०, 12·4)

"श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ"

(यजु०, 4·34)

"सुपर्णो गरुत्मान्दिवं गच्छ ---- "।

(यजु०, 12·4)

"इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षांस्यपहंस्यग्ने ।
ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मु: प्रथमजा: पुराणा:।

(यजु०, 18·52)

"ईर्मान्तास: सिलिकमध्यमास: सं शूरणासो दिव्यासो अत्या:।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वा: ।।"

(ऋ०, 1·163·10)

"आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभि: सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ।।

(ऋ०, 1·163·6)

"अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेनवयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपं स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ।।"

(यजु०, 18·51)

मार्गों के स्वामी और रक्षकों को नमस्कार है --

"पथीनां पतये नम:" (यजु०, 16·17)

"ये पथां पथि रक्षय ऐलबृन्दा आयुर्युध:" ।

(यजु०, 16·60)

"अध्वनामाध्वपते प्रमा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन्पथि देवयाने भूयात्"

सिक्के

एक प्रकार का सिक्का निष्क था। वेद में निष्कग्रीव(ऋ0,5•19•3) में मिलता है।

"निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयु:" ।

(ऋ0,5•19•3)

विनिमय-कार्य गायों से भी होता था। पंचविंश-ब्राह्मण में चाँदी के निष्क का उल्लेख है (17•1•14)। ऋग्वेद(1•126•2) में कक्षिवान् ऋषि ने एक दानी राजा से सौ निष्क तथा सौ घोड़े पाने की बात कही है --

"शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान् प्रयतान् सद्य आदम्"

(ऋ0, 1•126•2)

"एव इथाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रज:"

(अथर्व0, 20•127•3)

ऋण

पणि लोग उस समय व्यापार के लिए प्रसिद्ध थे "पणिर्वणिक् भवति" (नि0, 2•17) तथा अधिक ब्याज पर ऋण दिया करते थे। इसीलिए उन्हें बेकनाट(सूदखोर) कहा जाता था --

"इन्द्रो विश्वान् बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणींरभि"

(ऋ0, 8.66.10)

निरुक्त में(6•27) बेकनाट उन सूदखोरों का नाम है जो अपने रुपयों को दुगुना बनाने का काम करते थे - "बेकनाटा: खलु कुसीदिनो भवन्ति द्विगुणकारिणा वा द्विगुणदायिनो वा द्विगुणं कामयन्ते वा।" अथर्ववेद(6•46•3) में ऋण के आठवें भाग(शफ) और सोलहवें भाग(कला) को चुकाने की बात मिलती है --

"यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।

एवा दु:ष्वप्न्यं सर्वं द्विषते संनयामसि ।।"

ऋग्वेद के एक मन्त्र में दूसरे के द्वारा उपार्जित धन से जीने के लिए ग्लानि प्रकट करते हुए ऋषि ऋण-परिशोध की कामना करते हुए कहते है कि मैं ऋण से इतना दबा हूँ कि बहुत सी उषाएँ मेरे लिए उषाएँ ही नहीं हैं —

"पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नु भूयसी रुषास आनो जीवान् वरुण तासु शाधि ।।"

(ऋ0, 2·28·9)

अथर्ववेद(6·117·1-3) में अनृण काम होने की प्रार्थना की गई है-

"इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान्।
"इहैव सन्त: प्रतिदद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो निहराम एनत्।
अपमित्य धान्यं यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ।"
"अनृणा अस्मिन्ननृणा: परस्मिन् तृतीये लोके अनृणा: स्याम।
ये देवयाना: पितृयाणाश्च लोका: सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम।"
"ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्तमेति" ।

(ऋ0, 10·34·10)

विविध व्यवसाय

परमात्मा की इस सृष्टि को देखने से हमें लगता है कि इस सृष्टि का कर्ता स्वयं बहुत परिश्रमशील है, वह त्वष्टा है, विश्वकर्मा है। उससे हमें उद्योग करने की प्रेरणा मिलती है —

"बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य"।

(यजु0, 10·28)

मेरी भुजाएँ बल वाली हैं तथा दोनों हाथ कर्म से युक्त हैं —

"बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्मवीर्यम्"

(यजु0, 20·7)

मेरा हाथ ऐश्वर्यवान् है तथा दूसरा हाथ अति ऐश्वर्य-युक्त है —

"अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तर:"

(अथर्व0,4·13·6)

मेरे दाएँ हाथ में कर्म-सामर्थ्य है और बाएँ हाथ में विजय —

"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहित: ।

गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ।।"

(अथर्व0,7·50·8)

साहस के साथ कार्य करने से विस्मयकारी फल मिलता है —

"सहसस्पुत्रो अद्भुत:" (यजु0,11·70)

मेरी अंगुलियों में, मेरे अंगों में मोद और आमोद का साधन जुटाने की सामर्थ्य है —

"मोदा: प्रमोदा अङ्‌गुलीरङ्‌गानि मित्रं मे सह:"

(यजु0, 20·6)

वेद में अनेकानेक उद्योग-धन्धों का उल्लेख है। वेद प्रत्येक कर्म को महान् मानकर उनके करने वालों को नमस्कार करता है। यथा —

"पशूनां पतये नम:" (यजु0, 16·17)

"मनो मन्त्रिणे वाणिजाय" (यजु0,16·19)

"वनानां पतये नम:" (यजु0, 16·18)

"अरण्यानां पतये नम:" (यजु0, 16·20)

"अश्वपतिभ्यश्च वो नम:" (यजु0,16·24)

"मृगयुभ्यश्च वो नम:" (यजु0, 16·27)

"नमो भवाय च" (यजु0, 16·28)

"नमो द्वीप्याय च" (यजु0, 16·31)

"नमो उत्याय च" (यजु0, 16·33)

"आहनन्याय च"	(यजु0, 16·35)
"नमो वेशन्ताय च"	(यजु0, 16·37)
"अवध्र्याय च"	(यजु0, 16·38)
"नमो वास्तुपाय च"	(यजु0, 16·39)
"नमस्ताराय "	(यजु0, 16·40)
"नम: केन्याय च"	(यजु0, 16·42)
"नम: कपर्दिने च"	(यजु0, 16·43)
"नम: गह्वरेष्ठाय च"	(यजु0, 61·44)
"नम: सुव्यार्य च"	(यजु0, 16·45)
"धनुष्कृद्भ्यश्च वो नम:"	(यजु0, 16·46)
"नारकाय वीरहणम्"	(यजु0, 30·5)
"गीताय शैलूषम्"	(यजु0, 30·6)
"मृत्यवे मृगयुम्"	(यजु0, 30·7)
"सर्पदेवजनेभ्यो प्रतिपदम्"	(यजु0, 30·8)
"मर्यादाये प्रश्नविवाकम्"	(यजु0, 30·10)
"आध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम्"	(यजु0, 30·11)
"प्रकामाय रजयित्रीम्"	(यजु0, 30·12)
"शीलायाञ्जनीकारीम्"	(यजु0, 30·14)
"साध्येभ्यश्चर्मम्नम्"	(यजु0, 30·15)
"पर्वतेभ्य: किम्पूरुषम्"	(यजु0, 30·16)
"तुलाये वाणिजम्"	(यजु0, 30·17)
"अवरस्पराय शङ्खध्मम्"	(यजु0, 30·19)
"आनन्दाय तलवम्"	(यजु0, 30·20)
"अन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम्"	(यजु0, 30·21)

ऋग्वेद(9·112·1,3) में कहा है -बढ़ई टूटी वस्तु की, वैद्य रोगी की, ऋत्विक् सोमाभिषवकर्ता की तथा कर्मार धनाढ्य की इच्छा करता है। मैं कारु (शिल्पी) हूँ, मेरे पिता वैद्य और माता जाँता पीलने वाली है हम नाना विचारों वाले हैं, नाना उद्यम वाले हैं --

"नानानं वा उनो धियो विव्रतानि जनानाम् ।
तक्षाऽरिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव।
कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवो अनु गाइव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव।"

लोहार

इसका वर्णन ऋग्वेद(10·72·2) में मिलता है --

"ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्"

अथर्ववेद(2·5·6) में भी त्वष्टा का वर्णन आता है --

"त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।

अथर्ववेद(3·5·6) में भी कर्मार का उल्लेख मिलता है --

"ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः" ।

ऋग्वेद(4·2·17) में देवों द्वारा मनुष्यों को धातु की तरह तपाने का वर्णन है --

"अयो न देवा जनिमा धमन्तः"

ऋग्वेद(9·112·2) में "कार्मारो अश्मभिर्द्युभिः ---- परिस्रव" वर्णन है।

लोहार निम्न वस्तुएँ बनाता था --

खनित्र(फावड़ा - अथर्व0, 4·7·5-6); दात्र(ऋ0, 8·78·10), सृणि- हँसिया(ऋ0, 10·101·3), "सृण्यः पक्वमेयात्" । फाल (ऋ0,4·57·8, 10·117·7)। ये सब वस्तुएँ कृषि के लिए थीं। अन्य चीजें भी यथा -- असि(ऋ0, 1·162·20), परशु (ऋ0, 1·127·3), 7·104·21, 10·28·8;

अथर्व0, 3·19·4, 7·28·1), अयस्मय (अथर्व0, 7·115·1); पवीर (ऋ0, 10·60·3); वाशि, ऋष्टि, इषु (ऋ0, 5·57·2); अयसो धारम् (ऋ0, 6·47·10), पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानि: (ऋ0, 6·46·11), वर्मिण: (ऋ0, 6·27·6, 4·53·2); शिप्र (ऋ0, 5·54·11); छादय: (ऋ0, 5·54·11); रेजर (अथर्व0, 6·68·1); कृष्णायसम् (छा0उ0, 6·1·6), "अयोजाल: ---- अयस्मये: पाशे: (अथर्व0, 19·66·1); द्रुपदा: (अथर्व0, 19·58·4, 6·63·3)।

अथर्ववेद(19·66·1) में असुरों को लौहकर्म में निष्णात कहा गया है तथा आसुरी विद्या का वर्णन किया गया है --

"अयोजाला असुरा मायिनो यस्मये: पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।"

<u>बुनकर</u>

ऋग्वेद(10·26·6) में वासोवाय का वर्णन मिलता है। ताने-बाने का वर्णन ऋग्वेद(6·9·2) में मिलता है -- "नाहं तन्तुं न विजानाम्योतुं नयं वयन्ति समरे तमाना"।

वाजसनेय संहिता(19·80) में मयूख (खूँटी) की सहायता से वस्त्र का टागना बताया गया है। ढरकी को तसर कहते हैं(ऋ0, 10·130·2)। करघे को वेमन् कहते हैं। अथर्ववेद(10·7·42) में रात्रि और दिन(ताना-बाना) दो बहने हैं, जो वर्षरूपी वस्त्र बुनकर तैयार करती हैं --

"तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयत: षण्मयूखम्।"

(अथर्व0, 10·4·42)

"इमे मयूखा उपतस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे।"

(अथर्व0, 10·4·44)

ऋग्वेद में गान्धार, परुष्णी और सिन्धु नदी का प्रदेश बढ़ियाँ ऊन के लिए प्रख्यात था। परुष्णी ऊन का वर्णन एक मन्त्र में है --

"उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसन्त शुन्ध्यव:"

"स्वश्वा सिंधु: सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवति: सीममावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ।।"

(ऋ0, 10·75·8)

गान्धार की भेड़ अपने ऊन के लिए प्रसिद्ध थीं —

"सर्वाहमस्मिरोमशा गंधारीणामिवाविका"

(ऋ0, 1·126·7)

"ऊर्णा सूत्रेण कवयो वयन्ति" (यजु0, 19·80)

एक जगह ऋग्वेद(9·86·47) में भेड़े और अवि से बने जाली द्वारा सोमरस को छानने का उल्लेख है —

"मेष्य: पुनानस्य संयतो यन्ति रंहय:"

ऊन कातने का काम प्राय: स्त्रियाँ करती थीं (शत0, 12·7·2·11)

शतपथ-ब्राह्मण(5·2·1·8) में कौशेय वस्त्रों का उल्लेख है।

ऋग्वेद(2·32·4) में सीने का वर्णन मिलता है।

"सीव्यत्वप: सूच्याच्छिद्यमानया —— "।

ऋग्वेद(2·3·6) में रात्रि और उषा द्वारा बुनने का वर्णन है —

"—— उषासानक्ता वय्येव रण्विते तन्तुं ततं संवयन्ती समीची——।"

ऋग्वेद(5·47) में माताओं का पुत्रों के लिए वस्त्र वयन का वर्णन है —

"वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति" ।

रैगोजिन, वैदिक इण्डिया, पृ0 306 पर लिखते हैं —

"The Aryan settlers of Northern India had already begun, at an amagingly early period, to excel in the manufacture of the delicate tissue which has ever been and is to this day doubtless in incomparably greater perfection one of their industrial glories, a fact which implies cultivation of the cotton plant or tree, probably in Vedic times already."

अथर्ववेद(13·3·1) में सूर्य को तीनों लोकों का वस्त्ररूप द्रापि पहनने वाला कहा है --

"यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते" ।

"बिभ्रद् द्रापिं हिरण्मयम्" (ऋ0, 1·25·13)

अथर्ववेद(14·1·8) में प्रतिधि को दुल्हन का वस्त्र कहा है --

"स्तोमा आसन् प्रतिधय:" ।

ऋग्वेद(7·18·17) में सिले वस्त्रों "पेशस्" का वर्णन है(ऋ0, 2·3·6) तार्प्य का वर्णन (Silk or linen)(अथर्व0, 18·4·31; तै0सं0, 2·4·11·7 तै0ब्रा0, 1·3·7·1; शत0, 5·3·5·20; कात्या0श्रौ0सू0, 15·5·7; शांखा0 श्रौ0सू0, 16·12·19 में मिलता है। ऊनी वस्त्रों का वर्णन मै0सं0 3·11·9 कौ0सं0, 38·3 तथा बृ0उ0, 2·3·6 में(पाण्ड्वाविकम्) में मिलता है। अथर्ववेद 14·2·66 तथा 14·1·25 में कम्बल और शामुल्य(ऊनी कमीज) का वर्णन मिलता है।

धातु उद्योग

शतपथ-ब्राह्मण(5·4·1·2) में लौह और अयस् का वर्णन आया है-

"एतदयो न हिरण्यं यल्लोहायसम्"।(यजु0, 18·13) में नाना धातुओं का वर्णन है -

"हिरण्यं मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे
त्रपुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" ।

अयस् को बहुत तपाने पर वह स्वर्ण-तुल्य हो जाता है --

"तस्मादयो बहुध्मातं हिरण्यसंकाशमिवेव भवति"

(शत0, 6·1·3·5)

ऋग्वेद(10·101·8) में अयस् द्वारा निर्मित नगर का वर्णन है--

"पुर: कृणुध्वमायसीरधृष्टा ---- "।

वर्म और वज्र का भी वर्णन आता है --

"व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि"

(ऋ0, 10·101·8)

वाशी नामक अस्त्र को आयसी: कहा है(ऋ0,8·24·3)

"वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुवि:" ।

यजुर्वेद(19·27) में कुम्भी, स्थाली आदि पात्रों का उल्लेख है --

"कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिस्थालीराप्नोति"

(यजु0, 19·27)

सिन्धु नदी को स्वर्णोपलब्धता के आधार पर हिरण्ययी कहा है (ऋ0, 10·75·8)।

बढ़ई

वेद में इसे तक्षा "त्वष्ट्र" आदि नामों से भी वर्णित किया गया है। अथर्ववेद(12·3·33) में उसे स्वधिति (वसूला) बनाने वाला कहा गया है,

"त्वष्टेव रूपम् सुकृतं स्वधित्यैना ---- ।"

तक्षा शब्द अनेक वेदों में प्रयुक्त हुआ है। यथा अथर्ववेद(10·6·2) में "तक्षा हस्तेन वास्या ---- "।

यजुर्वेद(16·27) में तक्षा को कुलाल, कर्मार, रथकार और निषदों के साथ ही नमस्कृत किया गया है --

"नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च ---- वो नमः ।

वह रथ और अनस्(शकट) भी बनाता था।

"हे रथस्य खेऽनसः हे युगस्य शतक्रतो"

(ऋ0, 8·91·7)

अनस् शब्द का प्रयोग कौषीतकि उपनिषद(3·8) तथा शतपथ-ब्राह्मण (1·1·2·5) में हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की आसन्दी (कुर्सी, चौकी) भी तक्षा निर्मित करता था --

"आसन्दी रूपं राजासन्धे वेद्यै कुम्भी सुराधानी"

(यजु0, 19·16)

"सोऽब्रवीदासन्दीं मे संभरन्त्विति, तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन्"

(अथ0, 153·2·3)

शकट शब्द ऋग्वेद(10·146·3) में मिलता है --

"उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति" ।

निरुक्त(6·22) तथा छान्दोग्य उपनिषद्(4·1·8) में भी शकट का वर्णन है। ऋग्वेद(1·61·4) में "रथम् न तष्टेव" तथा ऋग्वेद(1·116·5) में "नावेव" द्वारा नाव और रथ बनाने का वर्णन है जिन्हें वह कुलिश(ऋ0, 3·2·1) औजार से बनाता था, "रथम् न कुलिशः समृण्वति"।

ऋग्वेद(1·105·18) में तक्षा के झुककर काम करने का वर्णन है, जो कष्टकर था -- "तष्टेव पृष्ट्यामयी"। याज्ञिक पात्र पलाश से बनते थे। द्रोण का वर्णन ऋग्वेद(6·2·8 तथा 1·84·18) में भी है। घी वाली स्रुवा का(ऋ0, 1·116·24) में वर्णन है, "सोममिव स्रुवेण"। ऋग्वेद(7·55·8) में तल्प, प्रोष्ठ और वह्य बनाने का वर्णन है, "प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्या-

स्तल्पशीवरी:"। ताल्प का वर्णन शतपथ-ब्राह्मण(12•1•6•2) में है। वह्य अधिक आरामदेह होता था (अथर्व0, 4•20•3)। अथर्ववेद(18•5) में स्रुक्, स्रुवा, ध्रुवा, जुहू और उपभृत् का वर्णन है जिन्हें तक्षा तैयार करता था। तक्षा यूप भी तैयार करता था "सद्भ्राद् यूपम्"(ऋ0, 5•2•7)। वह स्फ्य विघन, पर्शु और परेशु भी तैयार करता था (तै0सं0, 3•2•4•1; अथर्व0, 7•28)।

ऋग्वेद(10•42•2) में कोश (   ) का भी वर्णन आता है, "कोशम् न पूर्णम् वसुना"। अथर्ववेद(9•6•16-17) में शूर्प, कलछुल तथा घरेलू सामानों का वर्णन है। वीणा, गर्गर, गोधा तथा बकुर आदि वाद्यों का भी वही निर्माण करता था (ऋ0, 8•69•9, 1•117•21)। यह सब काम वह सम्भवत: यन्त्र से न करके हाथों से ही सम्पन्न करता था। वेद में वनों के काटने का भी वर्णन है जिनसे वह कच्चा माल प्राप्त करता था, "बना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्" (ऋ0, 10•28•8)। ऋग्वेद(1•127•3) में आए द्रुहन्तर शब्द का अर्थ विद्वान् बढ़ई भी करते हैं। ग्रामीण परिवेश के कारण तथा कृषिकर्म के उपयोगी वस्तुओं के निर्माण के कारण उसे आदर से देखा जाता था, "तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नम:"(तै0सं0, 4•5•4•2) वैदिक काल में घर खम्भों पर आश्रित होते थे, "दादर्थ पृथिवीमभितो मयूखे:" (ऋ0, 7•99•3) तथा "स्थूणेव जनान् उपमिद्यन्थ" (ऋ0, 1•59•1)। अथर्ववेद (9•3•8) में अक्षु तथा ओपश का जो वर्णन है उन्हें भी तक्षा ही निर्मित करता था। उसकी तुलना कवि से की गई है — "रथम् न तष्टेव तत्सिनाय"। बोधायन श्रौतसूत्र में इसका वर्णन कुछ इस प्रकार है, "नेदीय एनमेते कर्मकृत्त उपसंगच्छन्ते तक्षणश्च रथकारश्च मयकृतश्च कुलालश्च इया: कर्मार: नखकृत: सप्तमे"। रथ शिंशपा वृक्ष से बनते थे (ऋ0, 3•53•19) लेकिन आणि (   ) खदिर वृक्ष से बनती थी। रथ के पहिए शाल्मली वृक्ष के बने होते थे(ऋ0, 10•85•20)। अथर्ववेद(3•5•6) में उन्हें बहुकुशल कहा है।

चर्म उद्योग

ऋग्वेद(8•5•38) में चर्मम्ना का उल्लेख आता है। ऋग्वेद(6•53•9) में चर्म को भिगोने का वर्णन मिलता है, "चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम" । सूर्य देव को चमड़े के टुकड़े के हटाने के समान अन्धतमस् का निवारक बताया गया है - "चर्मेव नः समविव्यक् तमांसि"। (ऋ०, 7•63•1)। ऋग्वेद में चमड़े की अनेक वस्तुओं का वर्णन है। यथा —— धनुष की प्रत्यन्चा (ऋ०, 6•75•11), लगाम (ऋ०, 6•46•14), कोड़ा (ऋ०, 6•53•9), चमड़े की रस्सी(ऋ०, 6•47•26)। सोमरस हेतु चमड़े का पात्र (ऋ०, 8•1•17, 9•66•28-29), मधुपात्र(ऋ०,8•5•19), दधिपात्र(ऋ०, 6•48•18), सुराधानी (ऋ०,1•191•10)। रथों पर चमड़े मढ़े जाते थे, "गोभिः सन्नद्धो सि वीलयस्व, गोभिरावृतम् इन्द्रस्य वज्रम् हविषा रथं यज"(ऋ०, 6•47•26-27), अंसत्र का भी वर्णन है, "अंसत्र कोशम् सिञ्चत अनुपानम्" (ऋ०, 10•101•7)। ऋग्वेद(5•61•2-3) में लगाम, काठी तथा मरुत् के कोड़ों का वर्णन है, "क्व वो श्वाः क्व अभीशवः —— "।

दुन्दुभि का वर्णन(ऋ०, 6•47•29) में है "स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैः"। शतपथ-ब्राह्मण(2•1•1•9-10) में चमड़ों को गीला करके "शंकुभिः" द्वारा फैलाने का भी वर्णन है। ब्रह्मचारी काले मृगचर्म को धारण करता था (अथर्व०, 11•5•6) "कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः" । शतपथ-ब्राह्मण (3•9•1•12) में ब्राह्मण पुजारी द्वारा वज्र चर्म धारण करने का वर्णन है। आसन्दी को ढकने का काम चर्म से होता था(शत०, 5•2•1•22 और 12•8•3•4-10)। व्याघ्रचर्म भी आसन्दी को ढँकने में प्रयोग होता था(शत०,5•4•4•1) वराहोपानह् राजसूय यज्ञ के अभिलाषी को पहनाया जाता था(बौ०श्रौ०सू०, 12•12)। तैत्तिरीय संहिता(5•4•4•4) में ब्रह्मचारी को काले मृगचर्म का जूता पहनने को कहा है। पराशर गृह्यसूत्र(2•5•17-19) में ब्राह्मण को मृगचर्म

का अधिवास, क्षत्रिय को चीतल का तथा वैश्य को अज या गाय का चर्म-अधिवास पहनने का विधान है। ("ऐणेयमजिनमुत्तरीयम् ब्राह्मणस्य रौरवम् राजन्यस्य आजम् गव्यम् वा वैश्यस्य")। बोधायन श्रौतसूत्र (15•16) में घी, मधु, तैल और अनाज आदि चर्म के थैले में रखने का वर्णन आता है, "शतम् घृतम् चर्माणि शतम् मधु चर्माणि शतम् तण्डुल चर्माणि शतम् पृथुक चर्माणि शतम् लाजा चर्माणि शतम् करंभ चर्माणि शतम् धान चर्माणि"।

आश्वलाय गृह्यसूत्र में (3•12•11) हस्तत्राण का उल्लेख आया है, जो धनुर्धर की डोरी खींचने से होने वाले क्षत से रक्षा करता था।

कुम्हार

ऋग्वेद(7•104•21) में आता है कि इन्द्र ने शत्रुओं को मिट्टी के बर्तन की तरहचकनाचूर किया --

"अभीदु शक्रः ---- पात्रेव भिन्दन् सत एति रक्षसः।"

ऋग्वेद(1•191•14) में "उदकम् कुंभिनीरिव" वर्णन मिलता है। ऋग्वेद(3•32•16) में "शतम् कुम्भान् असिञ्चतम् मधूनाम्" वर्णन मिलता है। कलश का वर्णन भी मिलता है। ऋग्वेद(1•162•13) में "या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि" वर्णन मिलता है। मृण्मयी उखा (Cooking Pot) का वर्णन वाजसनेय संहिता(11•59) तथा तैत्तिरीय संहिता(4•1•5•4) में मिलता है। कात्यायन श्रौतसूत्र(2•3•5) में "मार्तिकीरभिचार ब्रह्मवर्चस् प्रतिष्ठाकामा यथालंब्धम्" वर्णन मिलता है।

बोधायन धर्मसूत्र(15•14) में राजा द्वारा कुम्हारों को अश्वमेधार्थ ईंटें और पात्र बनाने के लिए बुलाया गया है तथा मिट्टी के पात्र की शोधन प्रक्रिया भी यहाँ बतायी गयी है।(बौ०ध०सू०, 1•6•14•1-9)।

अन्य व्यवसाय

ऋग्वेद(10·142·4) में नाई के दाढ़ी आदि बनाने का वर्णन है-- "वप्तेव श्मश्रु"। अथर्ववेद(7·2·17) में भी नाई का वर्णन है - रस्सी बँटने का वर्णन(ऋ0, 1·162·8) में है।

"यद् वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य"।

रुद्र को वैद्यों में श्रेष्ठ कहा गया है (ऋ0, 2·33·4)

"भिषक्तमम् त्वा भिषजं शृणोमि" ।

इन्द्रदेव को घावों को भरने वाला तथा चोट लगे हिस्से को ठीक करने वाला कहा है --

"य ऋते चिदभिश्रिष: पुरा जत्रुभ्य आतृद: ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुन: ।।"

(ऋ0, 8·1·12)

असुर स्त्री को कुष्ठ रोग की औषधि बनाने वालों में प्रथम कहा है --

"आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम्"

(अथर्व0, 1·24·1)

दस्त की दवा अथर्ववेद(2·3) में है --

"उपाजिका --- आस्रावस्य भेषजम्"।

पीलिया की दवा अथर्ववेद(1·22·4) में वर्णित है। कृमियों से ही रोग होते हैं --

"ये क्रिमय: पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्त:।
ये अस्माकं तन्वमाविविशु: सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रीमीणाम् ।"

(अथर्व0, 2·31·5)

"इन्द्रस्य या महीदृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन्दृषदा खल्वाँ इव ।।"

(अथर्व0, 2·31·1)

"ब्रह्मणाग्नि: संविदानो रक्षोहा बाधतामित: ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ।।"
(अथर्व0, 20·96·1)

"यत्रौषधी: समग्मत राजान: समिताविव ।
विप्र: स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातन: ।।"
(ऋ0, 10·97·6)

इसी प्रकार नावों, जहाजों, वायुयानों तथा रथ-निर्माण और यन्त्र-निर्माण का वर्णन भी वेदों में छिटपुट पाया जाता है। गृह-निर्माण के भी वर्णन यथा --

"इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्निमिनोतु प्रजानन्"
(अथर्व0, 3·12·4)

"इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालाम् "
(अथर्व0, 3·12·1)

"आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणी: ।
उत्सो वा तत्र जायतां हृदो वा पुण्डरीकवान्।।"
(अथर्व0, 6·106·1)

अर्थ के बारे में कुछ वैदिक सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। इसके पूर्व वेद में छायाचित्र-व्यवसाय का भी वर्णन देखें-

"यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतम् सह: ।।"
(ऋ0, 5·44·6)

"नोधर संभरणं वसूनाम्" (ऋ0, 7·25·2), रयिं धत्त शतग्विनं (ऋ0, 4·49·4), "द्युम्नमधि रत्नं च धेहि"(ऋ0, 7·25·3), "श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्"(ऋ0, 10·45·5), "अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा:(ऋ0, 10·47·7-8), "परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्ण: नित्यस्य राय: पतय: स्याम (ऋ0, 7·4·7); स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति

(ऋ0, 10·63·16), यम्निर्णिजा रेक्णस्य प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति (ऋ0, 1·162·2), "सुदामं तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दा:" (ऋ0, 6·20·7), "अमस्य दायं विभजत्येभ्य: (ऋ0, 10·114·10), "त्वया जेष्म हितं धनम्" (ऋ0, 6·45·12), "वि त्वा नर: पुरुत्रा सपर्य पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त" (ऋ0, 1·70·5), "अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीं" (अथर्व0, 9·4·21), "रयिं च पुत्रान् च अदात् अग्नि:" (ऋ0, 10·85·41), "रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय" (ऋ0, 7·95·2), "राष्ट्रं रोह द्रविणं च रोह"। (वेद), "अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते" (ऋ0, 10·125·2)।

चतुर्थ अध्याय

वेदों में राष्ट्र की राजनैतिक स्थिति

वेदों में राष्ट्र की राजनैतिक स्थिति

अथर्ववेद(8•10) में आता है कि सृष्टि में पहले विराज की स्थिति थी, अर्थात् कोई राजा न था। धीरे-धीरे वह विराज्, गार्हपत्य, आह्वनीय, दक्षिणाग्नि, सभा, समिति और आमन्त्रण की अवस्था को प्राप्त हुआ। आमन्त्रण यहाँ सभा और समिति से भी ऊँची संस्था है। विराज् वर्गविहीन समाज है जबकि आमन्त्रण राज्य की उत्क्रान्त अवस्था है(Final stage of development) जिसमें विभिन्न देशों को आमन्त्रित किया जाता है।

"विराड् वा अट्ठ इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति।

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत्। गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद।

सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत्। यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद।

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्। यज्ञर्तो दक्षिणीयोवासतेयो भवति य एवंवे

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत्। यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद।

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत्। यन्त्यस्य समितिं समित्यो भवति य एवं वेद।

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत्। यन्त्यस्यामंत्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद।

ऐतरेय-ब्राह्मण(1•14) के अनुसार देवों की पराजय का मुख्य कारण उनका राजा न होना ही था। "ते देवा अब्रुवन् अराजतया वै न जयन्त राजानम् करवामहा इति तथेति ते सोमम् राजानमकुर्वन्। ते सोमेन राज्ञा सर्वा दिशोऽजयन्"। ऋग्वेद में प्रत्येक जन का आधिपत्य राजा या सम्राट् के साथ में ही होता था समिति भी राजपद का निर्माण करती थी —

"ध्रुवायते समितिः कल्पतामिह" (ऋ0, 10·173·1)

प्रजा (विशः) ही राजा का वरण करती थी --

"त्वां विश्नो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि ।।"
(अथर्व0, 3·4·2)

राजा के वरण के सम्बन्ध में अथर्ववेद के निम्न मन्त्र बहुत महत्त्व के है --

"विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ।
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।।
इन्द्रेवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय" ।
(अथर्व0, 6·87·1-2.

"ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ।।"
(अथर्व0, 6·88·1-2)

राजा संकल्प करता था -

"अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः"
(अथर्व0, 3·5·2)

यजुर्वेद(9·40) में राजा को इन्द्रों का भी इन्द्र होने के लिए प्रतिस्पर्धा से विरहित, देवगण ही करते हैं --

"इमन्देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय ।
महते ज्येष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्राय" ।।
(यजु0, 9·40)

राज्याभिषेक के अवसर पर उसे प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी --

"यां च रात्रिमजायेऽहं यां च प्रेतास्मि तदुभयमन्तरेण इष्टापूर्तं मे लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीथा यदि ते द्रुह्येयमिति" । (ऐ0ब्रा0, 8·3·15)

शतपथ-ब्राह्मण(5·2·1·25) में कहा है कि राज्यपद ग्रहण करने के समय उसे यह ध्यान रखना पड़ता था कि --

"इयं ते राट् ---- यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुण: ।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ।।"

राजा को कर लेने का एकमात्र अधिकारी (ऋ0, 10·173·6) में कहा है --

"ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभिसोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्र: केवलीर्विश: बलिहृतस्करत् ।।"

राजा प्रजा का अनुचलन करने वाला होता है --

"स विशोऽनुव्यचलत्" (अथर्व0, 15·9·1)

राष्ट्र में राजा भृत्य है और प्रजा स्वामी -

"ऊर्जे त्वा बलाय त्वा ---- राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय"

(अथर्व0, 19·37·3)

धीवान्, रथकार, कर्मार, सूत और ग्रामणी को राजा बनाने वाला(राजकृत:) कहा गया है --

"ये धीवानो रथकारा: कर्मारा ये मनीषिण: ।

(अथर्व0, 3·5·6)

"ये राजानो राजकृत: सूता ग्रामण्यश्च ये"।

(अथर्व0, 3·5·7)

वरेण्य राजा को राजकृत राजा लोग एक मणि देते थे --

"अभीवर्तेन मणिनायेनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ।
अभीवर्त्तो अभिभव: सपत्नक्षयणो मणि: ।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्य: पराभुवे ।

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ।"

(अथर्व0, 1•29•1,4,6)

अथर्ववेद(4•8•4) में आता है – हे राजा तू व्याघ्र है, तू इस व्याघ्रचर्म पर बैठकर सब ओर पराक्रम दिखा, सब लोग तुझे चाहें --

"व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे विक्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ।।

राजा को जलों के वर्चस् से सिंचित किया जाता था --

"तासां त्वा सर्वासामपामभिषिञ्चामि वर्चसा"

(अथर्व0, 4•8•5)

"विशि राजा प्रतिष्ठितः" (वाज0सं0, 20•9)
"ता ईम् विशो न राजानं वृहाना"(ऋ0, 10•124•8)
"राष्ट्राणि वै विशः" (ऐत0ब्रा0, 8•26)
"मा जीवेभ्यः प्रमदः" (अथर्व0, 8•1•7)
"प्रियः प्रजानां भूयासम्" (अथर्व0, 17•1•30)
"राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य" (अथर्व0, 13•1•9)
"विशो न राजानं वृणानाः" (ऋ0, 10•124•8)
"इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय"

(अथर्व0, 6•87•2)

"येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्"
तेनेमां ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन।"

(अथर्व0, 19•24•1)

"तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनुमन्यतामिदम्"

(अथर्व0, 4•8•1)

"उदेहि वाजिन्यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्रविश सूनृतावत्।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु।।"

(अथर्व0, 13·1·1)

"शकधूमं नक्षत्राणि यद्राजानमकुर्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ।"

(अथर्व0, 6·128·1)

"ये ग्रामा: यदरण्यं या: सभा अधिभूम्याम् ।
ये संग्रामा: समितयस्तेषु चारु वदेम ते ।।"

(अथर्व0, 12·1·56)

"सं मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत:।"

(अथर्व0, 10·3·12)

"नास्माद्राष्ट्रं भ्रंशतम्" (तै0सं0, 5·7·44)

"ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ।

"तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति" (अथर्व0, 10·8·15)

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्" (ऋ0, 10·12·3)

"ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम्"

(अथर्व0, 13·1·35)

"आ राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्"

(यजु0, 22·22)

"ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति"

(अथर्व0, 5·1·7)

"अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातय:।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ।।"

(ऋ0, 10·174·2)

"अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहि:।"

(अथर्व0, 12·1·54)

"त्वं राष्ट्राणि रक्षसि" (अथर्व0, 19·30·3)

"विशि राष्ट्रे जागृहि" (अथर्व0, 13·1·9)

"इदं राष्ट्रमकर: सूनृतावत्" (अथर्व0, 13·1·20)

"वस्वीरनु स्वराज्यम्" (अथर्व0, 20·109·1)

"यस्मिन् विश्वाअधि श्रियो रणन्ति सप्त संसद:"

(अथर्व0, 20·110·2)

"प्रिय प्रजानां ---- देवानां ---- पशूनां भूयासम्"

(अथर्व0, 7·1·2-5)

"राजा राष्ट्राणां पेश: " (ऋ0, 7·34·11)

"धर्मोऽसि विशि, विशि राजा प्रतिष्ठित:"

(यजु0, 20·9)

ऋग्वेद(10·173·6) में - "अथो त इन्द्र: केवलीर्विशो बलिहृतस्करत्" ।

अथर्ववेद(4·22) में "वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु" कहा है। अथर्ववेद (6·87) में उसे पृथ्वी का एक एकच्छत्र सम्राट् कहा है ---

"वृषा पृथिव्या यम् वृषा विश्वस्य भूतस्य ककुन्मनुष्याणामेकवृषो भव"।

अथर्ववेद(20·127·7) में राजा परीक्षित को सर्वप्रिय कहा गया है, जो सब पर शासन करता है ---

"राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवो मर्त्यां अति --- परिक्षित:।"

सब राजा की सेवा करें ---

"आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचि:"

(अथर्व0, 4·8·3)

एक जगह त्रसदस्यु अपने को वरुण के समान बताते हैं ---

"मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः।"
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः।।"
(ऋ0, 4•42•1)

अथर्ववेद में जेता के लिए क्षत्रिय होना अनिवार्य है —

"जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि"
(अथर्व0, 10•5•3•2)

मनु कहते हैं — "महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति"।

त्रसदस्यु को अर्धदेव भी कहा है —

"इंद्रं न वृत्रतुरं अर्धदेवम्" (ऋ0, 4•42•8)

राजा को क्रोध न हो यह प्रार्थना की गई है —

"अन्यत्र राज्ञाम् अभियातु मन्युः"

"सो रज्यत ततो राजन्यो जायत"
(अथर्व0, 15•8•1)

"आ त्वा गन्राष्ट्रं सह वर्चसो देहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं विराज" (अथर्व0, 3•4•1)

"राजन्यः शूर इषव्यो तिव्याधी महारथो जायताम्"
(यजु0, 22•22)

इन्द्र को अथर्ववेद(6•98) में "अधिराज राजसु" कहा है तथा उन्हें परमादरणीय माना है,

"चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यः" ।

ऐतरेय-ब्राह्मण(8•7) में तीन पीढ़ियों के राज्याभिषेक हेतु तीनों व्याहृतियों का उच्चारण करना पड़ता था, "भूरिति य इच्छेद् इममेव प्रत्यन्नमद्याद् इत्यथ य इच्छेद् द्विपुरुषम् भूर्भुव इत्यथ य इच्छेत्त्रिपुरुषम् वा प्रतिमम् वा भूर्भुवः स्वरिति"।

शुक्रनीति में राजा के कर्तव्यों तथा राजधर्म का सुन्दर वर्णन

हुआ है। यथा —

"दुष्टनिग्रहणं दानं प्रजायाः परिपालनम् ।
यजनं राजसूयादेः कोशानां न्यायतो र्जनम् ।।
करदीकरणं राज्ञां रिपूणां परिमर्दनम् ।
भूमेरूपार्जनं भूयो राजवृत्तं तु चाष्टधा ।। 1·123–24
चारैः स्वदुर्गुणं ज्ञात्वा लोकतः सर्वदा नृपः ।
सुकीर्त्यै सत्यजेन्नित्यं नावमन्येत वै प्रजाः ।।
कोपं करोति दौरात्म्यादात्मदुर्गुणलोपकः ।
सीता साध्व्यपि रामेण त्यक्ता लोकापवादतः।। 1·132–34
मृगया क्षास्तथा पानं गर्हितानि महीभुजाम् ।
दृष्टास्तेभ्यस्तु विपदो पाण्डु-नैषध-वृष्णिषु ।। 1·141
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
विद्याश्चतस्र एवैता अभ्यसेन्नृपतिः सदा ।। 1·151
कृपणः पीड्यमानः स्वमृत्युना हन्ति पार्थिवम्।
सुपुण्यो यत्र नृपतिर्धर्मिष्ठास्तत्र हि प्रजाः ।। 4·57
जायते राष्ट्र ह्रासश्च शत्रुवृद्धिर्धनक्षयः ।
शूराप्यपि वरो राजा न स्त्रैणो नातिकोपवान्।। 4·59
तस्मादेतत् त्रयं त्यक्त्वा दण्डधारी भवेन्नृपः ।
अन्तर्मृदुः बहिः क्रूरो भूत्वा सः दण्डयेत् प्रजाम् ।। 4·62
राजदण्डभयाल्लोकः स्वस्वधर्मपरो भवेत् । 1·23
देवास्तु किंकरास्तस्य किं पुनर्मनुजा भुवि ।
सुदण्डैर्धर्मनिरताः प्रजाः कुर्यान्महाभयैः ।। 1·25
शत्रवो नीतिहीनानां यथा पथ्याशिनां गदाः।
सद्यः केचिच्च कालेन भवन्ति च भवन्ति च ।। 1·13

"दृगमात्या: सुहृच्छ्रोत्रं मुखं कोशो बलं मन: ।
हस्तपादौ दुर्गराष्ट्रौ राज्यांगानि स्मृतानि हि ।।"

1·61-62.

नयस्य विनयो मूलं विनय: शास्त्रनिश्चयात् ।
विनयस्येन्द्रियजयस्तद्युक्त: शास्त्रमृच्छति ।। 1·91
आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादयेत् ।
तत: पुत्रांस्ततोऽमात्यांस्ततो भृत्यांस्तत: प्रजा: ।।

1·92

"पर्णाल्लघीयसी भव" (अथर्व0, 10·1·29)

"द्यूतं स्त्री मद्यमेवैतत् वितथं बह्वनर्थकृत् ।
अयुक्तं युक्तियुक्तं हि धन-पुत्रमतिप्रदम् ।।" 1·108
काम: प्रजापालने च क्रोध: शत्रुनिबर्हणे ।
सेनासंधारणे लोभो योज्यो राज्ञा जयार्थिना ।। 1·117
परस्त्री-संगमे कामो लोभो नान्यधनेषु च ।
स्वप्रजादंडने क्रोधो नैव धार्यो नृपै: कदा ।। 1·118

महाभारत, अनुशासनपर्व(90·3·5) में लिखा है —

"धर्माय राजा भवति न कामकरणाय तु ।
मान्धातरिति जानीहि राजा लोकस्य रक्षिता ।।
राजा चरति चेद्धर्मं देवत्वायैव कल्पते ।
न चेद् धर्मं चरति नरकायैव गच्छति ।
धर्मे तिष्ठन्ति भूतानि धर्मो राजनि तिष्ठति ।
स राजा साधु य: शास्ति स राजा पृथिवीपति: ।

मनुस्मृति(7·35) में कहा है —

"स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वश: ।
वर्णानामाश्रमाणान्च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ।।"

शुक्रनीति(5·12-13) में कहा है --

"राज्यवृक्षस्य नृपतिर्मूलं स्कन्धाश्च मंत्रिण: ।
शाखा: सेनाधिपा: सेना: पल्लवा: कुसुमानि च ।
प्रजा फलानि भूभागा बीजं भूमि: प्रकल्पिता ।"
"आचार प्रेरको राजा ह्येतत्कालस्य कारणम्" 1·22
सैन्याद् विना नैव राज्यं न धनं न पराक्रम: 4·7-4

मनु लिखते हैं --

"तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात् कार्यंवीक्ष्य महीपति:"
(मनु०, 7·139-140)

"क्षत्रियस्य परो धर्म: प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ।।"
(मनु०, 7·144)

"दण्ड: शास्ति प्रजा: सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधा: ।।"
(मनु०, 7·19)

"यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रित: ।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तर: ।।"
(मनु०, 7·20)

"अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति, नरकं चैव गच्छति ।।"
(महा०,

"नादण्ड: क्षत्रियो भाति नादण्डो भूमिमश्नुते"
(महा०, 14·14)

"असतां प्रतिषेधश्च सतान्च परिपालनम् ।
एष राज्ञां परो धर्मो युद्धे चाप्यपलायनम् ।।"

(महा0, 14·16)

"अल्पोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिप: ।
"यस्मिन् क्षमा च क्रोधश्च दानादाने भयाभये ।।
निग्रहानुग्रहो चोभौ स वै धर्मविदुच्यते ।।"

(महा0, 14·17)

"अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रिय: ।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ।।
नयनाभ्यां प्रसुप्तोऽपि जागर्ति नयचक्षुषा ।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनै: ।।
परावमन्ता विषयेषु संगतो न देशकालप्रविभागतत्वविद् ।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये विपन्नराजो नचिराद् निपत्स्यते।।"

(वा0रामायण)

राजा को वेदविद् होना चाहिए —

"सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ।।"

(मनु0, 12·100)

"वेद: स्वस्ति" (अथर्व0, 7·28·1)

"श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्त: सुमेधस:"

(अथर्व0, 7·61·2)

"प्रिय: श्रुतस्य भूयास्म" (अथर्व0, 7·61·1)

"ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार" (अथर्व0, 4·1·3)

"बृहस्पतिर्म आत्मा" (अथर्व0, 16·3·5)

"नो वेद आभर" (अथर्व0, 20·56·6)

"त्वेऽपि क्रतुर्मम" (अथर्व0, 20·18·5)

"ऋचं साम यजामहे" (साम0, 369)

शतपथ-ब्राह्मण(13·5·3·1) में उल्लिखित 11 अधिकारी ही रत्नी के नाम से प्रख्यात थे, जो राजकृत: के प्रतिनिधि थे और अभिषेक से पूर्व राजा जिनके पास जाते थे- वे हैं -- सेनानी, पुरोहित, अभिषेचनीय, राजा, महिषी, सूत, ग्रामणी, क्षत्, संग्रहीतृ (कोषाध्यक्ष), भागदुह(कर लेने वाले), अक्षावाप(रुपये-पैसे का हिसाब रखने वाले) और गोविकर्त (जंगल के अधिकारी)। ग्रामणी का वर्णन ऋग्वेद(10·62·11) और(10·107·5) में आता है। यथा --

"सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मा सूर्येणास्य यता।"

(ऋ0, 10·62·11)

"दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां य: प्रथमो ---- "

(ऋ0, 10·107·5)

राजा-किस-किस को क्या अधिकार दें, मनुस्मृति में देखें --

"अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ।।
दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।
दूतस्तत् कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ।।
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद् यथात्मानं न पीडयेत् ।।
धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव च ।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ।।

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते ।।
तत् स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ।।
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ।।
तदध्यास्योद्वहेद् भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ।।
पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ।।

(मनु०, 7·65, 66, 68, 70, 74-78)

उसे व्यापारी से पचासवाँ भाग तथा अन्नों से छठाँ या बारहवाँ भाग लेना चाहिए ।

"पञ्चाशद् भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ।।"

(मनु०, 7·130)

"मधुहेव दुहेद् राष्ट्रं कुसुमं व न पातयेत् ।
वत्सापेक्षि दुहेत्क्षीरं भूमिं गां चैव पार्थिवः।।"

राज्य द्वारा सड़कें बनवाई जायें और पुल भी --

"ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवम्"

(अथर्व०, 12·1·47)

"सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्" (ऋ०,4·19·6)

राज्य व्यापार को भी प्रोत्साहन दें --

"ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि"

(अथर्व०,3·15·2)

"शुनं नोऽस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपण: फलिनं मा कृणोतु"

(अथर्व0, 3·15·4)

"येन धनेन प्रपणं चरामि ---- "

(अथर्व0, 3·15·5)

राज्य की भूमि नापकर रखी जाये --

"वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा"

(अथर्व0, 13·1·27)

कृषि सम्पदा में राज्य का भाग 3 तथा गृहपत्नी का चार भाग हो --

"तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्या: ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभिमृशामसि ।।"

(अथर्व0, 3·24·6)

जहाँ अधर्म ही हो उस राजा के सभासद् मृतप्राय हैं --

"यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासद: ।।"

(मनु0, 8·12)

क्षत्रिय राजसूय यज्ञ करता था जबकि वाजपेय यज्ञ ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों कर सकते थे--

"राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड् वाजपेयेन । अवरम् हि राज्यम् परम् हि साम्राज्यम्। कामयते वै राजा सम्राड भवितु न सम्राट कामयते राजा भवितुम्"

(शत0,5·1·1·13)

वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त में प्रियव्रत जी ने मन्त्रियों का विभाग आबण्टन वेद के आधार पर इस प्रकार किया है ---

इन्द्र (सम्राट्); अग्नि (दूत विभाग के मन्त्री); अश्विनौ(परिवहन मन्त्री); वरुण (पुलिस विभाग के मन्त्री); मित्र (जन-मैत्री विभाग के मन्त्री); सोम (न्यायमन्त्री व न्यायाधीश); रुद्र (प्रतिरक्षा मन्त्री व सेनापति); त्वष्टा (शिल्पकला व उद्योग-धन्धों के मन्त्री); बृहस्पति (मन्त्री पुरोहित); पूषा (अर्थमन्त्री); सविता (विधि-मन्त्री); सूर्य (शिक्षामन्त्री); विष्णु (प्रधानमन्त्री); अर्यमा (न्यायमन्त्री व न्यायाधीश (दीवानी); भग(जन-कल्याण व मन्त्री कृषि विभाग); सरस्वती (स्त्री शिक्षा विभाग की मन्त्री); पर्वत (पर्वत सुरक्षा विभाग के मन्त्री); वायु (वायु-प्रदूषण दूरीकरण मन्त्री); और कुत्स (सतर्कता विभाग के मन्त्री)।

यजुर्वेद(30·5) में भी नियुक्तियाँ योग्यता एवं क्षमता के आधार पर ही बतायी गयी है --

"ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् ।
तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया
अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम्"

ऋग्वेद(10·108·9-10) में पणियों ने सरमा को बहुश: प्रलोभन देकर उसे फोड़ना चाहा पर सरमा की स्वामि-भक्ति और स्वराष्ट्रप्रेम सराहनीय है --

"स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम।"
"नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरंगिरसश्च घोरा:।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीय: ।

सरमा ने कहा इन्द्र ही मेरे सम्राट् हैं। वस्तुत: इन्द्र सबके अधिष्ठाता हैं --

"इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्र: क्षेमे योगे हव्य इन्द्र: ।।
(ऋ0, 10·89·10)

ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय 8 में आठ प्रकार के राज्यों का उल्लेख है --

"साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यं आधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौम: सार्वायुष: आन्ताद् आपरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराड् इति"।

राजा के वैयक्तिक गुण वेद में बताए गए हैं, जो निम्नवत् हैं -- विपश्चितम्(ऋ0, 1·4·4), रथीतमं रथीनां(ऋ0, 1·11·1), युवा, कवि:, विश्वस्य कर्मणोधर्ता(ऋ0, 1·11·4), तेन सत्येन जागृतम्(ऋ0, 1·21·6), शतक्रतो (ऋ0, 1·30·6), चित्रश्रवस्तम्(ऋ0, 1·45·6), असमं क्षत्रम्(ऋ0, 1·54·8) असमा मनीषा(ऋ0, 1·54·8), जातवेदा: (ऋ0, 1·59·5), वेधा:(ऋ0, 1·60·2), गृहपति: (ऋ0, 1·60·4), नृणां नृतम:(ऋ0, 1·77·4), सुसंदृशम् (ऋ0, 1·82·3), अप्रतिधृष्टशवसम् (ऋ0, 1·84·2), सौभगत्वस्य विद्वान् (ऋ0, 1·94·16), सतां ज्येष्ठतमाय (ऋ0, 2·16·1), नेता चर्षणीनाम् (ऋ0;3, 6·5), विद्वान्, विप्र:, नृचक्षा: (ऋ0, 3·14·2, 5·3), "य: कर्मभिर्महद्भि: सुश्रुतो भूत" (ऋ0, 3·36·1), वीरतमाय नृणाम् (ऋ0, 3·52·1) सुकृता (ऋ0, 4·21·9), शूर (ऋ0, 4·22·5), शुचिव्रत(ऋ0, 5·4·3), पुरुरूप (ऋ0, 5·8·2), अधो -- विक्षु प्रशस्यते (ऋ0, 5·17·4), कवितमं कवीनाम् (ऋ0·6·18·14), अजरं (ऋ0, 6·19·2), कारो(ऋ0, 6·21·1), "तुविग्रीवो वपोदर: सुबाहु:"(ऋ0, 8·17·8), धीषु प्रथमम् (ऋ0, 8·71·12), शुद्ध: (ऋ0, 8·95·8), "वस्त्राण्यधि पेशनानि वसान:" (ऋ0, 10·1·6), स्वोजा (ऋ0, 10·29·8); उग्रम् (ऋ0, 10·44·3); तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा (ऋ0, 10·87·9), विश्वविद्(ऋ0, 10·91·3), वशी (अथर्व0, 1·21·1), अभयंकर: (अथर्व0, 1·21·1); अप्र युच्छन् (अथर्व0, 2·6·3), चेत्ता (अथर्व0 4·8·2); व्याघ्र, द्वीपि (अथर्व0, 4·8·7); ईड्य:, बन्द्य:, नमस्य:(अथ0, 6·98·

उपसद्य:(अथर्व0, 6·98·1); चर्कृत्य: (अथर्व0, 6·98·2), वृद्धवृष्ण:(अथर्व0, 7·62·1); आतारमवितारम् (अथर्व0, 7·86·1); शक्रम् (अथर्व0,7·86·1); मन्युना(अथर्व0, 7·93·1); सुवीर: (अथर्व0, 13·1·12); वाचस्पते(अथर्व0, 13·1·17); हिरण्यवर्ण:(अथर्व0, 19·24·8); सत्ययोनि:(ऋ0,4·19·2)।

स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासक मृग की तरह प्रजा के उत्तम पदार्थों का आहरण करता रहता है। उसकी प्रजा भी पुष्टि और वृद्धि को नहीं प्राप्त होती अत: भीस्वैशी और शूद्रा पुत्र को राज्याधिकार न दे--

"यद्धरिणो यवमत्ति विड वै यवो राष्ट्रं हरिण: विशमेव राष्ट्राायाद्यो करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते तस्माद्राजा पशून्न पुष्यति शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति तस्माद् वैशीपुत्रं नाभिषिन्चति" (शत0, 13·2·9·8)।

अत: वेद में संघीय राज्य प्रणाली (Federal System of Government) का वर्णन किया गया है --

"अग्नि: --- सम्राडेको विराजति"

(यजु0, 12·11·7)

"अग्निं कविं सम्राजमतिथिं जनानाम्"

(ऋ0, 6·7·1)

"पृथिव्याश्च सम्राट्" (ऋ0, 1·100·1)

"सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्"

(ऋ0, 10·63·5)

राज्योत्पत्ति की आरम्भिक अवस्था गण से आरम्भ होती है, ये लोग राजाओं के अधीन रहते थे, "निषुसीद गणपते गणेषु"(ऋ0,10·113·9) "गणानाम् त्वा गणपतिं हवामहे" (ऋ0,2·23·1)। इन मन्त्रों में विदथ के पुरोहित की तरह गणपति के चयन का उल्लेख है। "अच्छ ऋषे मारुतम् गणम्" (ऋ0,5·52·14), "पुरा स मरुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्य:, शुभम् यावाप्रतिष्कुत:"

(ऋ०, 5·61·13), "इमम् च नो गवेषणम् सातये सिषाधो गणम् । आरात् पूषन्नसिश्रुत:"(ऋ०, 6·56·5), "गण देवानाम् ऋभव: सुहस्त:"(ऋ०,4·35·3)

"The vedic Gana was essentially a tribal public, serving not only political but also social interests. The leaders of the Ganas, as already noted took the title Rajan". (Vedic India, H.P. Chakraborty). V.M. Apte says -- "The very use of the term 'Kula' which does not occur as an uncompounded word before the period of the Brahmanas suggests a system of individual families, each consisting of several members under the leardership of the father or the eldest brother to whom belongs the Kula originally home or house of the family then by metonymy the family itself"(The Vedic Age,p.453

"पितुर्यथा मा नो वियोष्टम्" (ऋ०, 8·36·4)

"कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम्" (ऋ०, 10·179·2)

वही कुल अनेक ग्रामों में विभक्त होकर कृषि करने लगा, "यदंग क्वा भरत: संतरेयुर्गव्यन ग्राम इषिता इन्द्रजुत:"(ऋ०, 3·33·11), ग्राम का नेता ग्रामणी होता था। शतपथ-ब्राह्मण(4·1·5·2-7) में ग्राम को चलती-फिरती संस्था कहा है कि शर्याति मानव अपने ग्राम के साथ घूमते थे। कभी-कभी ग्रामों के भीतर पुर (Forts) भी बनते थे। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण(3·13·4) में महाग्राम का उल्लेख आता है। "सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनु:" (ऋ०, 10·62·11), "दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति" (ऋ०, 10·107·5)। सूत (Governor) तथा सजात (Tribesman) कहा जाता था। पाणिनि ग्रामता का अर्थ ग्रामों के समूह में करते हैं। मनुस्मृति(7·114-121) में इसे सौ गाँवों का स्वामी कहा गया है।(शतपति)। विश् का अर्थ विद्वान् लोग गोत्र करते हैं जो बाद में चलकर सामान्य जन का

वाचक हो गया, "जनम् जनम् विशम् विशम्" (ऋ0, 10·91·2)

"The real elements of the State are the Gotra and the Jana ... it may be that Vis' Sometimes represents in the older texts what later was known as Gotra"

जन का अर्थ व्यक्ति ही होता है जो राज्य की इकाई था, "यथाहम् एषाम् भूतानाम् विराजानि जनस्य च" (ऋ0, 10·174·5); "समजैषमिमा अहम् सपत्नीरभिभूवरी। यथा हमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च" (ऋ0, 10·159·6)। उस समय राष्ट्र भी राज्य का ही एक अंग था। कभी-कभी राजा एकाधिक राष्ट्रों पर भी शासन करता था। यथा, "राजा राष्ट्राणां पेशो नदीनाम् --- "(ऋ0, 7·34·11), "मम द्विता राष्ट्रम् क्षत्रियस्य", (ऋ0,4·42·1), "युवा राष्ट्रम् बृहदिन्वति द्यौः"(ऋ0,7·84·2)।

"So at the initial stage the Sapta Sindhu region had a large number of small states or rāṣṭras" (Muir, Sanskrit Texts Series), "Of course, we may use the term 'Rāṣṭra' as 'State' as antropologists use it in the sense of a recognisible political unit. The Kulas (families), Viśaḥ (clans) and Janas (tribes) would indicate the populational structure of the rastra, whereas gramas (villages) formed the basis of the territorial structure of the rāṣṭra in the vedic period". (Vedic India, p. 100, H.P. Chakraborty).

"सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम्। देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव"
(अथर्व0, 6·86·3)

"अधिराजो राजसु राजयातै" (अथर्व0, 6·98·1)

"पाञ्चजन्यो भवत्विन्द्र ऊती" (ऋ0, 1·100·12)

"हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्" (अथर्व0, 20·11·9)

"जना यदग्निमयजन्त पञ्च" (ऋ0, 10·45·6)

ब्राह्मणों को राष्ट्र में पूरा-पूरा वर्चस्व प्राप्त हो -

"न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन"

(अथर्व0, 5·19·10)

"तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ।
अपक्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ।।"

(अथर्व0, 12·5·5-6)

"तद्वै राष्ट्रमास्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्"

(अथर्व0,5·19·8)

"ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत्साभि विजङ्गते ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ।"

(अथर्व0, 5·19·4)

"परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते"

(अथर्व0, 5·19·6)

"ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना"

(अथर्व0, 5·19·8)

"य एनं हन्ति मृदुं मन्यमान --" (अथर्व0, 5·18·5)

"यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति" (अथर्व0, 5·18·13)

"न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव"

(अथर्व0, 5·18·6)

ब्राह्मण को मारना (ज्या वयोहानो) राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर नहीं --

"अष्टापदी चतुरक्षि चतुः श्रोत्रा चतुर्हनुः ।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमवधूनुते ब्रह्मज्यस्य ।"

(अथर्व0, 5·19·7)

स्त्रियाँ भी राजा चुनी जा सकती हैं —

"अपचिति: भवतु" (यजु0, 3020)

अर्थात् प्रजाओं में पूजा योग्य गुणों की वृद्धि करना ही मेरी योनि है।

"अहं वदामि नेत्वं सभायामह त्वं वद"

(अथर्व0, 7·38·4)

पुरंधि: (ऋ0, 10·80·1) का अर्थ है जो नगर की रक्षा और पोषण करे, "पुरं नगरं दधातीति पुरंधि:"।

सभा- समिति- विदथ- परिषद्- सेना- संग्राम

सभा और समिति वैदिक काल की नियामक सभाएँ थीं जो राजा या राज्य से सम्बद्ध थीं —

"सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितर: संगतेषु।"

(अथर्व0, 7·12)

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचस: ।।
अस्या: सर्वस्या: संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ।"

(अथर्व0, 7·12)

"स विशोऽनुव्यचलत् ।
तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्य चलन् ।
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च ।
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।

(अथर्व0, 15·9·1–3)

"यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तंवीतात्"

(ऋ0, 10·11·8)

राजाओं का समिति में जाना निम्न मन्त्र में है --

"यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव"

(ऋ०, 10·94·6)

"राजा न सत्यः समितीरियानः"(ऋ०, 9·92·6)

"समानो मन्त्रः समितिः समानी"(ऋ०, 10·191·3)

"ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह" (अथर्व०, 6·88·3)

"स मा रोहैः सामित्ये रोहयतु" (अथर्व०, 13·1·13)

"ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते"

(अथर्व०, 12·1·56)

"यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायाम्" (यजु०, 20·17)

"पृथुबुध्नः सभावान्" (ऋ०, 4·2·5)

"सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः"

(अथर्व०, 19·55·5)

"भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु"

(ऋ०, 6·28·6)

यहाँ यह ध्यातव्य है कि समिति बड़ी सभा (अपर हाउस) है तथा सभा (लोवर हाउस) है तथा ये दोनों एक ही नियामक सभा(लेजिस्लेचर) के दो रूप हैं।

"नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो"

(यजु०, 16·24)

"सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्"

(यजु०, 32·13)

"सदने ---- समितिर्बभूव" (ऋ०, 1·95·8)

"यद्राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः"

(ऋ०, 3·29·1)

परिषद् या विदथ का वर्णन भी आता है -

"त्रीणि राजा विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
(ऋ0, 3·38·6)

"सभामेति कितवः" (ऋ0, 10·146)

सभा और समिति राष्ट्री संगमनी के ही दो विभाग हैं।
यथा --

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्"
(ऋ0, 10·125)

आमन्त्रण को(अथर्व0, 8·10) सार्वभौम राजसभा कहा जा सकता है तथा इन्द्रेन्द्र शब्द इसमें केवल अथर्ववेद(3·4·6) में मिलता है --

"इन्द्रेन्द्र मनुष्या परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः।"

सभा और नरिष्टा (अनतिलंघ्य विदुषां समाजः) में कोई अन्तर नहीं है। क्षत्र और ब्रह्म जब मिलकर कार्य करते हैं तभी राष्ट्र का अभ्युदय होता है -- "क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद् ---" (रामा0बाल0, 6·19)

अतः राज्य के सुसंचालन के लिये राज्य के सप्ताङ्ग-निर्धारण में कोई त्रुटि न होनी चाहिए। अर्थात् स्वामी, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र राज्य सब यथाशक्ति सुदृढ़ होना चाहिए।

प्रो0 अल्तेकर (स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन ऐंशियेण्ट इण्डिया) में कहते हैं --

"The Sabha was usually the village assembly, meeting for social as well as for political purposes", pp. 97-98.

Prof. V.M. Apte says in (The Vedic Age) --

"The samiti was an august assembly of a larger part of the people for the discharge of tribal(i.e. political)business and was presided over by the King. The Sabha,a more select body was less popular and political in character than the

Samiti. ... Both these assembalies exercised considerable authority and must have acted as healthy checks on the power of the king. Great importance was attached not only on the concord between the king and the assembly but also to a spirit of homony among the members of the assembly."

pp. 356-57.

पारस्कर गृह्यसूत्र(3•13) में सभा को "नादि:" और "त्विषि:" नामों से व्यक्त करता है, "नादिर्नामासि त्विषिर्नामासि" , "धर्माय सभाचारम्" (वा०सं०, 30•6)। Louis Renou कहते हैं --

"Sabha seems to be an assembly of limited size, partly judicial in nature, whereas Samiti refers to a popular body of popular character".

(The Civilization of Ancient India, p. 97).

ऋग्वेद(10•71•10) में कहा है कि सभा न्याय के लिए प्रसिद्ध थी उसमें पक्षपात को कोई स्थान न था --

"सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखाय: ।
किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ।।

प्रोफेसर यू०एन० घोषाल कहते हैं,

"The Samiti was the folk assembly par excellence of the Vedic Aryans and occupied as such a portion of sufficient importance to make it the king's most valuable asset, and that the Sabha ... tended at an early period to be narrowed down into the King's Council and Court, and finally the both the assemblies enjoyed the right of debate." S.I.H.C.,p.359.

Dr. R.C. Majumdar (C.I.A.I., p.118) thinks "that the Sabhā signified the local and the Samiti the Central assembly". Dr. H.N. Sinha (Sovereignty in A.I., polity) says that "The Sabhā seems to be a council of the influential men and the elders, while the Samiti was an assembly of the people meeting on special occasions, He adds further that the matters before the Sabhā might have pertained to policy of Government." "Samiti according to Zimmer was composed of Vis'aḥ and it could even re-elect the king."

अथर्ववेद(5•19•15) में एक राजा की दयनीय स्थिति का वर्णन है, जो समिति में अपना अधिकार खो बैठता है और उसका सारा राज्य सूखे की चपेट में है —

"नास्मै समिति: कल्पते न मित्रं नयते वशम्"

Prof. Altekar says, "The Samiti exercised control over the military and executive affairs of the Central Government."

Lastly Dr. Kane says (H.P.S.,III,p. 92), "It is impossible to say how the Sabhā or Samiti was constituted in the Vedic period. All that we can say is that it was an assembly of the people to which the king, learned men and others went. It is extremely doubtful whether it was an elective body. Probably it was an adhoc assembly of such people as cared to be present."

ऋग्वेद(1·60·1) में अग्नि को विदथ का केतु कहा है —

"वह्निं यशसं विदथस्य केतुम्" ।

विदथ को हम सामान्य जन, युद्ध और धार्मिक कार्य तीनों से सम्बद्ध पाते हैं। यथा –

"द्विवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे"

"गन्तारो विदथेषु धीराः" (ऋ0, 3·26·6)

"क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः"(ऋ0, 1·166·2)

सेना स्वयं एक संवैधानिक इकाई के रूप में स्थित थी —

"सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च —— प्रियं धाम भवति"

(अथर्व0, 15·9·2)

"तम् सभा च समितिः सेना च" (अथर्व0, 12·1·56)

यहाँ यह ध्यातव्य है कि वेदों में सभा और समिति की अपेक्षा अधिक बार(सेना) प्रयुक्त हुआ है जिससे उसका प्रामुख्य विस्पष्ट है।

"गुहाचरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सम् वाच"

(ऋ0, 1·167·3)

"गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशीनि त्वम् विदथमावदासि"

(ऋ0, 10·85·26)

स्त्रियों का विदथ में भाग लेने का वर्णन वेद में अनेकशः आता है—

"इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।

एनापत्या तन्वं संसृजस्वाऽधा जिव्री विदथमा वदाथः ।।"

(ऋ0, 10·85·27)

"आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथजिर्विर्विदथमा वदासि"

(अथर्व0, 8·1·6)

Prof. Shama who says that probably in all these references the Vidatha means a family council"

P.I.I.A.I.,p. 65.

"आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः"

(ऋ०, 3·14·1)

ओल्डनबर्ग, विल्सन तथा सायण विदथ का अर्थ वितरण" (Distribution) कहते हैं ---

"आ शुष्टिर्विदथ्या समैतु प्रतिस्तोमं दधीमहितुराणाम् ।

यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे।।"

(ऋ०, 7··40·1)

"त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः" ।

(ऋ०, 2·1·4)

ऋग्वेद(10·34·12) में एक जुआड़ी गणपति के सामने अपने पास धन न होने की बात कहता है। ऋग्वेद(2·27·12) में एक यज्ञकर्ता का वर्णन है ---

"स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः"।

"अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः"

(ऋ०, 3·28·4)

विदथ वीरों से युक्त संस्था थी ---

"प्र नू वोचम् विदथा जातवेदसः" ।

"बृहद् वदेम विदथे सुवीराः" ।

कुछ देवों को विदथ का मुखिया कहा है ---

"पतिम् दक्षस्य विदथस्य(इन्द्र)" (ऋ०, 1·56·2)

"प्र युषणम् विदथ्यम् न वीरम्(पूषन्)"

(ऋ०, 7·36·8)

"यस्य क्रतुर्विदथ्यो नाम सम्राट्"(इन्द्र)

(ऋ०, 4·21·2)

अग्नि को विदथ में पुजारी के रूप में वर्णित किया है ---

"मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं ---- वृणते नान्यं त्वत्"

"त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधस:"।

(ऋ0, 10·91·8,9)

विदथ की तुलना लोग न्यूयार्क के Iroquois gens से करते है,जो

"A democratic assembly where all its members of both the sexes elected and deposed the sachems and chiefs" and also the keepers of faith".

(Lewis,H.Morgan, Anc. Society, p. 85)

विदथ का अर्थ सर्वत्र "यज्ञ" और समिति का युद्ध(निघ0,2·17) करना उचित नहीं। यथा --

"कृतम् नो यज्ञम् विदथेषु ---- " (ऋ0, 1·159·1, 7·84·3)

विदथ सामूहिक पूजा का स्थान था --

"अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरावीतये सदत पिप्रियाणा:"

(ऋ0, 7·57·2)

"आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानर: सविता देवएतु:"

(ऋ0, 1·186·1)

"अस्मभ्यं तद्वसु दानाय राध: समर्थयस्व बहु तेवस्तव्यम् ।"

"अग्निं होतारं विदथाय जीजनन्"

(अथर्व0, 18·1·20)

"स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमुष्टवाम विदथेष्विन्द्रम्"

(ऋ0, 4·21·4)

"सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि"

(अथर्व0, 1·13·4)

"द्रप्सां ईरयन् विदथेष्विन्दु र्वि वारमव्यं समयाति याति"

(ऋ0,9·97·56)

"विश्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणि:"

(ऋ0, 4·36·5)

"त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे"

(ऋ0, 1·31·6)

"The Vidatha was the earliest collective institution of the Indo-Aryans ... "The term that Vidath a can be reduced to the Gothic word 'Vitoth' which means law"- P.I.I.A.I.p.79

Prof. R.S. Sharma says "The Vidatha was the folk assembly of the Indo-Aryans, attended by men and women, performing all kinds of functions, economic, military, religious and social ... the Keystone of the Vidatha system was cooperation. People gathered in this assembly, fought together, sang together, prayed together, played together and deliberated together without any discrimination of sex. How for the Vidatha served as an instrument of Government is difficult to determine."

P.I.I.A.I., pp. 79-80.

परिषद्

यह शब्द सहचरों के अर्थ में ऋग्वेद(3·33·7) में आया है --

"वि वज्रेण परिषदो जघान"।

इन्द्र के सहायकों के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है --

"तदिन्वस्य परिषद्वानो ग्मन् पुरु सदन्तो नार्षदम् विभित्सन्"

(ऋ0, 10·61·13)

परिषद्(Conclave) के लिए भी यह प्रयुक्त है —

"शुचन्तो अग्निम् ववृधन्त इन्द्रमूर्वम् गव्यम् परिषदन्तो ग्मन्"

(ऋ0, 4·2·17)

यहाँ परिषदन्तः का अर्थ सायण ने "परितः सीदन्तः सन्तः" किया है। शत्रु का धन पर्याप्त होता है और परिषद् का होता है —

"परिषद्यम् हिरण्यस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम"

(ऋ0, 7·4·7)

वाजसनेय संहिता(5·32) में अग्नि को परिषद् (धार्मिक स्थल) में स्थित बताया गया है, "कृशानुः परिषद्यो सि" ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण(3·1·2·9) में सभा और समिति के सहित हमें दैवी परिषद् का भी वर्णन मिलता है। ब्राह्मण सामविधान(2·7·5) में "परिषदिराजनि चोत्तरवादी भवत्युत्तरवादी भवति" आता है जहाँ इसका अर्थ सभा है। बृहदारण्यक उपनिषद्(6·1·1) तथा जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (2·11·13·14) में दार्शनिक सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श करने वाले समूह को परिषद् नाम से अभिहित किया गया है। गोभिल गृह्यसूत्र (3·2·40) में एक अध्यापक को उनकी परिषद् (कौंसिल) के साथ बताया है।

पाणिनि ने तीन प्रकार की परिषद् का वर्णन किया है — चरण-परिषद्, परिषद्य (परिषद् का सदस्य - "परिषदम् समवैति" -पा0,4·4·41). परिषद्लो राजा(मन्त्रों के समूह से युक्त राजा)।

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते है,

"Originally the parisad began as a body of scholars inside the Vedic schools".

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष,पृ0 408)

बाद में कौटिल्यीय अर्थशास्त्र और जातकों में परिषद् ने शासन-तन्त्र में स्थान ग्रहण किया। गौतम धर्मसूत्र तथा बौधायन धर्मसूत्र(27·50-51

और 101·8-9) में इसे पुरोहितों का समूह कहा गया है। पारस्कर गृह्यसूत्र (3·13·4·5) में इसे शाही परिषद् के रूप में माना गया है जिसके सदस्य ईशान की अध्यक्षता में वाद-विवाद करके उसे अपने पक्ष में रखने का प्रयत्न करते थे।

सेना

जायसवाल कहते हैं,

"The Senā or the army which was in early times the Nation in-arms was regarded as a body by itself and evidently as a constitutional unit." H.P.,p.20.

"तं सभा च समितिश्च सेना च ---- अनुव्यचलन्"
"सभायाश्च वै च समितेश्च सेनायाश्च ---- प्रियं धाम भवति"
(अथर्व0, 15·9·2-3)
"त्रिसन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे"
(अथर्व0, 11·10·4)
"शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया" (अथर्व0, 8·8·7)

इसी प्रकार संग्राम शब्द भी युद्ध के लिए आता है --
"य: संग्रामान् नयति संयुधे वशी ---- "।
(अथर्व0, 4·24·7)

पत्ति शब्द अथर्ववेद(8·62·1) में पैदल सिपाही के लिए आया है -- "रथीव पत्तीन्जयतु पुरोहित:"। वाजसनेय संहिता(16·19) में शिव को "पत्तीनां पत्ये" कहा है।

सैन्यबल और सुरक्षा-व्यवस्था

वेद में सर्वोदयी भावना या वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना है --

"स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा ।
जनराडसि रक्षोहा सर्वराडसि अमित्रहा ।।"

(यजु०, 5·24)

"इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय ।
महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।"

(यजु०, 9·30)

"रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि"

(यजु०, 18·48)

"प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उत आर्ये ।।"

(अथर्व०, 19·62·1)

"विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधस: "

(यजु०, 30·4)

"इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एषवो मी राजा"

(यजु०, 9·40)

राजा को चाहिए कि वह राष्ट्र की सुरक्षा के लिए धन और सैन्य की पर्याप्त व्यवस्था करें --

"श्रेयसे वित्तधम्" (यजु०, 30·11)

"निर्ऋत्यै कोषकारीम्" (यजु०, 30·14)

"स्वर्गाय लोकाय भागदुघम्" (यजु०,30·13)

असुर एवं राक्षस दण्डनीय हैं --

"अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषद:"

(यजु०,2·29)

"इदमहं रक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि"

(यजु०, 6·1)

"ये रूपाणि प्रतिमुंचमाना असुरा: सन्त: स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्।"

(यजु०, 2·30)

"इन्द्रम्मदं बृहद्वयं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम्"

(यजु०, 11·76)

"या: सेना अभित्वरीराध्याधिनीरूगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्तांस्ते अग्नेऽपिदधाम्यास्ये ।"

(यजु०, 11·77)

"दंष्ट्राभ्यां मलिम्लून जम्भ्यैस्तस्करां उत ।
हनुभ्यां स्तेनान्भगवस्तांस्त्वं खाद सुखादितान् ।"

(यजु०, 11·78)

"ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तकरा वने ।
ये कक्षष्वघायवस्तांस्ते दधामि जम्भयो: ।।"

(यजु०, 11·79)

"योऽस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जन: ।
निन्दाद्योऽस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ।

(यजु०, 11·80)

"अग्ने सहस्व पृतनाऽभिमातीरपास्य "

(यजु०, 9·37)

शासन के लिए दण्ड आवश्यक है तथा ब्रह्म और क्षत्र शक्ति भी-

"इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रो: प्रशिषायुनज्मि"

(यजु०, 10·21)

"इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्"

(यजु०, 32·16)

"विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि"

(यजु०, 10·19)

राष्ट्र की अजेय सेना को चारों दिशाओं में आक्रमण करने को कहा है --

"प्राचीमारोह"(यजु०, 10·10), "दक्षिणामारोह(यजु०, 10·11), "प्रतीचीमारोह"(यजु०, 10·12), "उदीचीमारोह"(यजु०, 10·13), "ऊर्ध्वामारोह"(यजु०, 10·14), "प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः"(यजु०, 10·14)।

राष्ट्रपति से प्रार्थना की गई है कि वह हमारी रक्षा करें --

"भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरोवीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शंस्य पशून्मे पाह्यथर्यपितुं मे पाहि ।।"

(यजु०, 3·37)

तथा राष्ट्रस्थ जो उपद्रवी, दुष्ट, हिंसक, चोर, ठग हैं उनके लिए वज्र (नम इति वज्रनामसु) का प्रयोग करें --

"नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः"

(यजु०, 16·21)

मन्यु-युक्त सेनाध्यक्ष को नमस्कार है --

"नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः"

(यजु०, 16·1)

"अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव"

(यजु०, 16·5)

"प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप।।"

(यजु०, 16·9)

वेद में धनुर्विद्या का बहुत महत्त्व है —

"धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ।।"
(यजु०, 29·39)

"शतधन्वा" (यजु०, 16·29), "शरव्ये ब्रह्मसंशिते"(यजु०, 17·45)

"विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ उत ।
अनेशन्नस्य इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ।।
(यजु०, 16·10)

"वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती।।"
(यजु०, 29·40)

"ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती ऽमित्रान्।।"
(यजु०, 29·41)

"इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः"
(यजु०,29·42)

"नमो निषङ्गिणे इषुधिमते" (यजु०, 16·21)

सेनाओं तथा पदाधिकारियों को वेद के निम्न मन्त्र में नमन किया गया है —

"नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो रथेभ्यश्च वो नमो नम क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्योऽर्भकेभ्यश्च वोनमः
(यजु०, 16·26)

वेद में रथ का बहुत महत्त्व है। रथ सैनिकों का भी वेद में वर्णन है —

"रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमाना: ।।"
(यजु0, 29·45)

"रथे तिष्ठन्नयति वाजिन: पुरो यत्र-यत्र कामयते सुषारथि:।
अभीशूनां महिमानं पनायत मन: पश्चादनु यच्छन्ति रश्मय:।।"
(यजु0, 29·43)

"स्वादुषं सद: पितरो---- चित्रसेना इषुबला अमृध्रा: सतोवीरा उरवो
व्रातसाहा:" (यजु0, 29·46)

राष्ट्र के पास श्रेष्ठतम सस्त्र हों —

"नम: सहस्राक्षाय च शतधन्वने च"
(यजु0, 16·29)

"एकवीर: शतं सेना अजयत्साकमिन्द्र:"
(यजु0, 17·33)

"यास्ते सहस्रं हेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तु ता:"
(यजु0, 16·52)

"सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतय: ।"
तासामीशानो भगव: पराचीना मुखा कृधि ।।"
(यजु0, 16·53)

"स्थिरा व: सन्त्वायुधा:" (ऋ0, 1·39·2)

"वर्षमिषव:, वात इषव: अन्नमिषव:"
(यजु0, 16·64-66)

"अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्" (साम0, 4)

"उत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व" (यजु0, 15·7)

रक्षा के साधन कवच भी उत्तम हों -

"मर्माणि ते वर्मणा छादयामि" (यजु0, 17·49)

"जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु।।"

(यजु०, 29·38)

"नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च"

(यजु०, 16·35)

युद्ध के लिए प्रशिक्षित घोड़े हों —

"नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमः"

(यजु०, 16·24)

सेना में कुत्ते भी रखे जायें —

"नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः"

(यजु०, 16·28)

"अश्वाजनि प्रचेतसो श्वान्त्समत्सु चोदय"

(यजु०, 29·50)

सेना के लिए वाद्य हो —

"नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च"

(यजु०, 16·35)

"स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयोऽपसेध शत्रून्"

(यजु०, 29·55)

"अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व"

(यजु०, 29·56)

"आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु।।

(यजु०, 29·57)

सेनाएँ पर्वतीय(गिरिशयाय), पशुरक्षार्थ(शिपिविष्टाय), सेना को सामग्री पहुँचाने वाली(मीढुष्टमाय) हो – (यजु०, 16·29)

सेनाएँ शीघ्रगामी हों तथा प्रहारक और संचार वाली हों-

"नम आशुषेणाय चाशुरथाय च"

(यजु०, 16·34)

"नमः शूराय चावभेदिने च"

(यजु०, 16·34)

"नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च"

(यजु०, 16·35)

भूसेना, अन्तरिक्ष सेना, भूगर्भ सेना तथा पथरक्षक सेनाएँ हों --

"असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽभिभूम्याम् ।

तेषां सहस्रयो जने व धन्वानि तन्मसि ॥"

(यजु०, 16·54)

"अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीन् अजयत् पुरोहितः"।

(अथर्व०, 7·62·1)

"अन्तरिक्षे भवा" (यजु०, 16·55)

"नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः"

(यजु००, 16·56)

"नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽधः क्षमाचराः"

(यजु०, 16·57)

"ये पथां पथि रक्षयः" (यजु०, 16·60)

"ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः"

(यजु० 16·61)

जलसेना का भी वर्णन वेद में है --

"ये वावृधन्त वृजने वा नदीनाम्" (ऋ०,5·52·7)

"वि द्वीपानि पापतन्" (ऋ०,8·20·4)

"नि यद् यामाय वो सिन्धवो येमिरे"

(ऋ०, 8·7·5)

प्रक्षेपास्त्रधारी सेनाएँ इस मन्त्र में हैं --

"अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व माऽमीषां कञ्चनोच्छिष: ।।

(यजु०, 17·45)

पनडुब्बी (मद्गु या शुन्ध्यु) का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यव: ।

उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ।।"

(ऋ०,5·52·9)

"असौ या सेना मरुत: परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्धमाना ।

तां गूहत तमसाऽपव्रतेन यथाऽमी अन्यो अन्यन्न जानन् ।।"

(यजु०, 17·47)

"य एतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे"

(यजु०, 16·63)

"नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषव:"

(यजु०, 16·64)

"नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषव:"

(यजु०, 16·65)

"नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषव:"

(यजु०, 16·66)

गैसों और रसायनों का भी प्रयोग युद्ध में होता था --

"अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।

अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ।।"

(यजु०, 17·44)

सेना के ध्वज एवं रक्षकों के क्रम का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"अस्माकमिन्द्र: समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ।।"

(यजु०, 17·43)

"इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ।।"

(यजु0, 17·41)

वायव्य अस्त्रों का वर्णन तथा उड्डयन शक्ति का वर्णन निम्न मन्त्र में है —

"वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरागहि"

(यजु0, 27·32)

"इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा ।
वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ।।"

(यजु0, 1·24)

"देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवसोबृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम्।
--- इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम् --- बृहस्पतेरुत्तमं नाकमारुहम्।
--- इन्द्रस्योत्तमं नाकमारुहम्"

(यजु0, 9·10)

वेद में मरुद् विद्या का वर्णन है, जो युद्धार्थ उपयोगी है —

"सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूंरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ।।"

(यजु0, 7·37)

"उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय
त्वा मरुत्वते" (यजु0, 7·37)

वायु और मन गन्धर्व हैं। निम्न मन्त्र में वायु के 27 भेद बताए गए है —

"वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः ।
तेऽग्रेश्वमयुञ्जंस्ते अस्मिन् जवमादधुः ।।"

(यजु0, 9·7)

"मरुतां प्रसवेन जय" (यजु०, 10·21)

"वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिण: श्रियेधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु।।"
(यजु०, 9·8)

"जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा य: श्येने परीत्तो चरच्च वाते।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णु:।"
(यजु०, 9·9)

राष्ट्रनायक के कर्तव्यों का वर्णन निम्न मन्त्रों में है —

"अस्येदेव शवसा शुषन्तं विवृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्र:"
(ऋ०, 1·61·9)

"समत्सु त्वा हवामहे" (ऋ०, 8·43·21)

"स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने। नकिर्य वृण्वते युधि"
(ऋ०, 8·45·21)

"आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षिती: —— "
(ऋ०, 5·37·4)

"अभ्येनं वज्र आयस: सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम्"
(ऋ०, 1·80·12)

"त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे" — "त्वामुग्रमवसे संशिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय"
(ऋ०, 1·102·10)

"अस्य हि स्वयशस्तरं सवितु: कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम्" (ऋ०, 5·82·2)

"तपन्ति शत्रुं स्वर्णभूमा महासेनासो अमेभिरेषाम्"
(ऋ०, 7·34·19)

शत्रु सेना को मसल डालने तथा उसे पराजित करने का वर्णन अनेक मन्त्रों में है —

"इमं संग्रामं संजित्यं यथालोकं वि तिष्ठध्वम्"

(अथर्व0, 11·9·26)

"तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकश:"

(अथर्व0,5·21·8)

"ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभिक्रोशन्तु या दिश: ।
सेना: पराजिता यतीरमित्राणामनीकश: ।।"

(अथर्व0,5·21·9)

"देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनाम् मरुतो यन्त्वग्रम्"

(ऋ0, 1·103·8)

"दमयन् सपत्नान् सिंहइव तं तनीहि"

(अथर्व0,5·20·1)

"हत्वाय शत्रून्विभजस्व वेद:" (अथर्व0,4·31·2)

"विशं विशं युद्धाय सं शिशाधि" (अथर्व0, 4·31·4)

"अहं जनाय समदं कृणोमि" (अथर्व0, 4·30·5)

"प्रेताजयता नर इन्द्रो व: शर्म यच्छतु ।
उग्रा व: सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।।"

(ऋ0, 10·103)

"त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम" (ऋ0, 10·128·1)

"सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभिप्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ।।"

(ऋ0, 1·11·2)

"अस्माकमिन्द्र: समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मां उदेवा अवता हवेषु ।।

(ऋ0, 10·103·11)

"सुवीर्यपतय: स्याम" (ऋ0, 9·95·5)

"ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्"

(ऋ0, 8·58·3)

"स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्।
सुसंस्कृता अभीशवः।" (ऋ0, 1·38·12)

"स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ।"

(अथर्व0, 3·1·6)

"तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि"

(अथर्व0, 3·2·6)

"सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा"

(अथर्व0, 2·4·18)

"अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व"

(अथर्व0, 5·3·14)

"अग्ने यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः"

(अथर्व0, 2·4·19)

"अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिं नः"

(अथर्व0, 3·1·2)

"अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांतमसा विध्य शत्रून्"

(अथर्व0, 3·1·2)

"असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ।।"

(अथर्व0, 3·1·2)

"एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वक् भिन्धि सहस्व च"

(अथर्व0, 3·2·6)

"सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्यो: पाशैरमोक्यै: ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान्।" (अथर्व0,3·2·6)
"दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् विविध्यत"
(अथर्व0,1·4·19)
"रुद्र: शरव्य येतान् ममामित्रान् विविध्यतु"
(अथर्व0,1·4·19)
"य: सपत्नोऽसपत्नो यश्च द्विषञ्छपाति न: ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ।।"
(अथर्व0,1·4·19)
"विन इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यत: ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ।।"
(अथर्व0,1·4·21)
"विरक्षो विमृधो जहि विवृत्रस्य हनू रुज ।
विमन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासत: ।।"
(अथर्व0, 1·4·21)
"स न: पर्षदतिद्विष:" (अथर्व0, 6·4·34)
"अशङ्क्विन्द्रोऽभयं न: कृणोतु" (अथर्व0, 6·4·40)
"अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं न पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ।।"
(अथर्व0, 6·4·40)
"अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात्"
(अथर्व0, 5·2·10)
"विशि क्षेममदीधरन्" (अथर्व0,3·1·3)
"इन्द्रेण मन्युना वयमभिस्याम पृतन्यत: ।
घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति" (अथर्व0,7·9·93)

"अस्मदाराच्चिद् द्वेष: सनुतर्युयोतु"

(अथर्व0, 7·9·92)

"ओजो दासस्य दम्भय" (अथर्व0, 8·8·90)

"विशत्रून् ताढि विमृधो नुदस्व" (अथर्व0, 7·8·84)

"अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम्"

(अथर्व0, 7·8·84

"द्रुह: पाशान् प्रतिमुञ्चतां स तपिष्ठेन तपसा हन्तनातम्"

(अथर्व0, 7·7·77)

"विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि"

(अथर्व0, 7·6·73)

"अधस्पदं कृणुतां मे पृतन्यव:" (अथर्व0, 7·6·62)

"पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे"

(अथर्व0, 7·6·63)

"यो न: शपादशपत: शपतो यश्च न: शपात् ।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनुशुष्यतु ।।"

(अथर्व0, 7·6·59)

"यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम्।
रिपुस्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च ।।

(अथर्व0, 8·2·4)

"यो न: सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेद:।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेद: ।।"

(अथर्व0, 7·10·108)

"यो नस्तायद् दिप्सति यो न आवि: स्वो विद्वानरणो वा नोऽग्ने
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम्।।

(अथर्व0, 7·10·108)

"तेन सपत्नान् परि वृङ्ङ्ग्धि ये मम पर्येमान् प्राण: पशवो जीवनं वृणवत्" (अथर्व0, 9·1·2)

"येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमंतमो निनाय ।
तेनत्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्रणुदस्व दूरम् ।।"
(अथर्व0, 9·1·2)

"कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव" (अथर्व0, 9·1·2)

"नुदस्व काम --- मम ये सपत्ना: --- नीचै: सपत्नान् मम पादयाथ:।" (अथर्व0, 9·1·2)

"इमा उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूट सहस्रश: ।।
पराजिता: प्रत्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पति प्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ।।"
(अथर्व0, 8·4·8.)

"अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ।।
(अथर्व0 8·5·9)

"संक्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सहदेवताभि:।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उपयन्तु मृत्युम्।"

"बृहद्धि जालं बृहत: शक्रस्य वाजिनीवत: ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातैकतमश्चनैषाम् ।।"
(अथर्व0, 8·4·8)

"इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्र: शूर: पुरंदर: ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रश: ।।"
(अथर्व0, 8·4·8)

"असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ।।"

(अथर्व0, 8·3·5)

"अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम्"

(अथर्व0, 8·3·5)

"अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमंगलः ।।"

(अथर्व0, 8·3·5)

"अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयद् प्रदिशश्चतस्रः।"

(अथर्व0, 8·3·5)

"अजैषं सर्वाः पृतना विमृधो हन्मि रक्षसः"

(अथर्व0, 8·3·5)

"अद्या मुरीय यदि यातुधानोऽस्मि"

(अथर्व0, 8·2·4)

"यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः"

(अथर्व0, 20·4·34)

"युधा युधमुपघेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा"

(अथर्व0, 20·3·21)

"इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ।"

(अथर्व0, 20·3·20)

"त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ।
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।।"
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ।

(अथर्व0, 10[illegible])

"त्वामिन्द्रस्याहुर्नर्मत्वं राष्ट्राणि रक्षसि ।
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ॥"
इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भ सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥"

(अथर्व०, 19·4·28,29,30)

"जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नोऽस्तु।"

(अथर्व०, 19·2·14)

"मघवन्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि ।
इन्द्र द्रुहो विनाशय"

(अथर्व०, 19·2·15)

"बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रमस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥"

(अथर्व०, 19·2·13)

"शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ --- देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु
--- शं नो भूमिर्वेप्यमाना"

(अथर्व०, 19·1·9)

"यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवम् सर्वमेव"

(अथर्व०, 19·1·9)

"योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च ---
सुशकुनं मेऽस्तु । अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे
रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव। अपपापं परिक्षवं पुण्यं
भक्षीमहि क्षवम्" (अथर्व०, 19·1·8)

"अवबाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु"

(अथर्व०, 4·7·35)

"तान्त्सत्वोजा: प्रदहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ।
(अथर्व0, 4·8·36)

"यो नो दिप्सदप्सितो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ।।"
(अथर्व0, 4·8·36)

"साह्याम दासमार्य त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता"
(अथर्व0, 4·7·32)

"अभीहि मन्यो त्वसस्तवीयान् तपसा युजा विजहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं न: ।।"
(अथर्व0, 4·7·32)

"अस्मास्वोज: पृतनासु धेहि"
(अथर्व0, 4·7·32)

"हनाव दस्यूंरुत बोधयापे:" (अथर्व0, 4·7·32)

"अधो वृत्राणि जङ्घनाव भूरि" (अथर्व9, 4·7·32)

"सहस्व मन्योऽभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून्।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशीवशं नयासा एकज त्वम् ।।"
(अथर्व0, 4·7·31)

"संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्यु: ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रव: पराजितासो अपनिलयन्ताम् ।।"
(अथर्व0, 4·7·31)

"यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि" (अथर्व0, 4·6·30)

"अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ"
(अथर्व0, 4·6·30)

"विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु निदध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ।।"
(अथर्व0, 5·4·21)

"उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ।।"

(अथर्व0, 5·4·21)

"यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा।
एवा त्वं दुन्दुभे मित्रानभिक्रन्द्य प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय।"

(अथर्व0, 5·4·21)

"मित्रैरमित्राँ अवजङ्घनीहि"

(अथर्व0, 5·4·20)

"अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा"

(अथर्व0, 5·4·21)

"यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातरः इन्द्रेणयुजा प्रमृणीत शत्रून्"

(अथर्व0,5·4·21)

"शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः"

(अथर्व0, 5·4·20)

"निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु"

(ऋ0, 5·2·6)

"क्षत्रेणात्मानं परिधापयाथः"

(अथर्व0, 13·3·5·1)

"विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव ।
अति गाहेमहि द्विषः ।" (ऋ0, 2·7·3)

"जयेम संयुधि स्पृधः"

(अथर्व0, 20·70·19)

"अहं रक्षोऽभितिष्ठामि, अहं रक्षोऽधमं तमो नयामि"

(यजु0, 6·16)

"पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः"

(अथर्व0, 5·29·10)

"जहि शत्रुमन्तिके दूरके च यः"

(ऋ0, 9·78·5)

"अर्यो नशन्त" (ऋ0, 9·79·1)

"युध्यताजौ" (अथर्व0, 20·137·8)

"अधः सपत्ना मे पदोः" (ऋ0, 10·166·2)

"पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि"

(अथर्व0, 10·5·25)

"जिते अरुणाः सन्तु केतवः" (अथर्व0, 11·10·7)

"सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नान्"

(अथर्व0, 12·1·41)

"मा दम्पती पौत्रमघं निगाताम्"

(अथर्व0, 12·3·14)

"धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः"

(अथर्व0, 5·21·2)

"जयन्तु सत्वानो मम"

(अथर्व0, 6·65·3)

"निर्हस्ताः सन्तु शत्रवः"

(अथर्व0, 6·66·3)

"अग्ने जातान् प्रणुदा मे सपत्नान्"

(अथर्व0, 7·34·1)

"वयं जयेम त्वया युजाः"

(अथर्व0, 7·50·4)

"दुष्कृते मा सुगं भूत"

(अथर्व0, 8·4·7)

"गृभायत रक्षसः संपिनष्टन" (अथर्व0, 8·4·18)

"घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्"

(अथर्व0, 10·4·9)

"यस्त्वा जघान वध्यः सोऽस्तु"

(अथर्व0, 18·2·31)

"परैतु मृत्युरमृतं न एतु" (अथर्व0, 18·3·62)

"वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि" (अथर्व0, 19·58·4)

"पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टाः" (अथर्व0, 19·58·4)

"वृश्चामि शत्रूणां बाहून्" (अथर्व0, 3·19·2)

"क्षिणामि ब्रह्मणामित्राणुन्नयामि स्वानहम्"

(अथर्व0, 3·19·3)

"जह्येषां वरं वरं मामीषां मोचि कश्चन"

(अथर्व0, 3·19·8)

"अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
यो अद्य स्तेन आयाति स संपिष्टो अपायति ।।"

(अथर्व0, 4·3·3)

"विशं विशं युद्धाय सं शिशाधि" (अथर्व0, 4·31·4)

"तपनोऽस्मि पिशाचानाम्" (अथर्व0, 4·36·6)

"शुचा विध्य: हृदयं परेषाम्" (अथर्व0,5·20·3)

"व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे विक्रमस्व"

(अथर्व0, 4·8·4) ।

वैदिक यज्ञ तथा उनका राजनीतिक महत्त्व

वैतान सूत्र(38·15) में राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध को क्षत्रियों का यज्ञ कहा गया है। कैलेण्ड (Calland) ने इन्हें बौधायन कर्मान्तसूत्र के समान ही उपमित किया है। व्यास ने इन्हीं यज्ञों को युधिष्ठिर के लिए महाभारत में करने की सलाह दी है। सर्वमेध यज्ञों में प्रमुख है, जो दश दिन में सम्पन्न होता था। जायसवाल कहते है —

"The Sarvamedha is an exceptional ceremony performed by emperors who are already consecrated to rulership. The ceremony proves the existence of the territorial ideal of a one state India."

(H.P., Ch. 24, p. 15).

अब हम राजसूय और वाजपेय यज्ञों का राजनीतिक महत्त्व देखेंगे —

राजसूय यज्ञ प्रथम फाल्गुन को दीक्षा के साथ शुरू होता था जिसमें अभिषेचनीय, अभ्यारोहणीय आदि आहुतियाँ अनुमति और निर्ऋति देवी को दी जाती थी। सुनाशिरीय यज्ञ में चातुर्मास्य हवि भी दी जाती थी। पुनः रत्नहविषि कृत्य बारहों रत्नियों के यहाँ जाकर राजा सम्पन्न करता था जिसका उद्देश्य यही था कि राजा राज्य के विविध अंगों की अनुमति प्राप्त कर लेता था। मैत्रायणी संहिता में कहा है कि "क्षत्रस्य वा एतान्यंगानि" (4·3·8) तैत्तिरीय-ब्राह्मण(1·7·3·1) में कहा है "यस्य वा एतान्योजस्वीनि भवन्ति तद्राष्ट्रम् ओजस्वी भवति" । शतपथ-ब्राह्मण में राजसूय का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है। रत्नियों के घर हवि देने के बाद राजसूय के विविध अनुष्ठान तथा देवताओं को बलि दी जाती थी। उन बलियों में सत्यार्थ सविता को, गार्हपत्यार्थ अग्नि को, वनस्पत्यर्थ सोम को, वाक्पत्यर्थ

बृहस्पति को, श्रेष्ठत्व-कृते इन्द्र को, पशु-रक्षार्थ रुद्र को, सत्यार्थ मित्र को और धर्मपति बनने के लिए वरुण को बलि दी जाती थी (शत०, 5·3·32-39) यह बलि पशुओं की न होकर व्रीहि और यवान्नों से निर्मित की जाती थी। पुन: उसका 17 प्रकार के जलों (सरस्वती नदी, कूपों, जलाशयों, समुद्र व वर्षा जलों) से अभिषेक किया जाता था। राजा इस मौके पर जनों का भरण-पोषण करने के लिए वचनबद्ध होता था। उसके पैर के नीचे तथा सिर के ऊपर स्वर्ण रखकर उसका अभिषेक अध्वर्यु, सगे-सम्बन्धी, राजन्य और वैश्य अर्थात् सामान्य जन करते थे "तं वै माध्यन्दिने सवने भिषिञ्चति" एष वै प्रजापतिर्य एष यज्ञस्तायते यस्मादिमा: प्रजा: प्रजाता एतम्वेवाप्येतर्ह्यनु प्रजायन्ते तदेनं मध्यत एवैतस्य प्रजापतेर्दधाति मध्यत: सुवति" (शत०, 5·3·5·1)। वह व्याघ्र चर्म पर भी खड़ा होता था, "शार्दूलचर्मोपस्तृणाति ---- शार्दूलं त्विषिमेवास्मिन् एतद्दधातीति" (शत०, 5·3·5·3) "तेन ब्राह्मणोऽभिषिञ्चति ---- तेन स्वो भिषिञ्चति ---- तेन मित्र्यो राजन्योऽभिषिञ्चति ---- तेन वैश्यो - भिषिञ्चति" (शत०, 5·3·5·11-14)। यहाँ कहीं शूद्र का उल्लेख नहीं है। अभिषेक के बाद उसे उष्णीष (शत०, 5·3·5·20-23) और धनुष और तीन बाण(शत०, 5·3·5·27-29) दिए जाते थे । ये तीन बाण उसके तीनों लोकों के रक्षार्थ कर्तव्य का बोध कराते थे। "दिग्व्यास्थापन" या चारों दिशाओं में आरोहण इस यज्ञ का मुख्य कार्य था। पूर्व दिशा में ब्रह्म, दक्षिण से क्षत्र, पश्चिम से विड् और उत्तर दिशा से शूद्र द्रविण के रक्षित होने का आश्वासन प्राप्त होता था (शत०, 5·3·5·13) । उसके बाद राजा का सौ छिद्रों वाले स्वर्ण पात्र जो सौ साल की आयु के परिचायक थे, उससे अभिषेक किया जाता था (शत०, 5·4·2·2)। अभिषेकानन्तर उसे उदुम्बर की आसन्दी पर बैठाया जाता था तथा कुछ वाक्य यजुर्वेद(10·5·17-18) से कहे जाते थे। उसे कहा जाता था "तुम धृतव्रत हो, पाँचों दिशाएँ तथा सम्पूर्ण विश: तुम्हारे सहायक हों" यह कहकर उसकी पीठ पर दण्ड से धीरे-धीरे आघात किया जाता था ताकि उसे स्मरण रहे कि वह भी दण्डाधीन

है। शतपथ-ब्राह्मण में इस क्रिया की व्याख्या करते हुए कहा है कि दण्ड के आघात द्वारा राजा को मृत्युदण्ड से ऊपर उठा दिया जाता है, "अथै-नं पृष्ठस्तूष्णीमेव दण्डैर्घ्नन्ति। तं दण्डैर्घ्नन्तो दण्डवधमतिनयन्ति तस्माद्राजा-दण्ड्यो यदेनं दण्डवधमतिनयन्ति" (शत0, 5·4·4·7)। तत्पर राज्य की जनता उसे स्फ्य (तलवार) प्रदान करती थी जो उसकी भक्ति(devotion) का परिचायक है। राजसूय द्वारा बना राजा महान् हो जाता है, पृथ्वी उससे भय खाती है, "राज्ञ एव राजसूयम्। राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति" (शत0, 5·1·1·12)। "पृथिव्यु हैतस्माद्बिभेति महद्वाऽयमभूद् यो भ्यषेचि यद्वै मायं नावृणीयादित्येषै उहास्यै विभेति यद्वै मेयं नावधून्वीतेति तदनयैवेत-न्मित्रधेयं कुरुते नहि माता पुत्रं हिनस्ति न पुत्रो मातरम् तस्मादेवं जपति" (शत0, 5·4·3·21)।

12 रत्नियों में पुरोहित सर्वोच्च है (तै0सं0, 1·8·9, मै0सं0, 2·6·5) का0सं0, 15·4, तै0ब्रा0, 1·7·3) पर शतपथ-ब्राह्मण(5·3·1) में सेनानी को प्रथम स्थान पर रखा गया है। ऋग्वेद(4·50·7) में बृहस्पति को देवों का पुरोहित कहा है तथा उसके पालन से राजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, "बृहस्पतिं य: सुभृतं करोति", "स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभिवीर्येण"। अन्य जगह ऋग्वेद(4·50·8) में बृहस्पति को इन्द्र के आगे जाने वाला कहा है "यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति" "तस्मै विश: स्वयमेव नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनिपूर्व एति"। "पुरोहित-स्ताभि राजानम् परिगृह्य तिष्ठति समुद्र इव भूमिम्" (ऐ0ब्रा0, 8·40·2) "तस्य राजा मित्रं भवति" (ऐ0ब्रा0, 2·4·4·5)। "द्विषन्तमपबाधते यस्यै वम् विद्वान् ब्राहमणो राष्ट्रगोप: पुरोहित:"। "देवभाग: श्रौतर्ष: स उभयेषाम् कुरूणाम् च सृन्जयाणाम् च पुरोहित आस" (शत0, 2·4·4·5)। शांखायन श्रौतसूत्र(16·29·5) में आता है कि पहले काशि, विदेह और कोशल एक ही थे तथा जालो जातूकर्ण्य उसके पुरोहित थे, "जालो जातूकर्ण्य---

श्याणाम् राज्यम् ---- प्रप ---- काश्य वैदेह्यो: पुरोहितो बभूव, कौशल्यस्य च राज्ञ:"। लेकिन शतपथ-ब्राह्मण सेनानी को प्रथम स्थान पर रखकर राज्य का आध्यात्मिक नियन्त्रण में रहने का सम्बन्ध समाप्त कर देता है।

ऋग्वेद(3·53·1) में सुदास की सफलता का कारण उनके पुरोहित विश्वामित्र थे। ऋग्वेद(8·33·3) में तृत्सुओं का विस्तार वसिष्ठ की बदौलत था, "एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासम् प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठ:" । ऐतरेय ब्राह्मण(7·9) में आता है कि पुनरभिषेक उत्सव में राजा गद्दी से उतरकर तीन बार ब्राह्मण को विनत होकर प्रणाम करता था जिससे क्षत्रिय उसके वश में रहते थे, "नमो ब्रह्मणे- नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मणे" "ब्राह्मण एव तत् क्षत्रम् वशमेति तद् यत्र वै ब्राह्मण: क्षत्रम् वशमेति तद् राष्ट्रम् समृद्धम् तद् वीरवद् हास्मिन् वीरो जायते"। डॉ० आर०के०मुकर्जी सही कहते हैं कि

"The Purohita was the sole associate of the king as his preceptor, or guide, philosopher and friend, He also assumed ldeadership in matters political."

(Hindu Civilization, p. 61).

शतपथ-ब्राह्मण(13·5·1·1) में माथव विदेघ के पुरोहित गौतम राहूगण ने किस प्रकार वैदिक सभ्यता का विस्तार विदेह में किया इसका सम्यक् पता चलता है। गौतम धर्मसूत्र(11·17) में पुरोहित के अनुसार राजा को कार्य करने की सलाह दी गई है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र(11·5·10·14) में ब्राह्मण को धर्म(Spiritual Knowledge) और अर्थ(Political Science) का ज्ञाता होने की बात कही है। आश्वलायन गृह्यसूत्र(3·12) में लड़ाई शुरु होने की पूर्व सन्ध्या पर रथ के पश्च भाग में पुरोहित के खड़े होकर मन्त्र पढ़ने का वर्णन मिलता है।

राजन्य रत्नियों में दूसरे स्थान पर हैं। रत्नियों में राजमहिषी

का स्थान मुख्य है। पत्नी के कारण ही व्यक्ति पूरा बनता है(शत०,5·2·1·10) शतपथ-ब्राह्मण(5·3·1·4) में महिषी अदिति के प्रतीक रूप में आती है। यह अदिति पृथ्वी ही है जो दोग्ध्री धेनु की तरह मनुष्य की कामनाओं को पूर्ण करती है। जायसवाल भी यही बात कहते हैं कि ---

"The underlying principle here is the sacred theory that, without the wife no sacrament could be perfomed, the sacrificer by himself being only one half of his whole spiritual body, the other half being the better half."

(H.P. II,p. 16).

रत्नियों में चौथा स्थान परिवृक्ति (परित्यक्ता) का है यह बात मैत्रायणी संहिता, तैत्तिरीय संहिता और कौषीतकि संहिता में कही गयी है पर तैत्तिरीय ब्राह्मण वावाता(प्रिय पत्नी) को इस स्थान पर मानता है जिससे उस समय की राजनीति में स्त्रियों की दखलन्दाजी नज़रअन्दाज़ नहीं की जा सकती। शतपथ-ब्राह्मण में परिवृक्ति का महत्त्व उसकी विरोधिता के कारण था न कि सहायता के कारण। शतपथ-ब्राह्मण में परिवृक्ति का उल्लेख रत्नियों में नहीं किया गया है। उसे यहाँ पुत्रहीना परित्यक्ता के रूप में वर्णित किया गया है जिसे अभिषेक के दिन राज्य से बाहर बुराई के रूप में निकल जाने के लिए राजा कहता था। सेनानी को शतपथ-ब्राह्मण ने रत्नियों में प्रथम स्थान पर रखा है जबकि अन्य ब्राह्मणों ने उसे पंचम स्थान पर रखा है।

सूत राजा और राज्य के इतिवृत्त का संकलन करते थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र में सूत नामक राजकर्मचारियों का उल्लेख है जिन्हें एक हजार कार्षापण वेतन देने का उल्लेख किया गया है (2·5)। वैसे यह शब्द रथकार के लिए प्रयुक्त होता था। वी०एम० आप्टे (वैदिक एज, पृ० 435-36) में

लिखते हैं --

"The Suta was originally a charioteer and then an employee to whom naturally fell the task of relieving the boredom of the king or warrior, whom he drove on long marches and great destances, by entertaining and encouraging him with stories and specially heroic legends. This fits in very well with the important part the charioteers are supposed to play, chiefly in war, but not rarely also in peace."

ग्रामणी ग्राम-प्रधान को कहते थे। ये ग्रामणी जनता(विश:) के ही व्यक्ति होते थे इसी से शतपथ-ब्राह्मण में इन्हें वैश्य भी कहा गया है (शत0, 5.2.5.6) तथा राजा विश: के प्रतिनिधि रूप वैश्य-ग्रामणियों को भी हवि प्रदान करता था।" इगलिंग(Eggeling) कहते हैं -

"That Grāmaṇī was probably a representative chief from the village nearest to the place of consecration". (Altin, Leben, 162).

क्षत्र या क्षत्रिय उसे कहते हैं जो सैनिक कार्य में निपुण हो। यथा शतपथ-ब्राह्मण (5.3.1.7) में उसे अन्त:पुराध्यक्ष तथा वाजसनेय संहिता (3.13) में उसे द्वार-रक्षक सैनिक कहा है।

राज्य-कोश के नियन्ता को संगृहीतृ कहते है जिसके लिए अर्थशास्त्र में सन्निधाता शब्द (2.5) प्रयोग किया गया है। (टैक्स कलेक्टर) । हालाँकि कुछलोग इसे रथकार मानते हैं।

कर-वसूलने वाले को भागदुघ कहते थे "दी कलेक्टर ऑफ रेवेन्यु" अक्षवाप उसे कहते थे, जो आय-व्यय का हिसाब रखता था। अर्थशास्त्र में इसे ही अक्षपटलाध्यक्ष (2·7) कहा है। "दी कन्ट्रोलर ऑफ गेम्बलिंग" या "एन आफिसर इनचार्ज ऑफ गेम्स" भी उसे कहा जा सकता है।

गोव्यच या गोविकर्तन जंगल विभाग के अधिकारी को कहते थे, जो खेती के विनाशक जंगली जानवरों को विनष्ट करने के लिए था "डिस्ट्रायर ऑफ वीस्ट्स"। यही शब्द शतपथ-ब्राह्मण में गोनिकर्तन नाम से तथा मैत्रायणी संहिता में गोव्यच नाम से मिलता है। मेगस्थनीज़ कहता है कि ये

"Incharge of the huntsman who cleared the land of the wild beasts and fowls which devoured the seeds." Mc Crindle pp. 84-86.

पालागल, तक्षा और रथकार का सम्बन्ध श्रम और शिल्प-कार्य में निपुण लोगों से है। शतपथ-ब्राह्मण (5·2·5·11) में पालागल को लाल पगड़ी, धनुष्-बाण और ढाल (चर्म) का धारक बताया गया है। इस प्रकार बारहों रत्नी समाज के उच्च वर्ग तथा साधारण जनता का प्रतिनिधित्व करते थे। तथा महिषी, परिवृक्ती और वावाता के उल्लेख से बहुपत्नी प्रथा का भी उल्लेख मिलता है। विशः के उच्चारण द्वारा उस समय का वैदिक राष्ट्र एक जातीय स्तर पर आसीन मालूम होता है, "अथैनम् रत्निभ्य आवेद यत्येष वो भरता राजेति। एष वः कुरवो राजेति कौरव्यम्। एष वः कुरु-पाञ्चालम्। एष वो जनता राजेत्यन्यान् राज्ञः" (वा०सं०, 10·9)। रत्न-हर्विषि समारोह इस परिषद् के राजनीतिक महत्त्व को अभिव्यक्त करता है। शतपथ-ब्राह्मण(5·4·4·5) में कहा है कि राजा पुनीत नियमों का धारक है। वह सब कुछ कहने और करने में सक्षम नहीं है। उसे सत्य का ही कथन और अनुकरण करना है, "धृतव्रतो वै राजा न वा एष सर्वस्मा इववदनायसर्वस्माय इव कर्मणे यदेव साधु वदेत् यत् साधु कुर्यात्"।

शतपथ-ब्राह्मण(5·1·1·13) में राजसूय-कर्ता को राजा और वाजपेय-कर्ता को सम्राट् कहा है तथा वाजपेय को राजसूय के बाद करने की सलाह दी गयी है, "राजावै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड् वाजपेयेन । अवरम् हि राज्यम् परम् हि साम्राज्यम्। कामयते वै राजा सम्राड् भवितुम् न सम्राट् कामयते राजा भवितुम्"। वाजपेय, राजसूय से ज्यादा मूल्यवान् है, "वाजपेयेनेष्ट्वा न राजसूयेन यजेत प्रत्यवरोह: स यथा सम्राट् सन् राजा स्यात् तद्वत्")। लाट्यायन श्रौतसूत्र(8·11·1) में कहा है कि जिसे ब्राह्मण और राजन्य अपना प्रमुख मान ले वही वाजपेय करे - "यम् ब्राह्मणा राजानश्च पुरस्कुर्वीरन् स वाजपेयेन यजेत्")। तैत्तिरीय ब्राह्मण में वैश्य को वाजपेय करने से मना किया है "ब्राह्मणक्षत्रिययोरेव वाजपेय: नवैश्यस्य"। पर शांखायन श्रौतसूत्र(16·17·4) में इसे वैश्यों के लिए भी अधिकृत किया है। डॉ० घोषाल (एल०आई०एच०पी०, पृ० 331) में लिखते हैं --

"The purpose and end of this ceremony (Vājpeya) reflect the variety of classes entitled to its perfomance For while one authority prescribes it (evidently in relation to the Vais'ya sacrificer) for one desiring abundance of food, another requires it be perfomed by a king or a brāhmana desirous of lordship. (ādhipatya)."

गोपथ ब्राह्मण मे भी वाजपेय को राजसूय के बाद करणीय बताया है -- "अग्निष्टोमाद् राजसूय, राजसूयाद्वाजपेयो, वाजपेयादश्वमेध: अश्वमेधात् पुरुषमेध: पुरुषमेधात् सर्वमेध:" --- ते वा एते यज्ञक्रमा:" लेकिन आश्वलायन श्रौतसूत्र(11·9·19) में लिखा है कि वाजपेय के बाद राजा राजसूय कर सकता है और ब्राह्मण बृहस्पतिसव - "वाजपेयेनेष्ट्वा राजन्यो राजसूयेन यजेत् - ब्राह्मणो बृहस्पतिसवेन यजेत्"। तैत्तिरीय ब्राह्मण(2·7·6·1)

में राजसूय और वाजपेय को क्षत्रिय यज्ञकर्ताओं हेतु ही बताया है। वाजपेय सम्राट्सव है जबकि राजसूय वरुणसव, "यो वै वाजपेय: स सम्राट् सव: यो राजसूय: स वरुणसव:"। शतपथ-ब्राह्मण(5·3·4·12) में वरुणसव को राजसूय की संज्ञा दी गई है, "वरुणसवो वा एष यद् राजसूयम्"। "बृहस्पतिसवो वा एष यद् वाजपेयम्" (शत०, 5·2·1·19)।

तैत्तिरीय ब्राह्मण(1·3·2·3) में आता है कि इन्द्र ने वाजपेय द्वारा स्वाराज्य और ज्येष्ठत्व प्राप्त किया। इस यज्ञ के अवसर पर एक रथ-दौड़ भी आयोजित की जाती थी जिसमें 17 रथ होते थे। इसका उद्देश्य क्षत्रिय के लिए अपनी शारीरिक शक्ति और सैन्य-गुण का परिचय देना था ---

"The chariot race- an older test for proving the king's superiority in valour and physical powers, it was intended to discover the military qualities of the king or the chief of the tribe."

Prof. R.S. Shama.

बाद में यज्ञ-कर्ता सपत्नीक एक रथ-चक्र पर चढ़ता था जो सूर्य का प्रतीक था। अश्वमेध को सारे यज्ञों का राजा कहा गया है, "राजा वा एष यज्ञानाम् यदश्वमेध:"। "वृषभ एष यज्ञानाम् यदश्वमेध:"। राजसूय आदि में राजा स्वयं ही समर्थ होता था पर अश्वमेध में अपने पौरुष तथा तुलनात्मक राजनैतिक अधिकार की परीक्षा होती थी और जो निर्विरोध श्रेष्ठता प्राप्त करता था वही यह यज्ञ सम्पन्न करता था। शतपथ-ब्राह्मण(7·5·2·6) में अश्व को प्रजापति की आँख से उत्पन्न बताया गया है। वरुण भी इस अश्व के अधिकारी है (शत० 5·3·1·5)।

वैवाहिक और साम्पत्तिक-संविधान

जब पृथ्वी से धर्म का लोप होने लगा तब संविधान(धर्मसंहिता) की संरचना प्रारम्भ हुई । "धर्मैकतान: पूर्वा: यदासन् सत्यवादिन: ---- नष्टे धर्मे मनुष्याणाम् व्यवहार: प्रवर्तते ---- "(नारदस्मृ०, 1·2)।

विवाह के विधान के अन्तर्गत वैदिक समय में जाया को ही घर मानकर उसे पूज्य समझा जाता था। "जायेदस्तम् ---- "(ऋ०, 3·53·4) तथा भाई और बहन के मध्य विवाह प्रतिषिद्ध था। यमी-यम का उदाहरण द्रष्टव्य है ---

"न वा उ ते तन्वा: तन्वं संपपृच्यां पापमाहुर्य: स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत् प्रमुद: कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ।।"
(ऋ०, 10·10·12)

पुरूरवा और उर्वशी का विवाह महज एक "कन्ट्रैक्ट" या समझौता (एग्रीड इवेन्ट) था। उर्वशी कहती हैं ---

"पुरूरव: पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि" तथा
"न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता"
(ऋ०, 10·95·2, 15)

डॉ० पाल ठीक ही कहते हैं ---

"Urvashi lived with Pururava more as a concubine than as his married wife."

अत: उस समय विवाह के निम्न प्रकार थे ---

1- "वहतु" विवाहोत्सव जिसमें कन्या सभी उपस्थित लोगों के समक्ष गहनों और वस्त्रों से सुसज्जित होकर पतिगृह जाती थी। कन्यादान पिता या भाई करता था। गृह्यसूत्रों में वर्णन के अनुसार उनके साथ गृह्याग्नि

(हाउसहोल्ड फायर) भी लायी जाती थी --

"हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्"

(ऋ०, 10·109·3)

"श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः"

(ऋ०, 1·184·3)

"कन्या इव वहतुमेतवा उ अन्जन्जाना अभिचाकशीमि"

(ऋ०, 4·58·9)

"त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ।।"

(ऋ०, 10·17·1)

"यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः"

(अथर्व०, 10·1·1)

"ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु ये धितस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ।।"

(अथर्व०, 14·2·9)

"त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीदं विश्वं भुवनं वियाति"

(अथर्व०, 3·31·5)

ऐतरेय ब्राह्मण, 4·7·1 तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण 1·5·1·2 में भी "वहतु" का वर्णन है।

"चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यन्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ।।"

(ऋ०, 10·85·7)

"आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व"

(ऋ०, 10·85·20)

"पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदासि ।।"

(ऋ०, 10·85·26)

"तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह"

(ऋ0, 10·85·38)

"सूर्याया : वहतु: प्रागात् सविता यमवासृजत्"

(ऋ0, 10·85·13)

"जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्, पुंस इद्भद्रो वहतु: परिष्कृत:।
यदित् सदस्थमभि चारु दीध्यगावो यच्छासन् वहतुं न धेनव: ।।"

(ऋ0, 10·32·3)

"सं जायां पत्या सृज" (ऋ0, 10·85·22)

"ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि"

(ऋ0, 10·85·24)

"सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत"

(ऋ0, 10·85·33)

"सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवा:"

(ऋ0, 10·85·23)

2- कन्या का हरण करके उसके पिता की इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी का उल्लेख पुरुमित्र की कन्या का विमद द्वारा हरण करके उसके प्रिय से उसकी शादी कराने द्वारा हमें प्राप्त होता है —

"यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतु रथेन"

(ऋ0, 1·116·1)

"युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथु: पुरुमित्रस्य योषणाम्"

(ऋ0, 10·39·7)

3- लड़की के पिता द्वारा लड़के से धन लेकर उसे लड़के के हाथ में सौंपने का वर्णन भी वेद में मिलता है —

"अश्रवम् हि भूरिदावत्तरावाम् विजामातुरुत वा घा स्यालात्"

(ऋ0, 1.109.2)

स्वयंवर का वर्णन भी प्राप्त होता है जिसे गन्धर्व-विवाह कहा जा सकता है। यथा --

"कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जनेचित् ।।"

(ऋ0, 10•27•12)

"आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ।।"

(अथर्व0, 2•36•1)

"असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।
देवाः प्रहिणुत स्मरमसौ मामनुशोचतु"

(अथर्व0 6•130•2)

सूत्र काल में गौतम ने चार आर्ष-विवाहों का प्रकार सुनिश्चित किया -- ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य। आसुर और गान्धर्व विवाह भी उस समय प्रचलित थे पर वे बहुत धर्ममान्य न थे। ऋग्वेद में प्रवर(ऋषि-पूर्वज) का भी वर्णन "आर्षेय" के रूप में मिलता है "आर्षेयं जमदग्निवन्नः" (ऋ0,9•97•51)। माता की सात और पिता की पाँच पीढ़ी (सगोत्र) में केवल विवाह सम्बन्ध आपस्तम्ब(2•11•15) में निषिद्ध कहा है।

पहले विवाह अधिक उम्र में होता था यथा घोषा का विवाह--
"घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्"

(ऋ0, 1•117•7)

ऋग्वेद(10•85•28) में आगत "नीललोहित" (डीप रेड) शब्द कन्या की युवावस्था का द्योतक है जब उसे मासिक धर्म शुरू होता था अर्थात् 16 वर्ष के आसपास --

"नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ।।"

(ऋ0, 10•85•28)

विधवा विवाह भी होता था, प्रमाण निम्न है --

"को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्य न योषा कृणुते सधस्थ आ"

(ऋ0, 10·40·2)

"या पूर्वं पतिं वित्वाऽथान्यं विन्दते परम्"

(अथर्व0, 9·5·27)

वशिष्ठ (ध०उ0 17) में "पुनर्भू" का उल्लेख करते हैं --

"क्लीबम् पतितमनुमत्तम् भर्त्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते सा पुनर्भूर्भवति"।

विधवा में नियोग का प्रमाण मनुस्मृति(8·62) में मिलता है, जो एक पुनीत कार्य है --

"विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ।।"

(मनु0, 8·62)

गौतम (28·21-22) में कहते हैं "पिण्डगोत्रर्षिसम्बन्धा: रिक्थं भजेरन् स्त्री वा अनपत्यस्य बीजम् वा लिप्सेत"।
पर यह नियोग रिक्थ-लोभ से न करे ---

"रिक्थलोभान्नास्ति नियोग:" ।

वेद में बहुपत्नीत्व (Polygamy) का भी वर्णन मिलता है --

"असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ---- "

(ऋ0, 10·159·5)

"समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ।।"

(ऋ0, 10·159·6)

"आदित्पतिमकृणुतं कनीनाम्" (ऋ0, 1·116·10)

यहाँ च्यवन को अनेक कन्याओं का पति बताया गया है।

"सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः"

(ऋ0, 1·105·8)

"यदेकस्मिन् यूपे द्वौ रशने परिव्ययति तस्या द्वौ पती विन्दते"

(तै0सं0, 6·6·4·3)

"तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बह्वः सह पतयः"

(ऐ0ब्रा0, 12·11)

"पत्न्योऽभ्यञ्जन्ति अश्वमेधे"

(तै0ब्रा0, 3·8·4)

याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं पहली ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी दूसरी साधारण गृहस्थ कात्यायनी (बृह0, 4·5)। ऐतरेय ब्राह्मण(33·1) में हरिश्चन्द्र की 100 रानियों का उल्लेख मिलता है।

बहुपति प्रथा(Polyandry) भी हमें ऋग्वेद में देखने को मिलती है। यथा —

"पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह"

(ऋ0, 10·85·38)

ऋग्वेद(1·167·4-6) में मरुतों की समान पत्नी रोदसी का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में अश्विनौ के एक पत्नी का उल्लेख मिलता है —

"विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः"

(ऋ0, 8·29·8)

एक बार विवाह होने के बाद पत्नी का अन्य विवाह होने का भी संकेत प्राप्त होता है —

"या पूर्वं पतिं वित्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् —

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः —

(अथर्व0, 9·5·27-28)

उपर्युक्त उद्धरणों से वैदिककालीन वैवाहिक- संविधानों की अस्पष्ट झलक मिल जाती है।

सम्पत्ति का संविधान

ऋग्वेद(1·73·1) में रयि,(ऋ0,1·31·14) में रेक्ण, (ऋ0,1·162·16) में हिरण्य तथा ऋग्वेद(7·54·3) में हमें रत्न का उल्लेख प्राप्त होता है। अचल सम्पत्ति (Immoveable Property) का वर्णन हमें निम्न मन्त्र में मिलता है। यथा -- उर्वर, क्षेत्र, गृह, प्रासादादि --

"क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि
गामश्वं पोषयित्न्वा सनो मृळातीदृशे ।
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मि धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ।
मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम"
(ऋ0, 4·57·1-3)

"तोके वा गोषु तनये यदप्सु विक्रन्दसि उर्वरासु ब्रवेते"
(ऋ0,6·25·4)

रथ या "कार" का वर्णन हमें निम्न मन्त्र में मिलता है --

"सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्ण सुवृतं सुचक्रम्"
(ऋ0,10·85·20)

परिवार व ग्राम के स्वामी(ग्रामणी) होने का वर्णन भी हमें मिलता है --

"सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।।"
(ऋ0, 10·62·11)

"तोके वा गोषु ---- ब्रवेते" (ऋ0,6·25·4)

कक्षीवान् द्वारा वेद में अपना सर्वस्व अपने पिता को देने का वर्णन है, जो उन्हें स्वनय से मिला था --

"उप मा श्यावा: स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थु:।
षष्टि : सहस्रमनु गव्यमागात् सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम्।।"
(ऋ0, 1·126·3)

अग्नि सारे धनों के स्वामी हैं --

"दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां य: प्रथमो दक्षिणामाविवाय"
(ऋ0, 10·107·5)

इस प्रकार हमें वेदों में दक्षिणा या "गिफ्ट" (Gift) का प्रभूत वर्णन मिलता है। वेद में भूमि-मापन का भी वर्णन है --

"क्षेत्रमिव विममुस्तेजनेनं एकं पात्रमृभवो जेहमानम्"
(ऋ0, 1·110·5)

वेद में अप्राप्त की प्राप्ति (योग) तथा प्राप्त के संरक्षण (क्षेम) का भी वर्णन मिलता है --

"वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभि: सदा न:।"
(ऋ0, 7·54·3)

युद्ध में प्राप्त सम्पत्ति का भी वर्णन मिलता है --

"दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत हिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन्।।
न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजा:।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ।
भोजा जिग्यु: सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासा:।
भोजा जिग्युरन्त: पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूता: प्रयन्ति।
भोजमश्वा: सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणाया: ।

भोजं देवासो वता भरेषु भोज: शत्रून्त्समनीकेषु जेता ।"

(ऋ०, 10·107·7-11)

दौड़(race) का वर्णन हमें ऐतरेय ब्राह्मण(2·25) में मिलता है। निधि (Treasure) का वर्णन हमें निम्न मन्त्र में मिलता है --

"यद् विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद् --- "।

(ऋ०, 1·116·11)

"अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिंपणीनां परमं गुहा हितम्"

(ऋ०, 2·24·6)

" "विश्वजिता सर्वस्वेन यजेत्" (का०उप०, 3·16) में गिफ्ट का वर्णन है। इन सर्वस्व दक्षिणा में सारी सम्पत्ति, पुत्र और पत्नी भी शामिल है।

दायभाग

दाय का वर्णन हमें ऋग्वेद में "रिक्थ" के रूप में मिलता है। यथा --

"अमस्य दायं विभजन्त्येभ्य:"

(ऋ०, 10·114·10)

"ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्"

(ऋ०, 2·32·4)

उस बहन को दाय भाग नहीं मिलता, जिसका भाई मौजूद हो -

"न जामये तान्वो रिक्थमारैक्"

(ऋ०, 3·31·2)

मनु द्वारा पुत्रों को दाय देने का वर्णन तैत्तिरीय संहिता में मिलता है --

"मनु: पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् स नाभानेदिष्ठं ब्रह्मचर्यं वसन्तं निरभजत्" (तै०सं०, 3·4·9·4)

नियमानुसार ज्येष्ठ पुत्र को दायभाग मिलता था --

"तस्मात्: पुत्राणाम् दायम् धनतममिवोपेतितम् मन्यन्ते यमेवेयम् भविष्यतीति"

(ता०ब्रा०, 16·4·3-5)

ऋग्वेद(3·32·2) की व्याख्या में निरुक्त(3·9) में जो लिखा है, उसका अँग्रेजी रूपान्तर इस प्रकार है,

"Not to sisters should the begotten son give the rikth or inheritance, She is made the receptacle for the child of her husband."

आपस्तम्ब(2·6·14·12-13) ने बड़े को दादाय-भागी बनाने का विरोध किया है "ज्येष्ठोदायाद इत्येके, तद् शास्त्र-विप्रतिषिद्धम्" तथा "ज्येष्ठं पुत्रं धनेन निरवसाययन्ति" (तै०सं०, 2·5·2·7) ।

पिता के वृद्ध होने पर उनकी सम्पत्ति पुत्र को मिलती थी --

"वित्वा नर: पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्विवेदोभरन्त"

(ऋ०, 1·70·5)

ऋग्वेद के "सम्राज्ञी श्वसुरे भव"(ऋ०, 10·85·46) मन्त्र के अनुसार पुत्र अपनी पत्नीसहित बुढ़ापे में अपने पिता की सम्पत्ति का मालिक होता था तभी तो बहू सम्राज्ञी बनती थी। पिता का पुत्र पर पूरा अधिकार था--

"पिता पुत्रस्येशे" (का०सं०, 11·4) तथा

"तस्य पुरुषस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु मातापितरौ प्रभवत:"

(वसि०, 15·2)

पिता पहले पुत्र का फिर पुत्र पिता का सम्भरण करता था --

"तस्मात् पूर्वे वयसि पुत्रा: पितरमुपजीवन्ति ---- तस्मात् उत्तरे वयसि पुत्रान् पितोपजीवति" (शत०, 12·2·3·4)

"स यद्यगद: स्यात् पुत्रस्यैश्वर्ये पितावसेत् परिव्रा व्रजेत्"

(कौ०उप०, 2·15)

स्त्री का दाय में कोई हिस्सा नहीं था --

"नात्मनश्च नेशते न दायस्य च नेशते"

(शत०,4·4·2·13)

मनु कहते है बालक और स्त्री के धन की रक्षा राजा करें --

"बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशव: ।
वशाऽपुत्रासुचैवं स्याद्रक्षणं निष्कुला सु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ।"

(मनु०, 8·28)

"औरस क्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ"

(मनु०, 9·165)

"न भ्रातरो न पितर: पुत्रा रिक्थहरा: पितु: ।
पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ।।"

(मनु०, 9·185)

स्त्री का धन मनु ने छ: प्रकार का बताया है --

1- अध्यग्नि - विवाह के समय प्राप्त ।

2- अध्यावाहनिक - निमन्त्रण के समय दिया गया ।

3- प्रीतिकर्मणि दत्तम्

4- भाई,माँ या पिता से प्राप्त

5- अन्वाधेय - विवाहोपरान्त प्राप्त

6- पत्या प्रीतेन दत्तम् ।

"अध्यग्नि-अध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ।
अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ।
पत्यौ जीवति वृत्ताया: प्रजायास्तद्धनं भवेत्।"

(मनु०, 9·194-195)

ऋग्वेद(3·31·1) की व्याख्या में यास्क पुत्र-पुत्री में भेद नहीं मानते "दुहितु: पुत्रभावम्"। यास्क(नि0, 3·4·12-13) में कहते हैं कि लोग पुत्री तो दूसरों को दे देते हैं पर पुत्र नहीं,

"तस्मात् स्त्रियम् जातम् परा ऽस्यन्ति न पुमांसमिति"

"स्त्रीणाम् दान-विक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंस:।"

पुन: वह निरुक्त(3·4·7) में कहते हैं कि दायभाग दोनों को समान मिले —

"अविशेषेण मिथुना: पुत्रा दायाद इति।"

ऋग्वेद(1·124·7) की व्याख्या में (नि0, 3·4·17) में वह भ्रातृहीन कन्या का पिता की सम्पत्ति में हिस्सा मानते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण (33) के अनुसार विश्वामित्र ने अपने पचास पुत्रों को छोड़कर शुन:शेप को अपना पुत्र बनाकर उसे सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया था। यास्क नि0 6·9 में विजामाता का अर्थ क्रीतापत्नी का पति करते हैं, "विजामातुरुत वा घा स्यालात्"(ऋ0, 1·109·2)। गौतम(28·19) में कहते हैं कि पुत्रहीन का धन उसके सपिण्ड, सगोत्र, सप्रवर या उसकी पत्नी ले सकते हैं "पिण्डगोत्रर्षिसम्बन्धा: रिक्थं भजेरन् स्त्री वानपत्यस्य"।

"स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायादीरपि —— "

(तै0सं0, 6·5·8·2)

अविवाहित कन्या पिता का दाय पाती थी —

"अमाजूरिव पित्रो: सचा सती समानादासदसस्त्वामिये भगम्"

(ऋ0, 2·17·7)

विधवा अपने पति की सम्पत्ति भी प्राप्त करती थी —

"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्"

(ऋ0, 1·124·7)

"परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन्"

(ऋ0, 10·102·11)

क्रीतापत्नी का धन में अधिकार न था. "क्रीता द्रव्येण या नारी न सा पत्नी विधीयते" (बौ०, 1·11·20)

अन्य उद्धरण भी द्रष्टव्य है --

"तेषामप्राप्तव्यवहाराणाम् अंशान् सोपनयान् सुनिगुप्तान् निदध्युरव्यवहार-प्रापणात्" (बौ०, 2·2·42)

"उत्पत्यैवार्थस्वामित्वम् लभेत्"

मिताक्षर 2·114(विज्ञानेश्वर)

"अलंकारो भार्याया ज्ञातिधनम् चैके"

आपस्तम्ब

"मातुः परिणेयम् स्त्रियो विभजेरन्"

बौधा०,2·2·49

स्वामी और सेवक-विवाद

गौतम(10·66) में जो कहते हैं उसका अंग्रेजी रूपान्तर प्रस्तुत है

"All men must serve those who belong to higher castes".

पर वहीं(10·67 गौ०) में वह कहते है --

"If Āryans and Non-Āryans interchange their occupations and conduct the one taking that of the other, there is equality between them."

पञ्चम अध्याय

वेदों में राष्ट्र का धार्मिक स्वरूप

वेदों में राष्ट्र का धार्मिक स्वरूप

"यो धृत: सन् धारयते स धर्म: अथवा ध्रियमाण: सन् धरति स्वयं धर्मिणा ध्रियते धर्मिणं च स्वस्वरूपे वस्थापयति स धर्म:।" इसी को महाभारत में इस प्रकार कहा है --

"धारणात् धर्ममित्याहु: धर्मेण विधृता: प्रजा: ।"

धर्म के विषय में कुछ मान्य परिभाषाएँ और व्याख्याएँ निम्नवत् हैं जिनसे धर्म के विषय में स्पष्ट जानकारी मिलती है --

"श्रुतिप्रमाणको धर्म:" (हारीत)

"वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनां आत्मनस्तुष्टिरेव च ।।"
(मनुस्मृति 2.6)

"चोदनालक्षणार्थो धर्म:" (पूर्वमीमांसा)

"यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:"
(कणाद)- वैशे. 1.1.2

"सर्वधर्ममयी दया।"

"अद्रोह: सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्म: सनातन: ।।"

"धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् ।
महाजनो येन गत: स पन्था: ।।"

"श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।"

"न तत् परस्य समादध्यात् प्रतिकूलं यदात्मन: ।
एष सामासिको धर्म: कामादन्य: प्रवर्तते ।।"

"सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः ।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद नेतरः ॥"

(महा०,शा०, 261·9)

"त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति"

(छा०, 2·23)

"धर्मं चर" (तैत्ति०, 1·11)

"न जातु कामान्न भयान्न लोभात् ।
धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतोः ॥"

"देशधर्मान् जातिधर्मान् कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ।
पाषाण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन् उक्तवान् मनुः॥"

(मनु०, 1·118)

"यं आर्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मः ।
यं गर्हन्ते सोऽधर्मः ।

"आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥"

(मनु०, 12·106)

"केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीने विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥"

(बृहस्पति)

"न धर्माधर्मौ चरत आवां स्व इति, न देवगन्धर्वाः
न पितर आचक्षते अयं धर्मो अयं अधर्म इति"।

(आप०, 1·20·6)

"धर्मज्ञः समयः प्रमाणम्" (मनु०,

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥

(मनु०, 4·176)

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह: ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु: ।।"

(मनु०, 10·63)

"धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह: ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।"

(मनु०, 6·92)

"शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नत: ।"

"इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम् ।।"

(याज्ञ०स्मृति)

"सर्वत्र विहितो धर्म: सत्यप्रेत्य तप: फलम् ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया ।।"

(महा०शा०, 174·2)

"वर्धत्यधर्मेण नरस्ततो भद्राणि पश्यति ।
तत: सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ।।"

(महा०,वन०, 94·3)

"धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम् ।
न तत् सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्यते ।।"

(महा०शा०, 293·8)

"धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान: ।
येऽधर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।।"

(महा०उद्योग०, 95·51)

"परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नर: । "

(महा०,शा०, 290)

"ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित् श्रृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ।।"

(महा०,

"युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुम: ।
दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुम: ।।"

(महा०,आदि०,1·110)

"धर्मे मतिर्भवतु व: सततोत्थितानां ।
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धु: ।।"

(महा०,आदि०,2·391)

"धर्मार्थकामा: सम्मं एव सेव्य: ।
यो ह्येकासक्त: स जनो जघन्य: ।।"

वेद में सुरा, क्रोध, जुआ, अज्ञान आदि को घोर अधर्म बताकर छोड़ने के लिए कहा है --

"न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुति: सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्ति:।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारेस्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ।।"

(ऋ०, 7·86·6)

सात मर्यादाओं का पालन करने की प्रेरणा की गई है --

"सप्तमर्यादा: कवयस्ततक्षु ---- "

(ऋ०, 10·5·6)

धर्म "पूर्व्य" और "दीर्घश्रुत" (Tradition of the Old Custom) है --

"अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम। मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत"

(ऋ०, 7·25·17)

विष्णु ही धर्म के धारक हैं --

"त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य: । अतो धर्माणि धारयन् ।"

(ऋ०, 1·22·109)

हम धर्म का लोप न करें --

"अचित्ती यत्तव धर्मायुयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देवरीरिष:"

(ऋ०, 7·89·5)

वाजसनेय संहिता(38·14) में कहा है, "धर्मासि सुधर्मा मेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रंधारय विशं धारय" ।

(वाज०, 38·14)

"ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च"

(अथर्व०, 11·7·17)

"धर्मेण तदेतत् क्षत्राय क्षत्रम् यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात् परं नास्त्यथो अबलीयान् बलीयांसम् आसंसते धर्मेण यथा राज्ञैवम् यो वैसधर्मः सत्यं वै तत्"

(बृ०उप०, 1·4·14)

वेद में पूर्व और शाश्वत दो धर्म कहे गए हैं। प्रथम धर्म के रूप में वेद के निम्न मन्त्र द्रष्टव्य है --

"समिध्यमानः प्रथमानुधर्मा समक्तुभिरज्यते ।
शोचिष्केशो घृत विश्ववारः । निर्णिक पावकः सुयज्ञो
अग्निर्यजथाय देवान्" ।

(ऋ०, 3·17·1)

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्"

(ऋ०, 10·90·16)

"वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवंगाः।
सुवितो धर्मप्रथमानुसत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनुपत्म ।।)

(ऋ०, 10·56·3)

"तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव"

(अथर्व०, 2·2·1)

शाश्वत धर्म के रूप में निम्न मन्त्र लिया जा सकता है जिसमें वैश्वानर देव के लिए स्तोत्र गाए जा रहे है। वह वैश्वानर अग्निदेवों की सेवा करते हैं इसी कारण सनातन धर्म दूषित नहीं हो पाते --

"वैश्वानराय पृथुपाजसे विपोरत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ।"
(ऋ०, 3·3·1)

यह पुरुष चारों वेदों से युक्त परमधर्ममय है --

"तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविध: । तस्य यजुरेव शिर: । ऋग्दक्षिण: पक्ष:। सामोत्तर: पक्ष: । आदेश: आत्मा। अथर्वाङ्गिरस: पुच्छं प्रतिष्ठा" । (तैत्ति०उप०)

पृथ्वीस्थ धर्म का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"यस्त्वद् होता पूर्वो अग्ने यजीयान् द्विता च सत्ता स्वधया च
शंयु: तस्यानुधर्म प्रयजा चिकित्वो अथानोधाध्वरं देववीतौ ।
(ऋ०,3·17·5)

सूर्य का धर्म देखें --

"ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवोदवी धर्मणा सूर्य: शुचि: ।।"
(ऋ०,1·160·1)

"समिधान: सहस्त्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि"
(ऋ०, 15·26·6)

"उत पासि सवित: त्रीणि रोचना ---
उत मित्रो भवति देव धर्मभि: ।
(ऋ०, 5·81·4)

"यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम ।
उपमित्रस्य धर्मभि: ।"
(ऋ०, 8·52·3)

"विशां राजानमद्भुतं अध्यक्षं धर्मणामिमम् ।
अग्निमीळे स उ श्रवत् । (ऋ०,8·43·24)

सोम का धर्म द्रष्टव्य है --

"वृषा सोम ---- वृषा धर्माणि दधिषे"

(ऋ0, 9·64·1)

"व्यानशि: पवसे सोम धर्मभि:,

पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजति ।"

(ऋ0,9·86·5)

"इन्दु धर्माणि ऋतुथा वसानो ---- "

ऋ0, 9·97·12)

"अन्नदाता कृषकों को नमस्कार है --

"लाङ्गलेभ्यो नम:" (अथर्व0, 2·8·4)

सोम का धर्म देखें --

"स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो,

दिव्या च सोम धर्मभि: । "

(ऋ0, 9·107·24)

ईश्वर ही धर्म द्वारा रक्षक हैं --

"त्वं विश्वस्माद् भुवनात् पासिधर्मणा

असुर्यात् पासि धर्मणा ।

(ऋ0, 1·134·5)

"विभ्राड् बृहत् सुभृतं वाजसातमं

धर्मन् दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।"

(ऋ0,10·170·2)

"स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि

पुत्रस्य पाथ: पदमद्वयाविन: ।"

(ऋ0, 1·159·3)

"इमा उते प्रण्यो वर्धमाना ।

मनोवता अधनु धर्मणिग्मन् ।।" (ऋ0,3·38·2)

"दिवो धर्मन् धरुणे सेदुषो नॄन् —— ननशुः"

(ऋ०, 5·15·2)

"धर्मासि सुधर्मा" (यजु०, 38·14)

"धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे"

(यजु०, 38·19)

"वायुमारोह धर्मणा" (सा०, 483)

"धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे" (अथर्व०, 20·62·5)

"धर्मोऽसि विशि" (यजु०, 20·9)

"नो देवः सविता धर्म साविषत्" (यजु०, 9·5)

धर्म से ध्रुवक्षेम की प्राप्ति होती है —

"व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना"

(ऋ०, 5·72·2)

धर्म से ही मित्र और वरुण सब कुछ धारण करते हैं —

"धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता
व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।"

(ऋ०, 5·63·7)

"द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा ।
विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ।"

(ऋ०, 6·70·1)

धर्म ही सर्वस्व है —

"स प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि —— स व्रता ।"

(ऋ०,

"या इन्द्र प्रस्वः त्वा सा गर्भमचक्रिरन् ।
परिधर्मेव सूर्यम् ।" (ऋ०, 8·6·20)

"असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजनम् । (ऋ०, 9·7·1)

धर्म से ही ऋत की प्राप्ति होती है -

"अर्चन् मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्रतिन्वान् ऋतं बृहत् ।

(ऋ०,

"यस्य धर्मन्त्स्वरेनी: सपर्यन्ति मातुरूध:"

(ऋ०, 10·20·2)

हम स्त्रियों से छल न करें, कदाचार न करें --

"मा जामिं मोषी:" (अथर्व०, 7·99·1)

"पतिं देवि राधसे चोदयस्व" (अथर्व०, 7·46·3)

"मा तन्तुश्छेदि" (ऋ०, 2·28·5)

स्त्री सिंहिनी है,

"सिंह्यसि" (यजु०, 5·12)

"जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात्"

(अथर्व०, 6·120·2)

"अवीरामिव मामियं शरारुरभिमन्यते"

(अथर्व०, 20·126·9)

जो जैसा करता है, वैसा ही भरता है, यही धर्म है।

"पक्तारं पक्व: पुनराविशाति"

(अथर्व०, 12·3·48)

"कृत्या: सन्तु कृत्याकृते" (अथर्व०, 5·14·5)

"कृत्या कर्तारमृच्छतु" (अथर्व०, 5·14·11)

"अघमस्त्वघकृते" (अथर्व०, 10·1·5)

अकेले खाना भी अधर्म है --

"केवलाघो भवति केवलादी" (ऋ०, 10·117·6)

"न स्तेयमद्मि" (अथर्व०, 14·1·57)

"इष्कृणुध्वम्" (ऋ०, 10·101·2)

सत्य की नाव ही पार लगाती है --

"सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्"

(ऋ०, 9·73·1)

हम ईर्ष्या-द्वेष-निन्दा न करें --

"ईर्ष्याया ध्राजिं --- निर्वापयामसि"

(अथर्व०, 6·18·1)

"आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतन"

(ऋ०, 10·63·12)

"निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु"

(ऋ०, 5·2·6)

"मा निन्दत" (ऋ०, 4·5·2)

"निन्दात् तुच्छ्यान् कामान्" (ऋ०, 5·42·10)

"ईर्ष्यामृतं मनः" (अथर्व०, 6·18·2)

"शपथः शपथीयते" (अथर्व०, 5·14·5)

"निदं निदं पवमान नितारिष"

(ऋ०, 9·79·5)

"रक्षा समस्य नो निदः" (सा०, 780)

"शप्तारमेतु शपथः" (अथर्व०, 2·7·5)

अन्दर-बाहर एकरूपता बनी रहे --

"यदन्तरं तद्बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्"

(अथर्व०, 2·30·4)

हम लालच न करें, श्रेष्ठ बनें, देवत्व को प्राप्त हों।

"मा गृधः कस्यस्विद्धनम्" (यजु०, 40·1)

"श्रेष्ठा भूयास्म" (अथर्व०, 18·4·87)

"तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीः" (अथर्व०, 18·4·7)

"शाकी भव" (ऋ०, 1·51·8)

"देवा भवथ" (ऋ0, 3·54·7)

"मा पणिर्भू:" (ऋ0, 1·33·3)

"शक्वरी: स्थ" (अथर्व0, 16·4·7)

"मा भेर्मा रोक्" (यजु0, 16·47)

"माभि मंस्था:" (यजु0, 13·41)

"मा हृणीयथा:" (सतम0, 227)

"मा वि जिह्वर:" (अथर्व0, 18·3·53)

"उत्थापय सीदत:" (अथर्व0, 12·3·30)

("उदीर्ध्वम्) (ऋ0, 1·113·16)

हम दुर्गुण से बचें, ऋषि बनें -

"यद् भद्रं तन्न आसुव" (यजु0, 30·3)

"ऋषि: स यो मनुर्हित:" (ऋ0, 10·26·5)

हम मीठा बोलें, और विनम्र बनें —

"भूयासं मधुसंदृशम्" (अथर्व0, 1·34)

"पर्णाल्लघीयसी भव" (अथर्व0, 10·1·29)

"भद्र वाच्याय प्रेषितो मानुष:" (यजु0, 21·61)

"वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु"

(अथर्व0, 9·1·19)

"घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत"

(अथर्व0, 20·65·2)

पाप का प्रभाव भोजन के छोड़ने से दूर होता है —

"मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम्" "

(ऋ0, 7·88·6)

"आग: पृत्वता कराम" (यजु0, 19·6·2)

"एनस एनसोऽवयजनमसि" (यजु0, 8·13)

हम आँखों और कानों से सत्य एवं भद्र ही धारण करें —

"भद्रं कर्णेभि: श्रृणुयाम देवा ।
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा: ।"

(यजु0, 25·21)

"सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम्"

(अथर्व0, 16·2·4)

सारी दिशायें हमारी मित्र हों —

"सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु"

(अथर्व0, 19·15·6)

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" (यजु0, 36·18)

सबमें भ्रातृभाव हो -

"अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधु: सौभगाय ।"

(ऋ0,5·60·5)

आगे बढ़े चलो -

"उत्तिष्ठ प्रेहि प्रद्रव" (अथर्व0, 4·12·6)

"दूरे पूर्णेन वसति, दूर ऊनेन हीयते"

(अथर्व0, 10·8·15)

"प्रेहि प्रेहि" (अथर्व0, 18·1·54)

"मा क्षणिष्ठा: परा इह" (अथर्व0, 10·1·16)

कर्तव्य कर्म ही धर्म है —

"देवो व: सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे"

(यजु0, 1·1)

"मा वनि" व्यथयीर्मम" (अथर्व0, 5·7·2)

हम व्रती बनें -

"व्रतं कृणुत" (यजु0, 4·11)

"इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि" (यजु0, 1·5)

"ब्राह्मणा व्रतचारिणः" (अथर्व०, 4·25·13)

हम अपरिग्रह करें -

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" (यजु०, 40·1)

"नैवेशिषा अरिः" (यजु०, 33·82)

"देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि"

(अथर्व०, 5·11·9)

हम शौच सम्पन्न हों ---

"पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः"

(यजु०, 19·39)

"वाचं ते शुन्धामि, प्राणं ते शुन्धामि, चक्षुस्ते शुन्धामि, श्रोत्रं ते शुन्धामि, चरित्रांस्ते शुन्धामि।"

(यजु०, 6·14)

हम सत्य का पालन करें -

"सत्यं चर्त च चक्षुषी" (अथर्व०, 9·5·21)

"ऋतं पिपर्त्यनृतं नियाति"

(अथर्व०, 9·10·23)

"सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्" (अथर्व०, 4·9·6)

"सत्यमहं गभीरः काव्येन" (अथर्व०, 5·11·3)

"विप्रा ऋतस्य वाहसा" (अथर्व०, 20·138·2)

"यदुवथानृतं जिह्वया वृजिनं बहु" (अथर्व०, 1·10·3)

"परिपाणमसि परिमाणं मे दाः" (अथर्व०, 2·17·7)

हम तप करें तथा ऊपर उठें ---

"दीक्षा तपसोस्तनूरसि" (यजु०, 4·2)

"तपसे स्वाहा। तप्यते स्वाहा। तप्यमानाय स्वाहा"

(यजु०, 39·12)

"अन्तर्हस्तं कृतं मम" (अथर्व0, 7·50·2)

"सुकर्माण: सुरुच:" (अथर्व0, 18·3·22)

"उद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे" (अथर्व0, 19·68·1)

"आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्"

(अथर्व0, 5·30·7)

"मा च न: किंचनाममत्" (अथर्व0, 10·5·23)

ईश्वर प्रणिधान भी हम करें --

"देवस्य पश्य काव्यम्" (ऋ0, 10·55·5)

"पावमानीर्यो अध्येति" (ऋ0, 9·67·31)

"तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम:" (अथर्व0, 10·8·1)

मैं धर्म करके मोक्ष पाऊँ --

"सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम्।
दिवं पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योति: ।।"

(यजु0, 8·52)

"पाहि चतसृभिर्वसो" (साम0, 1544)

"अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि" (अथर्व0, 2·10·1)

हम गायों का आदर करें --

"गावो घृतस्य मातर:" (अथर्व0, 6·9·3)

"एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपम् गोरूपम्"

(अथर्व0, 9·7·25)

हम यज्ञकर्म न छोड़ें --

"मा ह्वा:" (यजु0, 1·2)

"यज्ञस्य त्र्योऽक्षरा:" (अथर्व0, 13·3·6)

"ईजाना: स्वर्गं यन्ति लोकम्" (अथर्व0, 18·4·2)

वह पुरुष सनातनधर्म वाला है --

"यथापूर्वमकल्पयत्" (ऋ0, 10·190·3)

"आपूर्णो अस्य कलशः" (अथर्व0, 20·8·3)

"आवद्धतत: कृणवो वपूंषि" (अथर्व0, 5·1·8)

हम अहिंसा करते हुए विचरण करें --

"अरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम" (अथर्व0, 20·143·8)

धर्म द्वारा मैं सबका प्रिय बनूँ

"प्रियो देवानां भूयासम्। प्रियः प्रजानां भूयासम्।

प्रियः पशूनां भूयासम् । प्रियः समानानां भूयासम् ।"

(अथर्व0, 17·1·1-4)

ब्रह्मचर्य द्वारा हम मणि(वीर्य) की रक्षा करें और प्राणायाम करें।

"कृत्यादूषिरयं मणिः" (अथर्व0, 2·4·6)

"आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व" (अथर्व0, 6·101·1)

"शंख आयुष्प्रतरणो मणिः" (अथर्व0, 4·10·4)

"रजस्तमो मोप गाः" (अथर्व0, 8·2·1)

"युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वम्" (ऋ0, 10·101·3)

"स्वाङ्कृतोऽसि" (यजु0, 7·3)

सर्वत्र शान्ति और अभय हो --

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः

शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः

शान्तिर्ब्रह्म शांतिः --- सा मा शान्तिरेधि ।"

(यजु0, 36·17)

"अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।

अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।"

(यजु0, 19·25·6)

देवों की सुमति, उदारवृत्ति और मैत्री हमें प्राप्त हो--

"देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम् ।
देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम् ।

(यजु०, 25.15)

हमें चारों ओर से भद्र संकल्प व विचार मिलें --

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो"

(यजु०, 25.14)

"भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि" (ऋ०, 1.123.13)

"प्रतिबुद्धा अभूतन" (ऋ०, 1.191.5)

हम सौ वर्षों तक अदीन रहें -

"अदीनाः स्याम शरदः शतम्" (यजु०, 36.24)

"मा क्षुधन्मा तृषत्" (अथर्व०, 2.29.4)

हम नाप-तोल कर भोजन करें --

"अग्ने तोलस्य प्राशान्" (अथर्व०, 1.7.2)

"यदश्नामि बलं कुर्वे" (अथर्व०, 6.135.1)

काम भी धर्ममूलक है --

"कामस्तदग्रे समवर्त्तत ---- " (अथर्व०, 19.52.1)

"कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते"

(यजु०, 7.48)

"न कामं महयन्तमा धक्" (ऋ०, 1.178.1)

"का मर्यादा वयुना कद" (ऋ०, 4.5.13)

"पुरुकामो हि मर्त्यः" (ऋ०, 1.179.5)

"यद्यामि तदाभर" (अथर्व०, 20.118.2)

निःश्रेयस् का मार्ग निम्न है —

"मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ।।"

(अथर्व०, 6·41·1)

"उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं यजमानं च वर्धय । "

(अथर्व०, 19·63·1)

"भद्रादधिश्रेयः प्रेहि"   (अथर्व०, 7·8·1)

हममें समानता हो —

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"

(ऋ०, 10·1·91)

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः ---
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः "

(अथर्व०, 3·30·6)

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेष्यं कृणोमिवः"

(अथर्व०, 3·30·1)

"सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु"   (अथर्व०, 7·51·1)

"संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः"

(अथर्व०, 7·52·1)

कर्म ही धर्म है और कर्म का लक्ष्य है ईश्वरप्राप्ति।

"एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे"

(यजु०, 40·2)

"त्वेऽपि क्रतुर्मम"   (ऋ०, 7·31·5)

"स मृज्यते सुकर्मभिः"   (ऋ०, 9·99·7)

विद्या ही धर्म है --

"विद्ययाऽमृतमश्नुते" (यजु0, 40·14)

इसके अतिरिक्त वेद में पारिवारिक धर्म का वर्णन है --

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।"

(अथर्व0, 3·30·2-3)

सामाजिक धर्म भी द्रष्टव्य है --

"जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्"

(अथर्व0, 12·1·45)

"अदित्सन्तं दापयतु" (अथर्व0, 3·20·8)

हम कष्टों का स्वागत करें, और समय से पहले न मरें-

"निर्ऋत्या अकरं नमः" (अथर्व0, 5·7·9)

"मा पुरा जरसो मृथाः" (अथर्व0, 5·30·17)

"मा ते गात्रा विहायि मो शरीरम्"

(अथर्व0, 18·3·9)

विविध देवगण

इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, गरुत्मान्, मातरिश्वा तथा यमादि एक ही परमसत्ता के विविध नाम हैं, निम्न मन्त्र देखें --

"इदं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।"

(ऋ0, 1·164·46)

वेद में देवाधिदेव के बारे में कुछ मन्त्र द्रष्टव्य हैं --

"स्वां योनिमपीतन" (अथर्व0, 10·5·23)

"पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्धः" (अथर्व0, 9·9·15)

"ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे" (अथर्व0, 7·100·1)

"न कवेव यथा त्वम्" (साम0,203)

"नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन" (साम0,1370)

"यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति"

(यजु0, 8·36)

"तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः"

(साम0, 957)

"न ऋते त्वत् क्रियते किंचन" (ऋ0, 10·112·9)

"दुगाशं सख्यं तव" (ऋ0, 6·45·26)

"स जायते मथ्यमानः" (साम0, 908)

"मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनः" (साम0, 561)

"स्वां योनिं गच्छ" (यजु0, 8·22)

"योऽस्मि सोऽस्मि" (अथर्व0, 6·123·3)

"शोऽषधी शर्म यच्छतु" (यजु0, 26·10)

"योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि" (साम0,314)

"इन्द्रो मुनीनां सखा" (साम0, 275)

"व्याप पूरुषः" (अथर्व0,20·131·18)

"बृहस्पतिर्म आत्मा" (अथर्व0, 16·3·5)

"अमर्त्य यजत मर्त्येषु" (ऋ0, 4·1·1)

"स्याम तव प्रियासोऽर्यमन्" (ऋ0, 7·60·1)

"सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि"

(ऋ0, 7·22·5)

"स मा रक्षतु स गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे"

(अथर्व0, 19•17•10)

"सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्"

(अथर्व0, 18•4•45)

"युज्यो मे सप्तपद: सखासि"

(अथर्व0, 5•11•9)

"स एष एक एकवृदेक एव" (अथर्व0, 13•4•20)

"स एव मृत्यु: सोऽमृतम्" (अथर्व0, 13•4•25)

"स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणति यच्च न"

(अथर्व0, 13•4•19)

"तमेव विद्वान् न विभाय मृत्यो:"

(अथर्व0, 10•8•44)

"रसेन तृप्तो न कुतश्चनोन:"

(अथर्व0, 10•8•44)

"देव: पृषतीमा विवेश" (अथर्व0, 13•1•24)

"स उ महायम:" (अथर्व0, 13•4•5)

प्रकृति के विभिन्न रूपों के कारण ही तदधिष्ठातृ नाना देवों की कल्पना हुई है जिसकी वैदिक ऋषियों ने स्तुति की। उन देवताओं की संख्या 33 कही गई है --

"पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व"।

(ऋ0, 3•6•9)

"यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिता:"

(अथर्व0, 10•7•13)

एक अन्य मन्त्र में देवताओं की संख्या 3339 कही है --

"त्रीणि शता त्रीसहस्त्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्"

(ऋ0, 3•9•9)

शतपथ-ब्राह्मण(11·6·3·5) में देवताओं की संख्या 33 बतायी गयी है और इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया गया है —

"अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंश-
दिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति"

(शत०,

ऋग्वेद(6·51·2) में देवों के 3 विदथ कहे गए हैं —

"वेद यास्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः"

(ऋ०, 6·51·2)

"ये देवासो दिव्येकादश स्थ ते पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादशस्थ देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्"

(ऋ०, 1·139·11)

यास्क ने निरुक्त(7·14) तथा(8·43) में इन देवताओं को पृथ्वीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय और द्युस्थानीय देवों के रूप में त्रिधा वर्गीकृत किया है।

द्यौः, वरुण, सूर्य, सविता, मित्र, पूषन्, विष्णु, विवस्वान्, आदित्य, अश्विनौ और उषस् द्युस्थानीय तथा इन्द्र, आप्त्य, त्रित, रुद्र, अपांनपात्, मातरिश्वा, अहिर्बुध्न्य; अजएकपाद्, वायुर्वात, पर्जन्य, मरुत् और आपः अन्तरिक्षस्थानीय तथा अग्नि, सोम, बृहस्पति तथा नदियाँ पृथ्वीस्थानीय देवों में सर्वप्रमुख हैं। मन्यु, श्रद्धा, धाता और त्वष्टा भावात्मक देवताओं में सर्वप्रमुख हैं।

द्युस्थानीय देव

द्यौः द्युस्थानीय देवों में सर्वप्रधान है। वह पिता और जनिता है —

"मधु द्यौरस्तु नः पिता" (ऋ०, 1·90·7)

"द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र" (ऋ0, 1·164·33)

द्यौः इन्द्र के भी कर्ता माने गए हैं --

"सुवीरस्ते जनितामन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्त्ता"

(ऋ0, 4·17·4)

पृथ्वी माता हैं और द्यौः पिता। साथ मिलकर कार्य-निष्पादन के कारण इन दोनों का "द्यावापृथिवी" के रूप में साथ ही उल्लेख होता है।

"द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रुक्" (ऋ0, 6·51·5)

द्यौः को वृषभ भी कहा है --

"अवोरित्थया वृषभः क्रन्दतु द्यौः"

(ऋ0, 5·58·6)

"उच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः"

(अथर्व0, 6·142·2)

2- वरुणदेव का उल्लेख प्रायः मित्र के साथ "मित्रावरुणौ" के रूप में हुआ है। वे सारे संसार के अधिष्ठाता और नियामक हैं --

"त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः"

(ऋ0, 2·27·10)

"तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा"

(ऋ0, 5·83·3)

परमव्योम में स्थित उनका भवन सहस्त्र स्थूणों पर अवलम्बित, हजारों द्वारों वाला है जहाँ से वे सबका निरीक्षण करते हैं —

"राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे।

सहस्त्रस्थूण आसाते" (ऋ0, 2·41·5)

"बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः।

सहस्त्रद्वारं जगमा गृहं ते ।।" (ऋ0, 7·88·5)

सूर्यदेव को वरुण ही नियुक्त करते हैं —

"माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता ।

सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।"

(ऋ0, 5·63·4)

सूर्यदेव विश्व की परिक्रमा करके उसकी सूचना वरुणदेव को देते हैं —

"यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम्"

(ऋ0, 7·60·1)

"अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ईं वहन्ति सूर्य घृताचीः"

(ऋ0, 7·60·3)

"सप्त दिशो नाना सूर्याः"

(ऋ0, 9·114·3)

वरुण के नियमों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता —

"अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि"

वरुण के गुप्तचर सारे संसार को अपने अनगिनत नेत्रों से देखते हैं —

"परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके"

(ऋ0, 7·87·3)

"सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः"

(ऋ0, 6·67·5)

"तस्य स्पशो न निमिषन्ति"

(अथर्व0, 5·6·3)

हर दो आदमियों के बीच वह तीसरा बनकर उपस्थित रहता है, उससे कुछ छिपा नहीं है —

"यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कं

द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः "

(अथर्व0, 4·16·2)

कर्मद्रष्टा वरुण व कर्मभोक्ता वसिष्ठ एक ही नाव में बैठे हैं --

"आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं
प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम् ।"

(ऋ0, 7·88·3)

वरुण का घनिष्ठ सम्बन्ध आदित्य के साथ है --

"उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ।।"

(ऋ0, 1·24·15)

वरुण के यज्ञिय पाश बड़े सूक्ष्म हैं --

"ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं यज्ञियाः पाशाः वितता महान्तः"

उषा को शुभ्र वस्त्रों से आवृत्त नर्तकी के रूप में चित्रित किया गया है --

"अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।"

(ऋ0, 1·92·4)

"एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्"

(ऋ0, 1·124·3)

उषा शब्द की व्युत्पत्ति वस् दीप्तौ धातु से हुई है जिसका अर्थ है दीप्तिसम्पन्न । वह रजनी की ज्येष्ठ भगिनी है। इन दोनों के लिए "उषासानक्ता" "नक्तोषासा" नाम द्वन्द्व समास में प्रयुक्त है। वह पुराणी युवति है --

"पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभिशुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः"

(ऋ0, 1·92·10)

उषा के पीछे उदित सूर्य उसका वैसे ही अनुगमन करते हैं जैसे कोई युवक युवती स्त्री का --

"सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्"

(ऋ0, 1·115·2)

वह सुनहले रंग की है और रथ पर चढ़कर आती है --

"उषो अवनिा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि"

(ऋ0, 7·78·1)

वह धनों की दात्री है --

"अस्मे रयिं नि धारय" (ऋ0, 1·30·2)

"सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः"।

स द्युम्नेन बृहता विभावरिराया देवि दास्वती।"

(ऋ0, 1·48·1)

वह अश्विनों को जगाती है और वे अपने रथ पर बैठ उषा का अनुसरण करते हैं --

"प्रबोधयोषा अश्विना"

(ऋ0, 8·9·17)

"नूवद् दस्त्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।

सचेथे अश्विनोषसम्"

(ऋ0, 8·5·2)

उषा मघोनी, विश्ववारा, प्रचेता, सुभगा और रेवती है। प्रकृति के नियम का अनुपालन करने से वह ऋतावरी है। वह अमरत्व की केतु है। पहिए को लुढ़काने के समान ही वह प्रकाश समूह का आवर्तन करती है --

"उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठत्यमृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ।।"

(ऋ0, 3·61·3)

4- अश्विनौ

ये संयुक्त या युगल देवता हैं जिनके लिए दस्त्रा(अद्भुत) तथा

नासत्या(सत्य) शब्द बहुशः प्रयुक्त होता है। निरुक्त में इसकी व्युत्पत्ति में कहा है --

"अश्विनौ यद्व्यश्नुवाते सर्वं। रसेनान्यो ज्योतिषाऽन्यः। तत्कावश्विनौ। द्यावापृथिव्यावित्येके। अहोरात्रौ इत्येके। सूर्याचन्द्रमसा इत्येके। राजानौ पुण्यकृतौ, इत्यैतिहासिकाः"

(नि०, 12·1)

"अश्विनाविमे हीदं सर्वमाश्नुवाताम्"

(शत०, 4·1·16)

"अश्विनाऽध्वर्यू" (शत०, 1·1·2·17)

"अहोरात्रे वा अश्विनौ" (मै०सं०, 3·4·4)

"इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ"

(शत०,4·1·5·16)

महर्षि अरविन्द लिखते हैं --

"Nāsatya is supposed by some to be a patronymic the old grammarians ingeniously fabricated for it the sense of 'true not false' but I take it from 'nas' to move ... They show that the Ashvins are twin divine powers whose special function is to perfect the nervous or vital being in man in the sense of action and enjoyment. But they are also powers of truth, of intelligent action, of right enjoyment -

Ārya, Vol. I, p. 53.

वे सूर्यपुत्री सूर्या के पति हैं। सूर्या उनके रथ पर चढ़ती हैं।

"यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः"

(ऋ०, 10·85·14)

ये दिव्य भिषक् हैं --

"उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना"

(ऋ०, 8·18·8)

च्यवन ऋषि को बुढ़ापे से मुक्त करके अश्विनों ने ही जवान बनाया था --

"जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्"

(ऋ०, 1·116·10)

विप्र कलि को इन्होंने ही युवा बनाकर विवाह के योग्य किया था --

"युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः"

(ऋ०, 10·39·8)

तुग्र-पुत्र भुज्यु का समुद्र तल से उद्धार, अन्धकारा से अत्रि का उद्धार तथा पेदु को श्वेत शीघ्रगामी अश्व प्रदान करने का श्रेय अश्विनों को ही है।

5- सूर्य

उदित होते हुए सूर्य की सौहार्दपूर्णता के प्रतीकरूप में मित्रसंज्ञा दी गई है। वह लोगों का प्रेरक है --

"जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः

इनो वामन्यः पदवीरदब्धः ।"

(ऋ०, 7·36·2)

मित्र का सम्बन्ध दिन से है और वरुण का रात्रि से --

"स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्"

(अथर्व०, 13·3·13)

पूर्ण प्रकाशमान सूर्य की सविता संज्ञा है। वह अपने सुनहले रथ से

चराचर जगत् को देखते हुए चलते हैं --

"हिरण्ययेन सविता रथेन देवो
याति भुवनानि पश्यन् ।"

(ऋ०, 1·35·2)

गायत्री मन्त्र में अमरता के प्रदाता सविता से प्रार्थना की गई है कि वे ही हमारी बुद्धियों को प्रचोदित करें --

"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।"

(ऋ०, 3·62·10)

"श्रेष्ठं सवं सविता साविषत्"

(अथर्व०, 7·73·7)

सूर्य की पोषण शक्ति के प्रतीक एक अन्य देव पूषन् भी है जिन्हें पशुओं और वनस्पतियों का देवता कहा गया है -- वे मार्गों के प्रकाशक तथा यात्रा में शुभ करने वाले हैं --

" वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि"

(ऋ०, 1·42·7)

"अति न सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु।
पूषन्निह क्रतुं विदः ।"

(ऋ०, 1·42·7)

"अभिसूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने ।
पूषन्निह क्रतुं विदः । "

(ऋ०, 1·42·8)

सूर्य की विभिन्न शक्तियों के सूचक विवस्वान् और आदित्य भी हैं, जो तम के बाधक हैं --

"येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमः"

(ऋ०, 10·3744)

"प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ् देषि मानुषान्"

(ऋ0, 1·50·5)

"उद् वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि ।।"

(ऋ0, 7·63·1)

"आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्"।।

(ऋ0, 1·35·2)

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" ।

6- विष्णु

सूर्य का जो गतिशील और सक्रिय रूप है विष्णुदेव उसी के प्रतीक हैं। जो सारे लोकों को अपने तीन पगों से माप लेते हैं। उनका दो पग तो दृश्यमान हैं पर तीसरा पग पक्षियों की उड़ान से भी परे है --

"द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयमस्य नकिरादधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ।।"

(ऋ0, 1·155·5)

उन्हें उरुक्रम और उरुगाय भी कहा जाता है --

"य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः"

(ऋ0, 1·154·3)

"यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे"

(ऋ0, 8·12·27)

शतपथ-ब्राह्मण(1·2·5·5) तथा तैत्तिरीय संहिता(2·1·3·1) में विष्णु के वामन रूप का उल्लेख हुआ है --

"वामनो ह विष्णुरास" (शत0

"स एतं विष्णुवर्मिनरूपश्यत्" (तै०सं०

वे सबके गोप्ता तथा तीनों लोकों के धारक हैं --

"विष्णुर्गोपा परमं पाति पाथः"

(ऋ, 3·55·10)

"य उ त्रिधातु पृथिवीमुत धामेकोदाधार भुवनानि विश्वा"

(ऋ०, 1·154·4)

उन्होंने पृथ्वी और आकाश को खूँटियों से कसकर रखा हुआ है --

"व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः"

(ऋ०, 7·99·3)

विष्णु के परम पद में मधु का निर्झर है --

"उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।"

(ऋ०, 1·154·5)

वहाँ बहुत सी भूरिश्रृंगा गाएँ हैं और जहाँ देवगण सानन्द विचरते हैं --

"तां वा वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिश्रृङ्गा अयासः"

(ऋ०, 1·154·6)

"नरो यत्र देवयवो मदन्ति" (ऋ०, 1·154·5)

"यत्र देवासो मदन्ति" (ऋ०, 9·29·7)

वह सिंह के समान भयंकर भी हैं --

"मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः"

(ऋ०, 1·154·2)

वह तीन क्रमों से पृथ्वी मापते हैं --

"एको विममे त्रिभिरित् पदेभिः"

(ऋ० 1·154·3)

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
स मूढमस्य पांसुरे।"

(ऋ0, 1·22·7)

अन्तरिक्षस्थानीय देव

1- इन्द्र

ऋग्वेद का चतुर्थांश इन्द्र के स्तुतिसूक्तों से भरा पड़ा है। इन्द्र ने पचास हजार कृष्ण वर्ण के लोगों को नष्ट करके उनके दुर्गों को ध्वंस किया --

"पञ्चाशत् कृष्ण नि वप: सहस्त्रात्कम
न पुरो जरिमा विदर्द: ।

(ऋ0,4·16·13)

वह सुशिप्र, वज्रबाहु, पुरभिद, वृषभ आदि विशेषणों से समृद्ध हैं। शतक्रतु, सोमपा भी उनके विशेषण हैं। वह शक्र(बलाध्यक्ष) हैं तथा शक्तिसम्पन्न (शचीवन्त) हैं। तीनों गुणों से युक्त मार्ग का वही निर्माण करते हैं --

"त्र्यन्छक्रो वि मिमीते अध्वन:" (अथर्व0, 4·11·2)

वह दो मेघों के मध्य विद्युत उत्पन्न करने वाले हैं --

"योऽश्मनोरन्तरग्निं जजान"

(ऋ0, 2.12.3)

वे दस्युओं के पराभव-कर्त्ता हैं -

"यो दासवर्णमधरं गुहाक:"

(ऋ0, 2·12·4)

वह जलों के प्रवाह को अन्तरिक्ष से पृथ्वी की ओर मोड़ते हैं --

"अधराचीनमकृणोदपामप:" (ऋ0,2·17·5)

इन्द्रदेव का वज्र अयस् द्वारा निर्मित है --

"अभ्येनं वज्र आयत: सहस्त्रभृष्टिरायता ---- "

(ऋ0, 1·80·12)

जिसके बिना लोग युद्ध में विजयी नहीं होते तथा आत्मरक्षार्थ लोग जिसे बुलाते हैं, वह इन्द्र ही है ---

"यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्र:।।"

(ऋ0, 2·12·9)

वह इन्द्र ही धन के दाता व शक्तिसम्पन्न हैं ---

"त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजय:।
तवायं विश्व: पुरुहूत पार्थिवो अवस्युर्नाम भिक्षते।"

(ऋ0, 7·32·17)

"शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदं अभितश्चेकिते वसु"

(ऋ0, 1·53·3)

"यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्र:"

(अथर्व0, 20·34·10)

"विशं विशं मघवा पर्यशायत" (अथर्व0, 20·17·6)

त्रितआप्त्य, अपांनपात्, मातरिश्वा और अहिर्बुध्न्य ऐसे अन्तरिक्ष स्थानीय देव हैं जिनका इन्द्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। त्रित आप्त्य ने ही त्वष्टा-पुत्र के तीन शिरों पर आघात करके गायों को मुक्त किया था तथा आयसशस्त्र द्वारा वराह राक्षस का वध किया ---

"स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान् त्वाष्ट्रस्य चिन्नि: ससृजे त्रितोगा:"

(ऋ0, 10·8·8)

"अस्य त्रितोन्वोजसा वृधानो विपा वराहमयो अग्राहन्"

(ऋ0, 10·99·6)

अपाँ नपात् का वर्णन ऋग्वेद(2·35) में मिलता है। वह आशुहेमन् (शीघ्रगामी) है और बादलों के मध्य छिपी बिजली का प्रतीक है।

पर्जन्य, अजएकपाद, मरुत्, वायु और आप वर्षा से सम्बद्ध अन्तरिक्षस्थानीय देव हैं।

पर्जन्य की उपमा रँभाने वाले वृषभ (कनिक्रदत् वृषभ) से दी गई है। तथा जलपूरित पर्जन्य को दृति से उपमित किया गया है --

"दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्च"

इन्द्र ने अपने वज्र से आप: के लिए मार्ग बनाया है तथा राजा वरुण मनुष्य के सत्यानृत को देखते हुए जल के मध्य में भ्रमण करते हैं। अन्तरिक्षस्थ देवों में रुद्र सर्वाधिक प्रमुख हैं। ऋग्वेद के (1·114, 2·33 तथा 7·46) में रुद्र देवताक सूक्त पाया जाता है। शुक्लयजुर्वेद का 16वाँ अध्याय रुद्राध्याय के नाम से जाना जाता है। अथर्ववेद के(11·2 सूक्त में भी रुद्र की स्तुति प्राप्त होती है।

वह नीलकण्ठ हैं --

"असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहित:"

(यजु०, 16·7)

"नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।"

(यजु०, 16·8)

उनके धनुष का नाम पिनाक है तथा वह कृत्तिवासा हैं --

"परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आचर
पिनाकं बिभ्रदागहि"।

(यजु०, 16·51)

"अवततधन्वा पिनाकावस: कृत्तिवासा
अहिंसन्न शिवोऽतीहि"।

(यजु०, 3·61)

वह जटाजूट वाले(कपर्दी) हैं --

"इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने

क्षयद्वीराय प्रभरामहे मती: ।"

(ऋ, 1·114·1)

वे धनुष धारण करते हैं --

"धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्त्रघ्नि

शतवधं शिखण्डिन्म् ।"

(अथर्व0, 11·2·12)

"अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन् ।

निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।"

(ऋ0, 2·33·10)

वे शितिकण्ठ हैं --

"नमो नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय च"

(शु0यजु0, 16·28)

वे पर्वतवासी हैं --

"यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।

शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसी: पुरुषं जगत् ।"

(यजु0, 16·3)

वे सृक नामक वज्र धारण करते हैं(शु0यजु0, 16·21)

"श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो"

(ऋ0, 2·33·3)

उनके केश हरे हैं(हरिकेश) पर कभी-कभी वे मुण्डित केश(व्युप्तकेश- यजु0, 16·29) भी रहते हैं। वे सहस्त्राक्ष हैं और उष्णीषी हैं(यजु0, 16·22) वे आततायी हैं --

"विज्यं धनु: कपर्दिनो विशल्यो बाणवान् उत ।

अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधि: ।।"(यजु0, 16·10)

रुद्र मरुतों के पिता हैं (ऋ०, 1·114·6) इसीलिए मरुतों को रुद्रिय कहते हैं। वे सिंह की भाँति भीम हैं --

"स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्"

(ऋ०, 2·33·11)

वे कामनाओं के वर्षक भी हैं -

"प्रबभ्रवे वृषभाव श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।"

(ऋ०, 2·33·8)

वे शिव हैं --

"स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन

येभि: शिव: स्ववाँ एव यावभिर्दिव: सिषक्ति स्वयशा निकामभि:

(ऋ०, 10·92·9)

"शिव: स व: सर्वा: सञ्चरति प्रजानन्"

(अथर्व०, 8·9·22)

वे तीन नेत्रों या तीन माताओं वाले हैं --

"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।।"

(ऋ०, 7·53·14)

अम्बिका उनकी भगिनी हैं --

"एष ते रुद्र भाग: सह स्वस्राऽम्बिकया तं जुषस्व

स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशु:"

(यजु०, 3·57)

वे पशुपति, जगत्पति हैं --

"पशूनां पतये नमो नम:"

(यजु०, 16·17)

"नम: शङ्गवे च पशुपतये च नम:"(यजु०, 16·40)

"अन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै
जगतां पतये नमो।" (यजु0, 16·18)

वे ही शम्भू, शंकर और शिव हैं --

"नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।"

(यजु0, 16·41)

प्रसन्न होने पर वे "शिवा तनुः" रूप वाले और क्रोध में वे अपना रौद्र रूप प्रकट करते हैं --

"मानो महान्तमुत मा नो अर्भकं ---
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीः ---- ।"

(ऋ0, 1·114·7-8)

अथर्ववेद(11·2·1) में उन्हें भव, शर्व, पशुपति और भूतपति कहा गया है --

"भवाशर्वौ मृडतं याभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम्" ।

मनुष्य भी पशु है जिसके वे पति हैं --

"तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता,
गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ।"

(अथर्व0, 11·2·9)

वह सर्वत्र अवस्थित है --

"यो अग्नौ रुद्रो य अप्स्वंतर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये।"

(अथर्व0, 7·87·1)

श्वेताश्वतर(3·2) तथा(3·4) में रुद्र को विश्वाधिपति तथा महर्षि बताया गया है --

"एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः"

(श्वे0, 3·2)

"यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षि: ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।"
(श्वेता0, 3·4)

वह वैद्यनाथ हैं तथा रोगों का निवारण करते हैं --
"गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्।"
(ऋ0, 1·43·4)

"भिषक्तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि"
(ऋ0, 2·33·4)

"क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः"
(ऋ0, 2·33·7)

शतपथ-ब्राह्मण (6·1·3·8) में जन्म के समय रोने के कारण प्रजापति ने रुद्र नामकरण किया (यदरोदीत् तस्मात् रुद्रः)। दशों इन्द्रियों तथा मन को एकादश रुद्र बृहदारण्यक उपनिषद् (3·9·4) में कहा है जब ये शरीर छोड़ कर बाहर निकलने लगते हैं तो सभी-सम्बन्धी रुदन करने लगते हैं --

"ते यदास्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्ति अथ रोदयन्ति ।
तद् यद् रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ।"

रुद्र की आठ मूर्तियाँ आठ भौतिक पदार्थों की प्रतिनिधि है। रुद्र अग्नि हैं --

"अग्निर्वै रुद्रः" (शत0, 3·1·3)
"तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये" (अथर्व0, 7·83)
"त्वमग्ने रुद्रो" (ऋ0, 2·1·6)

रुद्रदेव से प्रार्थना है कि वे अपना वज्र हमसे और हमारे पुत्र-पौत्रों से दूर रखें और अपनी दानशील दया बनाए रखें --

"परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परित्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्
अव स्थिरामघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ।"
(ऋ0, 2·33·14)

पृथ्वीस्थानीय देव

1- अग्नि

पृथ्वीस्थानीय देवों में अग्नि सर्वप्रमुख हैं जिनकी स्तुति में ऋग्वेद में 200 से ऊपर सूक्त आए हैं। द्युलोकस्थ सूर्य और अन्तरिक्षस्थ विद्युत भी अग्नि के ही रूप हैं। अग्निदेव गृहपति, सुजिह्व और हिरण्यदन्त हैं। आर्थिक, सामाजिक और याज्ञिक जीवन अग्नि पर ही अवलम्बित है।

"अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ---- "

(अथर्व0, 4·39·9)

अग्नि हिम का भेषज है। वह समग्र उत्पन्न प्राणियों को जानते हैं अत: जातवेदा: कहे जाते हैं --

"अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा"

(ऋ0, 3·26·7)

"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवम् --- ।"

(ऋ0, 1·1·1)

वह दूत की भाँति अग्निकुण्ड में प्रदत्त आहुति को देवों तक पहुँचाने वाले हैं।

"पश्याम ते वीर्यं जातवेद:"

(अथर्व0, 1·7·5)

"आयुरस्मै धेहि जातवेद:" (अथर्व0, 2·29·2)

"प्र पर्वाणि जातवेद: शृणीहि" (अथर्व0, 8·3·4)

2- बृहस्पति

यह देवता लगभग 13 सूक्तों में ऋग्वेद में वर्णित है। बृहस्पति शब्द बृह् वर्धने धातु से मन्त्राधिपति के रूप में वर्णित हैं। ये ही गणपति हैं।

"बृहस्पतइन्द्रवर्धतं न: स चा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी: जजस्तमर्यो वनुषामराती: ।।"
(ऋ0,4.50.11)

यज्ञों में वे देवों का पौरोहित्य करते हैं --

"बृहस्पति पुरोहिता देवस्य सवितु: सवे। देवा देवैरवन्तु मा।
(यजु0,20.11)

"बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीत्"
(तै0सं0, 6.4.10.1)

उनके बिना यज्ञ सफल नहीं हो पाता। बृहस्पति के अन्य नाम ब्रह्मणस्पति और वाचस्पति भी हैं। बृहस्पति ग्रह की शान्ति के लिए बृहस्पति देवता से सम्बद्ध मन्त्र का जाप अतिप्रसिद्ध है(ऋ० २.२३.15)

3- सोम

पृथ्वीस्थानीय देवों में ये भी अतिप्रमुख हैं। सोमयाग याज्ञिक कर्मकाण्ड का मुख्यांग है। ऋग्वेद के नवम मण्डल के 144 सूक्तों के देवता सोम हैं। सोमरस एक पेय के रूप में ऋग्वेद में बहुश: वर्णित है तथा उसकी आहुति भी दी जाती थी। इसके रसपान से देव-मनुष्य अमरत्व को प्राप्त होते हैं --

"त्वां देवासो अमृताय कं पपु:" (ऋ0, 9.106.8)

"अपाम सोमममृता अभूमा गन्म ज्योतिरविदाम देवान्"
(ऋ0, 8.48.3)

सोम वनस्पतियों का राजा है --

"सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिः"

(ऋ0,9•114•2)

सोमदेव से यह प्रार्थना की गई है कि --

"शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ।।"

(ऋ0, 8•48•4)

"सोमो राजाधिपा मृडिता" (अथर्व0, 10•1•22)

ऋग्वेद की 21 नदियाँ जिनमें सरस्वती, सिन्धु, शुतुद्री, परुष्णी, सरयू, गंगा, यमुना और विपाशा महत्त्वपूर्ण हैं तथा स्वयं पृथ्वी भी पृथ्वी स्थानीय देव हैं। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त(12•1) वैदिक राष्ट्रगीत है। नदियों के तटवर्ती प्रदेश आर्यों के वसति- प्रदेश थे जिनके जल पर उनका आर्थिक जीवन अवलम्बित था।

अन्य वैदिक देव

उपर्युक्त त्रिवर्गों के अतिरिक्त वेदों में भावात्मकदेव, देवियों तथा कर्तृदेवों का वर्णन हुआ है। भावात्मक देवों में मन्यु, श्रद्धा, अनुमति, अरमति(भक्ति) निर्ऋति(रोग व दुर्भाग्य), काम, काल, स्कम्भ और प्राण सर्वप्रमुख हैं जिन्हें वेदों में मानवरूप में कल्पित किया गया है। कर्तृदेवों में त्वष्टा, प्रजापति और ऋभवः प्रधान हैं। इन्द्र का वज्र त्वष्टा द्वारा ही बनाया गया है --

"अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्" "

(ऋ0,5•31•4)

बृहस्पतिदेव के आयस परशु को भी उन्होंने ही पैना किया था --

"शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः"

(ऋ0, 10•53•9)

सम्पूर्ण विश्व के सर्जनहार विश्वकर्मा प्रजापति हैं। ऋभुओं ने तीन चक्रों वाले तथा बिना घोड़ों वाले रथ का निर्माण अश्विनी के लिए किया था --

"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ।"

(ऋ0,4.36.1)

ऋभु ने अपने वृद्ध माता-पिता को फिर से युवा बना दिया था --

"युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ।" (ऋ0,1.20.4)

"शच्याकर्तपितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम्"

(ऋ0,4.35.5)

वे मनुष्य थे पर अपने सत्कर्मों से उन्होंने अमरत्व को प्राप्त कर लिया था --

"ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः"

(ऋ0,4.33.4)

वाक्, इळा, सरस्वती, मही, पुरन्धि, धिषणा, सरण्यु, इन्द्राणी, कुहू, पृश्नि आदि देवियों की स्तुतियाँ भी हमें प्राप्त होती हैं --

"इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः।

सामाजिक क्षेत्र में इळा वाक्-व्यवहार है तथा सरस्वती सांस्कृतिक चेतना के नाना तरंगों वाले महान् ज्ञानार्णव को प्रकट करने वाली हैं और मही अखिल संस्कृति की एकता, स्वस्ति व समन्विति की सूचक हैं।

इस प्रकार "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" यह विचार विविध देवों में एक ही परम प्रकाश को दर्शाता है तथा हमें प्रेरणा देता है कि -

"यत्देवा अकुर्वन् तत् करवानि"

(शत० 7·3·2·6)

वैदिक देवों का स्वरूप और वैदिक तत्त्व-चिन्तन

देवों को मनुष्यों का द्रष्टा कहा जाता है --

"नृचक्षसो निमिषन्तो र्हणा बृहद्देवासो मृतत्वमानशुः"।

वे ऋत में ही जन्म लेते हैं। अनृत के विरोधी होते है --

"ऋतावान् ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृत द्विषः" ।

वे प्रकृष्ट ज्ञानी और हमारे कल्याण के लिए हैं --

"य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो ---- देवासः पिपृता स्वस्तये।"

देवों की सुमति, उनका दान उनकी मैत्री और उनका वरद हस्त सदा हमारे पास रहे --

"देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्तताम्।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवान आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।।"

जिसे आदित्यदेव सुपथ से ले जाते हैं वह सारे दुरितों को पार कर जाता है --

"अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।"

"ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।"

मनु ने जिन देवों का आह्वान किया था वे हमें शान्ति और अभय प्रदान करें --

"येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ।"

शरीर यज्ञ का होता आत्मा है, इसे देव पूर्ण करें --

"इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमाना:"।

ब्रह्माण्ड के नेता देवाधिदेव सर्वत्र विराजते हैं --

"ये देवा देवेषु अधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मण: पुर एतारो अस्य

येभ्यो न ऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्या अधिस्नुषु

हे देवों, मैं गिरा हूँ, मुझे उठाइए, पाप से विलग कीजिए। नव जीवन का दान दीजिए।

"उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुन:।

उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुन: ।।"

उपनीत ब्रह्मचारी को देवों का एक अङ्ग कहा गया है --

"ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विष: स देवानां भवत्येकमङ्गम्"

(ऋ0, 10·109·45)

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा है कि यह कल्याणी आत्मा अमर है पर मरणधर्मा गृह(शरीर) में निवास करती है --

"इयं कल्याण्जरा मर्त्यस्याऽमृता गृहे"

(ऋ0, 10·8·26)

"अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनि:"।

(ऋ0, 1·164·38)

मनुष्य अमरता का अभिलाषी है, आनन्द उसका लक्ष्य है--

"यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद: प्रमुद आसते।

कामस्य यत्राप्ता: कामास्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव।"

(ऋ0, 9·1·13)

"स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्र: स्याम"

(अथर्व0, 12·3·17)

शतपथ-ब्राह्मण में तत्त्वचिन्तन की प्रक्रिया में यह बताया गया है कि मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को तराजू में तौला जाता है और उसने जो भी साधु या असाधु जीवन में किया होता है तदनुसार ही उसे

पुरस्कार या दण्ड मिलता है --

"अथ हैवैव तुला। यद्दक्षिणतो वेद्यन्तः स यत्साधु करोति तदन्तर्वेद्यथ यदसाधु तद्बहिर्वेदि तस्माद्दक्षिणं वेद्यन्तमधिस्पृश्येवासीत तुलायां ह वा अमुष्मिंल्लोक आदधाति यतरद्यंस्यति तदन्वेष्यति यदि साध्वासाधु वेत्यथ य एवं वेदास्मिन्हैव लोके तुलायामारोहत्यमुष्मिंल्लोके तुलाधानमुच्यते साधुकृत्या हैवास्य यच्छति न पापकृत्या"।

(शत०, 11·2·7·33)

षष्ठ अध्याय

वेदों में राष्ट्र का वैज्ञानिक स्वरूप

वेदों में राष्ट्र का वैज्ञानिक स्वरूप

वैदिक ऋत

वैदिक ऋत सनातन नियमों और ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का पर्याय है। ऋत मानसिक जगत् का संचालक है, नैतिक नियम है जबकि सत्य सत्तात्मक नियम है। ये दोनों प्रभु के अभीद्ध तप से समुत्पन्न हैं --

"ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ---- ।"

(ऋ0, 10·190·1)

ऋत को पिता तथा सत्य को माता भी कह सकते हैं । एक बीज है दूसरा क्षेत्र। एक तैजस है दूसरा पार्थिव। ऋत गत्यात्मक है जिसका अंग्रेजी राइट अपभ्रंश कहा जा सकता है। मेक्समूलर कहते हैं --

"We call that Rita, that straight direct or right line, when we apply it in a more general sense, the law of nature, and when we apply it to the moral world, we try to express the same idea again by speaking of the moral law, the law on which our life is foundeded, the eternal law of right and reason, or it may be that which makes for righteousness both within us and without ...(Rta is) a law which underlies everything, a law in which we may trust, whatever befall, a law which speaks within us the divine voice of conscience and tells us 'this is rite','this is right','this is true', whatever the statutes of our ancestors or ever the voices of our bright

gods' may say to the contrary".

Hibbert lectures, India What can it teach us.

मानव का तेज नैतिक नियमों पर आधृत है। जो शुभ-अशुभ का भेद जानता है वह ऋत भी जानता है। वेद भी सनातन नियमों के प्रकाशक हैं--

"तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ।।"

(ऋ0, 9·97·34)

ऋत की महिमा अपूर्व है। ऋत से शोक समाप्त हो जाता है। पाप भी समाप्त हो जाता है।

"ऋतम् मनसा यथार्थ -संकल्पनम्"

"ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति" ।

"अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिः।"

(ऋ0, 1·136·2)

"वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य"

(ऋ0, 1·164·11)

ऋत से देवत्व मिलता है --

"भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः"

(ऋ0. 1·68·2)

वरुणदेव ऋत के आधार है --

"प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति।
न श्राम्यन्ति न विमुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ।।"

(ऋ0, 2·28·4)

ऋत बहरे कानों को फाड़ अन्दर प्रविष्ट हो जाती है और मानव को प्रबुद्ध करके उसे पुनीत बना देती है --

"ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ।।"

(ऋ०, 4·23·8)

ऋत की दो गतियाँ हैं एक अभ्युदयोन्मुख दूसरा निःश्रेयसोन्मुख। अर्थात् वह पितृयान और देवयान दोनों मार्गों का आश्रयभूत है। ऋत के चार कोण हैं। दो निषेधपरक और दो विधिपरक। जिनमें हमें द्वेष और कुटिलता के छोरों से विलग होकर प्रेम और सारल्य के कोणों पर चलना है --

"चतुः स्रक्तिः नाभिः ऋतस्य सप्रथाः। स नो विश्वायुः सप्रथाः सनः सर्वायुः सप्रथाः। अपद्वेषोऽपह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम"।

(यजु०, 38·20)

अतः ऋग्वेद(9·113) में कहा है --

"आपवस्व दिशाम्पते आर्जीकात् सोममीढ्वः। ऋत वाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुतः इन्द्राय इन्दो परिस्रव"।

ऋत गति है जो सत्य अधिष्ठान है। गति स्वयं युग्मवती है। ग्रहों की गति में भी यही युग्म है। ग्रहों में शत्रु-मित्र भाव है। वृक्ष यदि दिन में कार्बन का ग्रहण करते हैं तो रात में आक्सीजन भी उत्पन्न करते हैं। पीली पत्तियाँ त गिरकर हरी पत्तियों के निकलने का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं। प्राण-अपान, कुटिलता-प्रेम आदि के मूल में भी यही ऋत क्रियाशील है जिसे अंग्रेजी में(Eternal law) या (Cosmic order) कहते हैं।

"ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ।।
ऋतं येमान ऋतमिद् वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ।।"

(ऋ०, 4·23·9-10)

"आ राजाना मह ऋतस्य गोपा"

(ऋ०, 7·65·2)

प्राकृतिक क्षेत्र के आकर्षण-विकर्षण, चेतना क्षेत्र के प्रेम-द्वेष के ही रूप हैं। ऋत से प्रथम उत्पन्न बुद्धि है जिसकी सम्प्राप्ति से वाणी के निखिल वाङ्‌मय प्रकाशित हो जाते हैं। ऋत द्वारा ही हम शुभ और अशुभ में भेद करके आत्मतत्त्व तक पहुँच पाते हैं। इस प्रकार वेद ऋत के प्रकाशक हैं और प्रभु "ऋतस्य गोपा:" ऋत-रक्षक हैं। अत: महर्षि दयानन्द जी का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक(बन्धन) है जिसके द्वारा हम सत्यमय प्रभु के दर्शन कर सकते हैं और वेद ही वस्तुत: प्रमाण हैं। ऋत के सम्बन्ध में कुछ अन्य उद्धरण भी द्रष्टव्य हैं --

"ऋतमिति सत्यम्" (शत०, 6·7·3·11)

"ऋतेनैवेनं स्वर्गं लोकं गमयन्ति"

(तां०ब्रा० 18·2·9)

"चक्षुर्वा ऋतं तस्माद्यतरो विवदमानयोराहाहमनुष्ठ्या चक्षुषादर्शमिति तस्य श्रद्दधाति"

(ऐ०ब्रा०, 2·40)

"तद्यत्तत्सत्यं त्रयी सा विद्या"

(शत०, 9·5·1·18)

"एवं ह वाऽस्य जितमनपजय्यमेवं यशो भवति य एवं विद्वान्सत्यं वदति" (शत०,3·4·2·8)

"अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति"

(शत०, 3·1·3·18)

"नानृतं वदेन्न मांसमश्नीयात ---- "

(तै०सं०, 2·5·5·32)

"एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्" (तां०ब्रा०, 8·6·13)

"अथ यो अनृतं वदति यथाग्निं समिद्धं तमुदकेनाभिषिञ्चेदेवं हैनं स जासयति तस्य कनीय: कनीय एव

तेजो भवति श्व: श्व: पापीयान् भवति तस्माद् सत्यं वदेत्"

(शत०, 2·2·2·19)

गणित विज्ञान

(क) अंकगणित

यह गणित वस्तुत: संख्याओं (Numbers) पर आधृत है और इसे साइन्स ऑफ टाइम" कहा जाता है। अथर्ववेद में ये नम्बर्स देखे जा सकते हैं --

"स एष एक एकवृदेक एव। एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति।
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ---
न पञ्चमो न षष्ठ: सप्तमो नाप्युच्यते ---
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते --- "

(अथर्व०, 13·4·13, 16, 17, 18)

"यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ।
यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि
यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि
यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि
यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि
यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि
यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि"

(अथर्व०, 5·16)

नीचे के एक मन्त्र में दो, तीन तथा चार अङ्कों (Digits) के नम्बर्स बताए गए हैं --

"एका च मे दश च मेऽपववतार ओषधे ---
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपववतार ओषधे ---
तिस्त्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवतार ओषधे ---
चतस्त्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपववतार ओषधे ---
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपववतार ओषधे ---
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपववतार ओषधे ---
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपववतार ओषधे ---
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपववतार ओषधे ---
नव च मे नवतिश्च मेऽपववतार ओषधे ---
दश च मे शतं च मेऽपववतार ओषधे ---
शतं च मे सहस्रं चापववतार ओषधे --- "

(अथर्व०, 5·15)

अगले मन्त्र में एक, दश, सौ, हजार, दश हजार(अयुतम), लाख नियुतम), दश लाख(प्रयुतम्), दश करोड़(अर्बुदम्), अरब(न्यर्बुदम्), खर्व, निखर्व, महापद्म तथा शंकु का वर्णन है। समुद्र यहाँ दश शंख के लिए वर्णित है। अर्थात् यहाँ 19 अंकों (Digits) की संख्या हमें प्राप्त होती है। ध्यातव्य है यहाँ "समुद्र" शून्यों(Zero) से भरा पड़ा है, मन्त्र इस प्रकार है --

"इमा मेऽग्न इष्टका धेनवः
सन्त्वेका च दश च दश च शतं च
शतं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च
नियुतं च प्रयुतं चार्बुदम् च न्यर्बुदं च
समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मेऽग्न
इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके" (यजु०, 17·2)

नीचे एक मन्त्र है जिसमें विषमांक गणन द्वारा जोड़- घटाना-गुणा-भाग चारों निकाला जा सकता है --

"एकाच मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे
पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च में नव च मे
एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च में त्रयोदश च मे
पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे
नवदश च मे नवदश च मे एकविंशति श्च मे एकविंशतिश्च मे
त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे
पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे
नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्च
मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

(यजु0, 18·24)

उपर्युक्त मन्त्र में एक जोड़कर पहाड़ा भी बनाया जा सकता है, जिसका संकेत निम्न मन्त्र में भी है --

"---- एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टपदीं
भुवनानु प्रथन्तां स्वाहा"

(यजु0, 8·30)

यजुर्वेद(5·5) में कहा है कि अंकविद्या भी छन्द है -- "अङ्काङ्कं छन्दः" । निम्न मन्त्र में गायत्री का बृहस्पति के अष्टाक्षरों से गुणन करने पर गायत्री की अक्षर संख्या 24 तथा इसी प्रकार त्रिष्टुभ् और जगती की भी छन्दों की अक्षर संख्या 44, 48 निकलती है --

"अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषम्
अश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषम्
विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषम्
सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम्

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषम्
सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषम्
मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयस्तानुज्जेषम्
बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ।
मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोममुदजयत्तामुज्जेषम्
वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषम्
इन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषम्
विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयंस्तामुज्जेषम्
वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषम्
रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषम्
आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषम्
अदितिः षोडशाक्षरेण षोडशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम्
प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ।"

(यजु०, 9·31–34)

अगले मन्त्र में 4 का बहुत सुन्दर पहाड़ा दिया गया है—

"चतस्रश्च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे
षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे
चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टा-
विंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च
मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे
चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

(यजु०, 18·25)

एक मन्त्र में द्विपदा(2+2), त्रिपदा(3+3), चतुष्पदा(4+4) के अनुसार षट्पदा(6+6) का परिगणन हुआ है --

"द्विपदा याश्चतुष्पदा त्रिपदा याश्च षट्पदाः"

(यजु०, 23·34)

एक अन्य मन्त्र में कहा है कि एक से दस, दो से बीस, तीन से तीस तक की सिद्धि उस संख्या में उतना जोड़ते रहने से इष्टप्राप्ति के निमित्त होती है --

"एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च नियुद्भिर्वायविह ता विमुञ्च।।"

(यजु०, 27·33)

वेद में विभाज्य या सच्छन्द(यौगिक) और अविभाज्य या विच्छन्द (रूढ़) संख्याओं का भी वर्णन है --

"विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा"

(यजु०, 23·34)

वेद में डेढ़ के लिए त्र्यवि और ढ़ाई के लिए पन्चावी शब्द का प्रयोग हुआ है --

"त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट्च मे दित्यौही च मे
पन्चाविश्च मे पन्चावी च मे त्रिवत्सा च मे त्रिवत्सा
च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।"

(यजु०, 18·26)

सैकड़ा, हजार, दस हजार आदि असंख्य संख्याएँ अपने आप में ही कल्पना के योग्य है। यथा --

"शतं सहस्त्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वस्मिन्निविष्टम्"

(अथर्व०, 10·8·24)

"त्रीणि शता त्रिसहस्त्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्"

(यजु०, 33·7)

एक मन्त्र से वर्गमूल भी निकाला जा सकता है --

"एका च मे तिस्रश्च मे, तिस्रश्च मे पञ्च च मे, पञ्च च मे सप्त च मे, सप्त च मे नव च मे, नव च मे एकादश च मे।"

एक मन्त्र में कहा है कि युद्ध-संचालन-कौशल द्वारा इन्द्र ने वैसे ही शत्रुओं का संहार किया(विभाजन किया) जैसे नव इकाई 90 का विभाजन करती है --

"इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत: ।
जघान नवतीर्नव।"

(ऋ०, 1·84·13)

एक मन्त्र में 11 का पहाड़ा उल्टे क्रम में देखा जा सकता है --

"ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव
अशीति: सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्तति: ।
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमा:"

(अथर्व०, 19·47-3-5)

एक मन्त्र में तीन अंकों वाली संख्याओं का गणन हुआ है --

"षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ।"

(ऋ०.8·46·22)

एक अन्य मन्त्र में सृष्टि की आयु 4,32,00,00,000 वर्ष दी गयी है--

"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्म: ।
इन्द्राग्नीविश्वेदेवास्ते नुमन्यन्तामहृणीयमाणा: ।।"
(अथर्व0, 8·2·21)

अंकों को यहाँ नियमानुसार बायें से लिखते हैं 4,3,2 ।
अब अयुतम् × शतम् = 00000 × 00 = 0000000
अर्थात् 4320000000 वर्ष सृष्टि की आयु हुई।

रेखागणित

निम्न मन्त्र में त्रिभुज बनाना बताया है --

"तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामध: स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयति:परस्तात् ।।"
(यजु0, 33·74)

अर्थात् एक तिरछी रश्मि है, उसके नीचे भी रश्मि है और फिर नीचे से ऊपर की ओर भी एक रश्मि है जो त्रिभुज की तीनों भुजाओं को बनाने वाले हैं। वेद में कपालों(वृत्तों) का भी वर्णन है --

"अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टकपाल
इन्द्राय त्रैष्टुभाय पंचदशायैकादशकपालो विश्वेभ्यो
देवेभ्यो जागतेभ्य: सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपाल:"
(यजु0, 29·60)

वेद में ब्रह्माण्ड के केन्द्र बिन्दु आदि का भी प्रश्नोत्तर रूप में वर्णन है --

"पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या: पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभि:
पृच्छामित्वा वृष्णो अश्वस्य रेत: पृच्छामि वाच: परमव्योम"
(यजु0, 23·61)

"कोऽस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
क: सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं कोवेद चन्द्रमसं यतोजा: ।।
वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजा: ।।

(यजु०, 23·59–60)

ऋग्वेद में एक स्थान पर प्रमा, प्रतिमा (रेखाचित्र, परिधि तथा उसकी मात्राओं के जानने का वर्णन है --

"कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधि: क आसीत्
छन्द:किमासीत् प्रउगं किमुक्थ्यं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे"

(ऋ०, 10·130·3)

एक अन्य मन्त्र में वृत्त को 4×90 डिग्री का बताया गया है अर्थात् 360^0 का --

"चतुर्भि: साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तंव्यतींरवीविपत्"

(ऋ०, 1·155·6)

एक अन्य मन्त्र में विद्युत् के द्वारा मेघों को ताड़ित करना ऐसा ही बताया गया है जैसे बाहरी त्रिभुज वृत्त की परिधि को काटता है --

"इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणोअन्धसा ।
भिनद् बलस्य परिधीँरिव त्रित: ।।"

(ऋ०, 1·52·5)

एक मन्त्र में त्रिभुज का वर्णन है --

"यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा
योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयान: ।।"

(अथर्व०, 8·9·2)

एक अन्य मन्त्र में आता है कि त्रिभुज वृत्त के भीतर गिर पड़ा,

उसने रक्षार्थ गुहार लगाई। ज्यामितिविदों ने उसकी गुहार सुनी तथा उसके कोणों को बढ़ाकर उसकी रक्षा की। मन्त्र इस प्रकार है --

"त्रित: कूपेवहितो देवान् हवत ऊतये ।

तच्छुश्राव बृहस्पति: कृण्वन्नंहूरणादुरु ---- ।"

(ऋ०, 1·105·17)

जब त्रिभुज वृत्त में समा (Fit) जाता है तब उसका मान Π = 22/7 हो जाता है। यही बात (ऋग्वेद 1·52·5) में भी प्रोक्त है।

शतपथ-ब्राह्मण(10·3·7-8) में महावेदी का वर्णन है जो विषमबाहु चतुर्भुज के आकार की (Isosceles Trapezium) है तथा जिसका मान $14\frac{3}{7}$ बताया है।

"ते ये ह तथा कुर्वन्ति एतम् ह ते पितरं प्रजापतिं

सम्पदश्च्यावयन्ति। ता इष्ट्वा पपीयांसो भवन्ति

स एवतस सप्तविधस्य वेदि: तनातिं चतुर्दश कृत्वा

एकशतविधस्य वेदिं विमिमीते । अथ सप्त्रिंशत् प्रक्रम

रज्जुम् मिमीते तम् सप्तधा समस्यति तस्ये त्रीन्

भागान् प्र च उपदधाति नि:सृजति चतुर:" ।

काठकसंहिता में वेदियों के अनेक रूप कहे हैं यथाहि --

प्रउगचित (Triangle), द्रोणाकार (Though) आदि -

"प्रउगचितं चिन्वीत" , "रथचक्रचितं चिन्वीत"

"उभयत: प्रउगं चिन्वीत","द्रोणचितं चिन्वीत"

(का०सं०,21·4)

बीजगणित

यह गणित वस्तुत: अंकगणित और रेखागणित पर आधृत है यथा $ax = b^2$ जो मात्र ज्यामितीय अभिव्यक्ति है। वेदमन्त्रों के स्वरों में प्राय:

अंकों और रेखाओं का ही प्रयोग होता है। दाशमिक प्रणाली आर्यों की ही देन है --(Laplace) जो एक महान् वैज्ञानिक थे, कहते हैं --

"How grateful we should be to the Hindus who discovered this great decimal system that did not occur to the minds of such mighty mathematicians as Archimedes and Appollonus" -- Laplace

Elphinston says --

"The geometrical skill of the Hindus in shown among other forms by their demonstrations of various properties of triangles, some of which were unknown in Europe till published by clavius".

Monier Williams says--

"To the Hindus is due the invention of Algebra and Geometry and their application to Astronomy."

Mr. Colebrooke says-

"The application of Algebra to astronomical investigations and geometrical demonstrations is also the invention of the Hindus and their manner of conducting is even now entitled to admiration"

Really, "The credit of the discovery of the principle of differential calculus is generally claimed by the Europeans, but it was known to the Hindus centuries ago as it has been referred to in various places by Bhāskarāchārya, one of the greatest mathematicians of the world."

Professor Macdonell writes --

"In Science too, the debt of Europe to India has been considerable. There is in the first place, the great fact that the Indians invented the numerical figures used all over the world. The influence which the decimal system of reckoning, dependent on those figures has had, not only on mathematics but on the progress of civilization in general, can hardly be over-estimated. During the eighth and ninth centuries the Indians became the teachers in Arithmatic and Algebra of the Arabs, and through them of the nations of the west."

(A History of Sanskrit Literature, p. 414).

Acharya Vaidyanath Shastri writes --

"In fact, in its historical perspective, the discovery of Zero by the Indian Scholars is the greatest triumph in the History of Mathematics."

Schlegal writes --

"The decimal cyphers, the honour of which next to letters the most important of himan discoveries has, with the common consent of historical authorities been ascribed to Hindues".

Mrs. Manning says --

"To whatever encyclopaedia, Journal or essay we refer, we uniformly find our numerals traced to India."

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान के अन्तर्गत स्नायुमण्डल, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, सीखना, स्मरण, विस्मरण, कल्पना, चिन्तन, अनुभूति, संवेग, प्रेरणा, चेतना, स्वप्न, व्यक्तित्व, विफलता आदि विषय संक्षेपतः लिए जाते हैं।

मनो ब्रह्म(गोप०, 1·2·11), मनो वै प्रजापतिः(तैत्ति०, 3·7·1·21), मन एव सर्वम् (गोप०, 1·5·15), अनन्तं वै मनः(शत०, 14·6·1·11), मनो वा अपरिमितम्(कौषी०, 2·6·3), मनो देवः (गोप०, 1·2·11), मन एवाग्निः (शत०, 10·1·2·3), मनो वै समुद्रः (शत०, 7·5·2·52), तस्य मनसः एषा कुल्या यद् वाक्" (जै०उप०ब्रा० 1·58·3), अपूर्वं प्रजापतेस्तनूः यन्मनः(ऐत० 5·25)

"यद् हि मनसाऽभिगच्छति तद् वाचा वदति"

(ता०ब्रा०, 11·1·3)

"मनसि हि अयमात्मा प्रतिष्ठितः"

(शत०, 6·7·1·21)

"मनो वै प्राणानामधिपतिः" (शत०, 14·3·2·3)

"मनसा ह्येव पश्यति, मनसा श्रृणोति"

(शत०, 14·4·3·8)

"मनो वै सम्राट परमं ब्रह्म" (बृह०उप०, 4·1·6)

"कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिः
ह्रीः धीः भीः इत्येतत् सर्वं मन एव"

(शत०, 14·4·3·9)

"मनो ज्योतिः" (बृह०उप०, 3·9·10)

"अयं पुरुषः मनोमयः" (बृह०उप०, 5·6·1)

"मन एवास्य आत्मा" (बृह०उप०, 1·4·17)

"अन्योन्ऽतर आत्मा मनोमयः" (तै०उप०,2·3)

"मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा" (बृह०उप०, 3·1·6)

"मनसैवेदमाप्तव्यम्" (कठ०उप०, 2·1·11)

निम्न मन्त्र संवेदना, चेतना, अवधान, आकूति(अनुभूति), मति, श्रवण और दर्शन की ओर इंगित करता है ---

"मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ।।"

(अथर्व०, 6·41·1)

यह मन अभ्यास और वैराग्य से पकड़ में आने वाला है ---

"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते"

(गीता०, 6·35)

मन त्रिकालदर्शी है। मस्तिष्क में ऋत के तन्तु विद्यमान हैं ---

"ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्"

(यजु०, 32·12)

मन ही मनुष्य के बन्ध व मोक्ष का हेतु है ---

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"

(शाट्या०उप०,1)

यह मन सुख का वर्षक है ---

"मनो वै पाथ्यो वृषा" (शत०,6·4·2·4)

"मनो हृदये श्रितम्" (तैत्ति०, 3·10·8·6)

"कस्मिन् नु मनः प्रतिष्ठितं भवतीति हृदय इति"

(शत०, 14·6·9·25)

"न ह्ययुक्तेन मनसा किंचन संप्रति शक्नोति कर्तुम्"

(शत०, 6·3·1·14)

"मनसा हि कामान् कामयते"

(बृह0उप0, 3·2·7)

मन की ज्योति की किरण है --

"मनो ह वा अंशु:"

(शत0, 11·5·9·2)

मन मानव शरीर का चालक है,

"मन: प्रग्रहमेव च" (कठ0, 1·3·3)

वायु और मन से तीव्रतर कुछ भी नहीं --

"न वै वातात् किंचन आशीयोऽस्ति, न मनस: किंचन आशीयोऽस्ति, तस्मादाह वातो व मनो वेति"

(शत0, 5·1·4·8)

अपने मन को कभी झुकाये नहीं --

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्"

(गीता0, 6·5)

एकाग्र मन या तीव्र संवेगयुक्त मन अपने लक्ष्य तक शीघ्र ही जा पहुँचता है --

"तीव्र संवेगानामासन्न:" (योग0, 1·21)

"तत्रैकाग्रं मन: कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रिय:"

(गीता0, 6·12)

"यन्मनसा ध्यायति, तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति, तत् कर्मणा करोति, यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते"।

(उपनिषद्)

मन बड़े संकल्प वाला है --

"मनसा संकल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति"

(अथर्व0, 12·4·31)

"क्रियासिद्धि: सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ।

"मनो हि पूर्व वाच:, यद् हि मनसाभिगच्छति तद् वाचा वदति" (तां०ब्रा०, 11·1·3)

"वाग्वै मनसो ह्रसीयसी" (शत०, 1·4·4·7)

"वाग्वै समुद्रो मन: समुद्रस्य चक्षु:"

(तां०ब्रा०, 6·4·7)

यह आत्मा रहता तो हृदय के भीतर है पर ज्ञानेन्द्रियाँ व मन द्वारा दूर-दूर तक चला जाता है --

"वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीइदं ज्योतिर्हृदय आहितं यद् ।
वि मे मनश्चरति दूर आधी: किं स्विद् वक्ष्यामि किमुनू मनिष्ये।।"

(ऋ०, 6·9·6)

पतंजलि के अनुसार मन के पाँच धर्म हैं --
प्रमाण(True Cognition), विपर्यय(The False Cognition), विकल्प(Verbal Cognition), निद्रा और स्मृति ।

यजुर्वेद का शिवसंकल्पसूक्त वस्तुत: मन के बारे में पूरा-पूरा विवरण देता है, जो क्रम से द्रष्टव्य है --

मन की गति अज्ञेय है --

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं, तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं, तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु ।।"

(यजु०, 34·1)

मानवों का प्रेरक मन ही है --

"येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीरा: ।
यदपूर्वं यक्षमन्त: प्रजानां तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु ।।"

(यजु०, 34·2)

मन ही दिव्य ज्योति और कर्माधार है --

"यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।"

(यजु०. 34·3)

मन तीनों कालों का अधिष्ठाता है --

"येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।"

(यजु०. 34·4)

"यत् ते भूतं च भव्यं च, मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आवर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे ।।"

(ऋ०. 10·58·12)

मन सारे ज्ञानों का अधिष्ठान है --

"यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।"

(यजु०. 34·5)

मानवों का नियन्ता मन है, जो परम गतिशील और हृत्प्रतिष्ठ है --

"सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते भीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।"

(यजु०. 34·6)

मन अविनश्वर है --

"यद् देवा देवान् हविषयजन्त अमर्त्यान् मनसा मर्त्येन"

(अथर्व०. 7·5·3)

मन दैवीशक्ति से ओत-प्रोत है --

"अवः परेण पितरं यो अस्य वेद अवः परेण पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्रवोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ।।"

(अथर्व०. 9·9·10)

मन शक्ति का अजस्त्र स्रोत है —

"वातो वा मनो वा, गन्धर्वा: सप्तविंशति: ।
ते अग्रे अश्वमयुञ्जन्, ते अस्मिन् जवमादधु: ।।"

(यजु0, 9·7)

मन अतिशय वेगयुक्त है —

"यथा मनो मनस्केतै: परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्रपत, मनसो नु प्रवाय्यम् ।।"

(अथर्व0, 6·105·1)

"यत् ते दिवं यत् पृथिवीं, मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आवर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे ।।"

(ऋ0, 10·58·2)

"यत् ते विश्वमिदं जगत्, मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आवर्तयामसि- इह क्षयाय जीवसे ।।"

(ऋ0, 10·58·10)

मन सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञाता है —

"ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमान: सर्वा दिश: पवते मातरिश्वा"

(अथर्व0, 13·3·19)

मन हृदय का निदेशक है —

"मनश्चिन्मे हृदय आ प्रत्यवोचद् ---"

(ऋ0, 8·100·5)

मन अक्षय ज्ञानयुक्त है —

"पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति, तां गन्धर्वोवदद् गर्भेऽन्त:"

(ऋ0, 10·177·2)

मन का कार्य है संकल्प —

"मनसा संकल्पयति, तद् देवाँ अपि गच्छति"

(अथर्व0, 12·4·31)

"मनस: काममाकूतिं वाच: सत्यमशीय"

(यजु0, 39•4)

ज्ञान-कर्म मन के ही गुणधर्म हैं --

"भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्"

(ऋ0, 10•25•1)

मन का कार्यक्षेत्र व्यापक है --

"परो निर्ऋत्या आचक्ष्व, बहुधा जीवतो मन:"

(अथर्व0, 20•96•24)

मन छठा है जिससे अच्छे-बुरे दोनों काम होते हैं --

"इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मन: षष्ठानि
मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजेघोरं तैरेवशान्तिरस्तु न:।"

(अथर्व0, 19•9•5)

मन को बुद्धि से चेतना प्राप्त होती है --

"चिकित्वन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्" ।

(ऋ0, 8•95•5)

मन ही शुभ-अशुभ का कर्त्ता है --

"इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं, तेनैव शान्तिरस्तु न: ।।"

(अथर्व0, 19•9•4)

मन के द्वारा ही दूसरे के मन को वशीकृत किया जाता है --

"अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि, ममचित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि व: कृणोमिमम यातमनुवर्त्मान एत" ।।

(अथर्व0, 3•8•6)

हमारा मन शिवोन्मुख बने --

"सं वर्चसा पयसा संतनूभिरगन्महि मनसा संशिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम्"

(अथर्व0, 6•53•3)

शुद्ध मन और तप के आचरण से मनुष्य मुक्त होता है —

"यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तम् अन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ।।"

(अथर्व0, 6·122·4)

मन शुद्ध होने पर पाप नष्ट हो जाते हैं —

"भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ।"

(यजु0, 15·39,40)

मेरे मन के संकल्प सफल हों —

"आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं, विश्वेदेवासो अधिवोचता नः।"

(अथर्व0, 5·3·4)

मेरे मन से पाप दूर चला जाये, मैं सद्गृहस्थ बनूँ —

"परोऽपेहि मनस्पाप, किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये, वृक्षां वनानि संचर। गृहेषु गोषु मे मनः।"

(अथर्व0, 6·45·1)

मनोनिग्रह से मृत्यु का अपनोदन होता है —

"यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो, जीवातवे न मृत्यवे। अथो अरिष्टतातये।"

(ऋ0, 10·60·8)

"यमादहं वैवस्वतात्, सुबन्धोर्मन आभरम्"

(ऋ0, 10·60·10)

मन ही रथ है —

"मनो अस्या अन आसीद् —— यदयात् सूर्या पतिम्"

(अथर्व0, 14·1·10)

संजीवनीशक्तियुत है मन --

"आ न एतु मनः पुनः, क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे।"

(यजु०, 3·54)

अभीप्सितार्थ स्थिर निश्चय वाले मन को भला कौन डिगा सकता है --

"न वा उ मां वृजने वारयन्ते,न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात, एवेदनु द्यून किरणः समेजात ।।"

(ऋ०, 10·27·5)

"अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद् धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन"।

(ऋ०, 10·48·5)

सोमपान से मनोबल बढ़ता है --

"अभि द्यां महिना भुवम्, अभीमां पृथिवीं महीम् ।
कुवित् सोमस्यापामिति"।

(ऋ०, 10·119·8)

"अवधीत् कामो मम ये सपत्ना ----
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्त्रो मह्यं षड्उर्वीर्घृतमा वहन्तु।"

(अथर्व०, 9·2·11)

मनोबल लोक-कल्याणकारी होना चाहिए --

"मनोऽन्वाहुवामहे, नाराशंसेन स्तोमेन ।
पितॄणां च मन्मभिः ।"

(यजु०, 3·53)

मनोबल से सब साध्य है --

"यमैच्छाम मनसा सोऽयमागाद् ---- "

(ऋ०, 10·53·1)

"हन्ताहं पृथिवीमिमां, नि दधानीह वेहवा ।
कुविद् सोमस्यापामिति ।"

(ऋ०, 10·119·9)

मनोबल से सारे शत्रु नष्ट होते हैं --

"अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाड् अभी द्वा किमुत्रय: करन्ति"

(ऋ०, 10·48·7)

मन और बुद्धि को परमात्मा में लगावे --

"युन्जते मन उत युन्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चित:"

(यजु०, 5·14)

"त्वं धियं मनोयुजं, सृजा वृष्टिं न तन्यतु:"

(ऋ०, 9·100·3)

हृदय और मन का समन्वय हो --

"संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृद:"

(अथर्व०, 6·74·2)

"यो व: शुष्मो हृदयेष्वन्त: आकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा।
तान् सीवयामि हविषा घृतेन मयि संजाता रमतिर्वोऽस्तु।

(अथर्व०, 6·73·2)

शरीर- मन व कर्म में समन्वय हो --

"सं व: पृच्यन्तां तन्व:, सं मनांसि समु व्रता"

(अथर्व०, 6·74·1)

"सं वो मनांसि सं व्रता, समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन, तान् व: संनमयामसि ।।"

(अथर्व०, 3·8·5)

इच्छा शक्ति(आकूति) सौभाग्य की दात्री है --

"आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नोऽस्तु"

(अथर्व०, 19·4·2)

"आकूत्या नो बृहस्पते, आकूत्या न उपागहि"

(अथर्व0, 19·4·3)

"अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव"

(अथर्व0, 9·2·7)

"ज्यायान् निमिषतो सि तिष्ठतो ज्यायान् समुद्रादसि काम मन्यो ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान् तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि।

(अथर्व0, 1·2·23)

मन्यु(उत्साह) और इच्छाशक्ति का संयोग सुखद हो -

"यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि"

(अथर्व0, 11·8·1)

हमारे मन को सब ओर से भद्र संकल्प प्राप्त हों --

"आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो ---- "

(यजु0, 25·14)

मन में आकर्षण-शक्ति है ---

"यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् व आवर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ।।"

(अथर्व0, 7·12·4)

शुद्ध मन अजेय है ---

"यो मा पाकेन मनसा चरन्तम्, अभिष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ।।"

(अथर्व0, 8·4·8)

सौमनस्य से समरसता बढ़ती है ---

"शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्य मानः।"

(अथर्व0, 7·43·1)

हम मन द्वारा सबसे ऐकमत्य स्थापित करें -

"सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा, मायुष्महि मनसा दैव्येन"

(अथर्व०, 7·52·2)

शुद्ध मन से आत्म-साक्षात्कार होता है --

"पतङ्‌गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चित:"

(ऋ०, 10·177·1)

विचार भेद से ही प्रवृत्ति भेद है --

"नानानं वा उ नो धियो, विव्रतानि जनानाम्"

(ऋ०, 9·112·1)

संकल्पशक्ति मन की विभूति है व आग्नेय तत्त्व है --

"कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्"

(अथर्व०, 19·52·1)

"मनो मेधामग्निं प्रयुजं स्वाहा। चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजं स्वाहा।

(यजु०, 11·66)

संकल्प शक्ति से ही अशुभ-निवारण और अभीष्ट की प्राप्ति होती है --

"यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनंदति।
तद् दुष्वप्न्यं प्रतिमुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम्।"

(अथर्व०, 9·2·2)

"य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकाम: सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ।।"

(ऋ०, 10·160·3)

मनोबल से पापी को जीते --

"योऽस्मान् चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ।"

(अथर्व०, 5·6·10)

ईर्ष्या से मानसिक पतन होता है --

"अदो यत् ते हृदि श्रितं, मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि, निरूष्माणं दृतेरिव ।।"

(अथर्व0, 6·18·3)

"एतामेतस्येर्ष्याम्, उद्नाग्निमिव शमय"

(अथर्व0, 7·45·2)

हम निष्पाप हैं। दुर्विचार का फल पापी को मिले --

"अजैष्माद्यासनाम चाऽभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्न: संकल्प:, पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु ।
यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु।"

(ऋ0, 10·164·5)

काम के दो रूपों में से हमें शुभ की प्राप्ति हो --

"यास्ते शिवास्तन्व: काम भद्रा याभि: सत्यं भवति यद् वृणीषे
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्व अन्यत्र पापीरप वेशया धिय:।"

(अथर्व0, 9·2·25)

अत: हम दैवी मन से कभी पृथक् न हों --

"संजानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन"

(अथर्व0, 7·52·2)

डॉ0 वी0जी0 रेले लिखते हैं --

"Our present anatomical knowledge of the nervous system tallies so accurately with the literal description of the world given in the Rigveda that a question arises in the mind whether the Vedas are really religious books whether they are books on anatomy and physiology of the nervous system without the thorough knowledge of which psychological deductions and philosophical speculations can not be correctly made."

वेदों में सर्वत्र "चरैवेति" के रूप में जीवनवाद की झलक मिलती है। श्रुतियों के प्रामाण्य से ही मनुष्य स्वधर्म में प्रविष्ट होता है "श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै" (मनु0, 2·13)

<u>भूगोल विज्ञान तथा ज्योतिषविज्ञान</u>

भूगोलविज्ञान के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र-पृथ्वी आदि ग्रहों का अध्ययन किया जाता है। वेद में इनका विस्तार से वर्णन है —

"उत्पाता: पार्थिवान्तरिक्षा: शं नो दिविचरा ग्रहा:।
शं नो मित्र: --- --- --- ।।"
(अथर्व0, 19·9·7)

"शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीरा: शं --- --- ।।
नक्षत्र मुल्काभिहतं शमस्तु न: ---
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसा: शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतु: शं रुद्रास्तिग्मतेजस: ।।"
अथर्व0, 19·9·7-10)

"शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते।
मह्ना दिवं न तस्तभु: ।"
(ऋ0, 8·55·2)

"उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।"
(ऋ0, 1·24·8)

"अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद् दिवेयु:।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ।।"
(ऋ0, 1·24·10)

"चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमय: पदं विन्दन्ति विद्युतो ---- "

(ऋ0, 1·105·1)

"यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारय:।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ।"

(ऋ0, 8·12·30)

"अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्या: सप्त धामभि: ।"

(ऋ0, 1·22·16)

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे ।

(ऋ0, 1·22·17)

यहाँ विष्णु पद का अभिप्रेत सूर्य है --

"प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म ----
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभि: ।"

(ऋ, 1·154·3)

"अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवेरथं प्रासावीद् देव: सविता जगत् पृथक्।

(ऋ0, 1·157·1)

"नवोनवो भवति जायमानो अह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागम् देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायु:।"

(ऋ0, 10·85·19)

"सुषुम्ण: सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो
भेकुरयो नाम ---- "

(यजु0, 18·40)

Dr. Seal says --

"The astronomy and mathematics were not less advanced than those of Tycho Brahe, Carden and Fermat. Astronomy was equal to that of vasalius, the Hindu logic and methodology more advanced than that of Ramus and equal on the whole to Bacon's, the physio-chemical theories as to combustion, heat chemical affinuty, clearer, more rational and more original than those of Von, Helmont or Stahl; and the grammar whether Sanskrit or Prakrit, the most scientific and comprehensive in the world before popp. Rask and Grimm."

कुछ अन्य उद्धरण भी द्रष्टव्य है --

"पृथिवी वै सर्वेषां देवानाम् आयतनम्। अन्तरिक्षं वै सर्वेषां देवानाम् आयतनम्। द्यौर्वै सर्वेषां देवानां आयतनम्। सूर्यो वै सर्वेषां देवानाम् आयतनम्" ।

(शत०, 14·3·2·4)

"देवा वै सर्पाः तेषामियं पृथ्वी राज्ञी"

(तै०ब्रा०, 2·2·6·2)

"ते असुरा वा अयस्मयीं एवे मां पृथिवींअकुर्वन्"

(ऐत०, 1·23)

"परिमण्डल उ वा अयं पृथिवीलोकः"

(शत०, 7·1·1·37)

"अग्निगर्भा पृथिवी" (शत०, 14·9·4·21)

"त्रिवृद् हीयम् पृथ्वी" (शत०, 6·5·5·2)

"माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ इति"

(यजु०, 11·57)

"यथा माता पुत्रमुपस्थे बिभृयादेवमग्निं गर्भे बिभर्ति"

(शत०, 6·5·1·11)

"इयमु भूमिः वा एषां लोकानां प्रथमा असृज्यत"

(शत० 6·5·3·1)

"सूर्यस्येव हि चन्द्रमसो रश्मयः"

(शत०, 9·4·1·9)

"स वा एष आदित्यः न कदाचनास्तमेति नोदेति तं यदस्तमेतीति मन्यते अह्न एव तदन्तमित्वाऽथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुरुते परस्तादथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते हरेवावस्तात्कुरुते रात्रिं परस्तात्स वा एष न कदाचन निम्रोचति" (ऐ०ब्रा०, 3·44 तुलनीय गोपथ ब्रा०,उ०, 4·11)

आगे के मन्त्रों में यह बताया गया है कि ये सभी ग्रह पृथ्वी, चन्द्रादि सूर्य के आकर्षण में बँधकर टिके हुए हैं और बाँधने वाला अद्वितीय ब्रह्म है --

"अध सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ।
यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ।"

(ऋ०, 8·12·29-30)

"यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवे दिवे ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ।"

(ऋ०, 8·12·28)

"सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ।"

(अथर्व. 14.1.1)

यहाँ सोम का अर्थ (Gravitation) है।

सोमेनादित्या बलिन: सोमेन पृथ्वी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहित: ।।"

(ऋ0, 10·85·2)

"नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान् यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ।।"

(ऋ0, 10·31·8)

"हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।"

(ऋ0, 10·121·1)

<u>ग्रहों का परिभ्रमण</u>

अन्य मन्त्रों में आता है कि सूर्य अपने अक्ष पर और अन्य ग्रह सूर्य के चतुर्दिक् भ्रमण करते हैं।

"क: स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुन: ।
किं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ।।"
"सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुन: ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ।।"

(यजु0, 23·9-10)

"आयं गौ: पृश्निरक्रमीद् --- "

(यजु0, 3.6) ; ऋ0 10.189.1

यहाँ पृश्नि का अर्थ (Space) है।

"या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारत:।"

(ऋ0, 10·65·6)

"परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि"

(अथर्व0, 7·14·4)

Mr. Colebrooke says --

"Āryabhaṭṭ affirmed the diurnal revolution of the Earth on its axis, He possessed the true theory of the causes of solar and lunar eclipses and disregarded the imaginary dark planets of mythologists and astrologers, affirming the moon and primary planets (and even the stars) to be essentially dark and only illuminated by the sun. Even as late at 1702, Raja Jai Singh II was an expert in Hindu astronomy. He built five observatories at Jaipur, Muttra, Banaras, Delhi and Ujjain. He was proficient in astronomy for he was able to correct the astronomical tables to De La Hire published in 1702."

Bailly says --

"Indian table give the same annual variation of the moon as that discovered by Tycho Brahe, a variation unknown to the schools of Alexandria and also to the Arabs, who followed the calculations of this school."

Willson says --

"The originality of Hindu Astronomy is atonce established, but it is also proved by intrinsic evidence and although there are some remarkable coincidences between the Hindu and other systems, their methods are their own."

Weber says-

"The Arabs extolled the Hindu astronomers as during the 8th and 9th centuries, the Arabs were the disciples of Hindus. Mr. Devis calculates that the celebratee

Hindu astronomer Parāśar Judging from the observations made by him must have lived 1391 years before christ, and consequently, had read in the devine book of the heavenly firmament along before the chaldes, the Arabs and the Greeks."

दिन और रात्रि

इसका वर्णन निम्न मन्त्रों में है --

"अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभि: ।
वैश्वानरो जायमानो न राजा ऽवातिरज्ज्योतिषाऽग्निस्तमांसि"
(ऋ0, 6•9•1)

"यस्यां कृष्णमरुणं च संहते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि । वर्षेण
भूमि: पृथिवी वृतावृतासा नो दधातु भद्रयाप्रिये धामनि धामनि।"
(अथर्व0, 12•1•52)

ऐतरेय-ब्राह्मण(4•29) में भी पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने से दिन रात होने का वर्णन मिलता है।

पृथ्वी गोल है

इसका वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"इयं वेदि: परो अन्त: पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाच: परमं व्योम"।
(ऋ0, 1•164•35)

उत्तरायण-दक्षिणायन

इसका वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौयावद् रोदसी विबबाधे अग्नि:।
तत: षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्न:।"
(अथर्व०, 8·9·6)

छ: ऋतुएँ और बारह महीनों के दिन

इनका कथन वेद के निम्न मन्त्रों में पाया जाता है —

"द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कव: षष्टिश्च खीला अविचाचला ये।"
(अथर्व०, 10·8·4)

ऊपर 12 माह, 360 दिन तथा ग्रीष्म- वर्षा और शरद् इन तीन ऋतुओं का वर्णन है।

"द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थु:।"
(ऋ०, 1·164·11)

ऊपर साल के बारह महीनों तथा 720 अहोरात्र का वर्णन है।

"पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहु: परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम्।"
(ऋ०, 1·164·12)

"द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिता: षष्टिर्न चलाचलास:।"
(ऋ०, 1·164·48)

"साकं जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश: स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपश:।"
(ऋ०, 1·164·15)

"वेद मासोधृतव्रतो द्वादश प्रजावत:। वेदा य उपजायते।

ऊपर 12 महीनों के अलावा मलमास(Intercalary month) का भी उल्लेख हुआ है।(ऋ०, 1·25·8)

"वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहत: ।
वेदा ये अध्यासते।" (ऋ0, 1·25·9)

यहाँ प्रवह वायु वर्णित है --

"अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते"

यहाँ 30 दिनों का दिन व 30 रात्रि का उल्लेख है।

(अथर्व0, 13·3·8)

"संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्तेकल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्तां संवत्सरस्ते कल्पताम्"

(यजु0, 27·45)

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद(19·7·2-5) तक में 28 नक्षत्रों का वर्णन है -- कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, विशाखा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित्, श्रवण, श्रविष्ठा, शतभिषज्, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी --

"सुहवमग्ने कृत्तिकारोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिर: शमार्द्रा
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ।
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मेऽस्तु
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ।
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आवहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवण: श्रविष्ठा: कुर्वतां सुपुष्टिम्।
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आवहन्तु ।"

(अथर्व0, 19·7·2-5)

ऋतुएँ

वसन्त(मधु-माधव) - "मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ---"

(यजु0, 13•25)

ग्रीष्म(शुक्र-शुचि:) - "शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू --- "

(यजु0, 14•6)

वार्षिक(नभ:-नभस्य:)"नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू --- "

(यजु0 14•15)

शरद्(इष-ऊर्ज) - "इषश्चोर्जश्च शारदावृतू ---"

(यजु0, 14•16)

हेमन्त(सह: -सहस्य:) - "सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू ---।"

(यजु0, 14•27)

शिशिर(तप: तपस्य:) - "तप: तपस्यश्च शैशिरावृतू --- "

(यजु0, 15•57)

"वसन्त इन्नुरन्त्य: --- ग्रीष्म इन्नुरन्त्य: -- शिशिर इन्नुरन्त्य"

(सतम0, 616)

"वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि"

(अथर्व0, 8•2•22)

ग्रहण

गोपथ पूर्व में अत्रि को सूर्यग्रहण का जानने वाला कहा है --
"आदित्यं हि तमो जग्राह। तदत्रिरपानुनोद --- "

(गोप0पू0,2•17)

ऋग्वेद के (5•40) सूक्त में सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण का बहुत वैज्ञानिक वर्णन हुआ है, उदाहरण द्रष्टव्य हैं --

"यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुर: ।
अक्षेत्र विद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयु: ।।
स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसा पव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रि: ।।"
(ऋ0, 5·40·5-6)

"अत्रि: सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात् स्वर्भानोरप माया अधुक्षत्"
(ऋ0, 5·40·8)

"यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुर: ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन् ।।"
(ऋ0, 5·40·9)

ग्रहण सायन् परिभ्रमण का परिणाम है। तिलक प्रो0 लुडविग को उद्धृत करके लिखते हैं --

"That the Rigveda mentions the inclination of the ecliptic with the equator (Rg. 1.12.12) and the axis of the earth (Rg. 10.89.4)", Orion, p. 158.

ऋग्वेद के एक मन्त्र में आता है कि 5 प्रबल देव द्युलोक के मध्य में रहते हैं --

"अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिव:"
(ऋ0, 1·105·10)

एक अन्य मन्त्र में जो तैत्तिरीय-ब्राह्मण का है, में मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक का वर्णन मिलता है --

"ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद । उभयोरेनं लोकयोर्विदु: ।

हस्त एवास्य हस्तः। चित्रा शिरः। निष्ट्या(स्वाति)हृदयम्।
उरु विशाखे। प्रतिष्ठानुराधाः। एष वै नक्षत्रिय: प्रजापतिः।"
(तैत्ति०ब्रा०, 1·5·2)

औषधि-विज्ञान तथा चिकित्सा-विज्ञान

भेषज तत्त्व सृष्टि में विद्यमान है --
"भेषजमसि भेषजं गवे श्वाय पुरुषाय भेषजम् ।"
(यजु०, 3·59)

वह इन्द्र सूर्यरश्मियों, प्राणशक्तियों द्वारा हमें आरोग्य दें --
"आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यम् भेषजा करत्।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति।।"
(यजु०, 25·46)

अग्नि भेषज गुणों से युक्त है --
"अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भव"
(यजु०, 25·47)

जलों में भेषज-तत्त्व वर्तमान है --
"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्"
(यजु०, 9·6)

"सं त्वा विशन्त्वोषधीरुताप:"
(यजु०,20·19)

"सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः"
(यजु०, 18·35)

वायु भी ओषधि गुण वाला है --
"वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत्।" (ऋ०, 10·187·1)

सूर्यरश्मियाँ भी ओषधि का कार्य करती हैं --

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"

(यजु०, 7·42)

"उद्यन्नादित्य: कृमीन् हन्तु"

(अथर्व०, 2·32·1)

सूर्य-रश्मियों से कर्णपीड़ा, शिर:पीड़ा शान्त होती है --

"शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।

सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे।"

(अथर्व०, 9·8·1)

यज्ञ से सूर्य और जल भी हवियुक्त हो जाते हैं और आरोग्य प्रदान करते हैं --

"अग्नौ प्रास्ताहुति: सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टि: वृष्टेरन्नं ततो प्रजा: ।।"

(मनु०, 3.76)

"हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ आविवासति ।

हविष्मान्देवो अध्वरो हविष्माँ अस्तु सूर्य: ।।"

(यजु० 6·23)

अग्नि ही सबको सबका भाग पहुँचाकर तृप्त करते है --

"अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयीस्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ ।"

(यजु०, 6·24)

अश्विनौ कुशल भिषक् हैं जिनसे भेषज यज्ञ विस्तार पाता है --

"देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना"

(यजु०, 19·12)

परमेश्वर ने भेषजरूप 3 दिव्यशक्तियों को संगत किया है --

"होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजम् ---- "

(यजु0, 28·8)

ओषधियों का सूक्ष्म भाग सोम है --

"यदत्र रिप्तं रसिन: सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभि:।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ।।"

(यजु0, 19·35)

मधुर वचन बोलना भी रोगी को आरोग्य देता है --

"वाचो मे विश्वभेषज:"

(यजु0, 20·34)

"वाचा सरस्वती भिषक्"

(यजु0, 19·12)

"भेषजं न: सरस्वती"

(यजु0, 20·64)

वरुण परम भिषक् हैं --

"वरुणं भिषजां पतिम् "

(यजु0, 21·40)

ओषधियाँ रोग का हरण करती हैं --

"सहस्व सर्वं पाप्मानं सहमानास्योषधे"

(यजु0, 12·99)

निम्न मन्त्र में परिपक्व औषधियाँ लेने की सलाह दी गई है। ये ओषधियाँ 107 मर्मस्थानों में व्याप्त हो प्रभाव दिखाती हैं --

"या ओषधी: पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ।।"

(यजु0, 12·35)

"यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ।।"

(यजु0, 12·80)

औषधियों के बारे में जानना बहुत आवश्यक है —

"अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ।।"

(यजु0, 12·81)

औषधियों की जननी शक्ति है —

"इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः"

(यजु0, 1·83)

औषधियों से रोग चोर के समान पलायन करते हैं —

"अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ।।"

(यजु0, 12·84)

"यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ।।"

(यजु0, 12·85)

"यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं विबाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ।।"

(यजु0, 12·86)

"शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ।।"

(यजु0, 12·76)

"ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ।।"

(यजु0, 12·77)

ओषधियाँ मातृवत् हैं —

"ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ।।"
(यजु०, 12·78)

"अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाजइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।"
(यजु०, 12·79)

ओषधियों का मिश्रण प्रभूत गुणकारी है —

"अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ।।"
(यजु०, 12·88)

ओषधियों का संग्रह हो क्योंकि वे परम गुणशाली हैं —

"मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ।।"
(यजु०, 12·95)

"त्वां गन्धर्वा अखनंस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ।।"
(यजु०, 12·98)

"दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ।।"
(यजु०, 12·100)

"याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पति प्रसूतास्ता नो मुञ्चत्वंहसः ।।"
(यजु०, 12·89)

"या ओषधी: सोमराज्ञी विष्ठिता: पृथिवीमनु ।
बृहस्पति प्रसूता अस्यै संदत्त वीर्यम् ।।"

(यजु०, 12·93)

"याश्चेदमुपश्रृण्वन्ति याश्च दूरं परागता: ।
सर्वा: संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्यम् ।।"

(यजु०, 12·94)

दृष्टि को दिव्य बनाने वाली तथा सपत्नियों को बाधित करने वाली औषधियों का भी वर्णन मिलता है --

"इमां खनाम्योषधिं ---- पतिं मे केवलं कुरु ।"

(ऋ०, 10·145·1-2)

"आपश्यति प्रति पश्यति परापश्यति ---- पश्यति ।"

(अथर्व०, 4·20·1)

"स्वरूपकृत्त्वमोषधे"

(अथर्व०, 1·24·3)

शरीर-रचनाशास्त्र

एक मन्त्र में एड़ी, गुल्फ, अंगुली, उच्छ्लंखा (पादतल का पोला भाग), जंघा का वर्णन है --

"केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
केनांगुली: पेशिनी: केन खानि केनोच्छ्लंखौ मध्यत: क: प्रतिष्ठाम्।
कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधु: क्वस्विज्जानुनो: सन्धी क उ तच्चिकेत।"

(अथर्व०, 10·2·1-2)

एक अन्य मन्त्र में भी शरीर विषयक विवरण प्रस्तुत हुआ है --

"लोमभ्य: स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्य: स्वाहा। मांसेभ्य: स्वाहा, स्नावभ्य:स्वाहा अस्थभ्य:मज्जभ्य: स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा।" (यजु०, 39·10)

यह शरीर आठ चक्र और नव-द्वार वाला है तथा जिसके भीतर दीप्तिमान् आनन्दमय कोश भी है, जो ज्योति-पूरित है --

"अष्टा चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।"
(अथर्व०, 10·2·31)

शरीर में ही श्री, यश, कान्ति, अमृत, साहस, मोद और प्रमोद का वास है -- भुजबल, आत्मबल, आनन्द आदि सब इसी में है --

"शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ।
जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ।
बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मेकर्मवीर्यम् ।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ।
पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी ।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ।
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् ।
आनन्दनन्दा वाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः ।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः"
(यजु०, 20·5-9)

आत्मा अमर और सनातन है जबकि शरीर मरणधर्मा और विनश्वर है। शरीर और आत्मा का सम्बन्ध पुरातन है। कुछ मन्त्रों से उद्धरण द्रष्टव्य है --

"अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तो अमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः ।।"
(ऋ०, 6·9·4)

"अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः"

(ऋ0, 1·164·38)

"अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ।।"

(ऋ0, 1·164·31)

"को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।"

(ऋ0, 1·164·4)

"पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽर्पितानि"

(यजु0, 23·52)

शतपथ-ब्राह्मण(14·8·4·1) में हृदयम् को "तदेतत् त्र्यक्षरम्" कहा गया है हृ-द-यम् (हृ= Taking)(द= Giving)(यम् = Circulation) अर्थात् जो रक्त का आहरण, प्रदान और संचालन करता है।

अथर्ववेद(10·2·26) में एक मन्त्र आता है --

"मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधिशीर्षतः ।"

(अथर्व0, 10·2·26)

यहाँ शिर के लिए मूर्धा, मस्तिष्क और शीर्ष शब्दों का प्रयोग है, जो मस्तिष्क के तीनों भागों की ओर संकेत करते हैं अर्थात् --

1. **Cerebrum**
2. **Cerebellum, and**
3. **Medula oblongata.**

अथर्ववेद(10·9) तथा(10·2) में हमें सभी मानव-अंगों का वर्णन प्राप्त होता है।

स्नायु, नाड़ियों और धमनियों का वर्णन हमें अथर्ववेद के निम्न

मन्त्रों में प्राप्त होता है --

"अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ।
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद् धमनिर्मही ।
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ।"

(अथर्व0, 1·17·1-3)

"इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत ।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ।।"

(अथर्व0, 7·35·2)

यजुर्वेद(25·7) तथा (39·10) में भी शरीर के आधारभूत तत्त्वों का परिगणन किया गया है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में शरीर के सात तत्त्वों की सप्तशक्तियों का वर्णन है, जो कान्ति और सौन्दर्य का आधार हैं --

"सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम्। सप्तोऽधि श्रियो धिरे।"

(ऋ0, 8·28·5)

ऋग्वेद(3·47·1) में जठरम् शब्द पेट के लिए प्रयुक्त हैं। यजुर्वेद के एक मन्त्र में गर्भ का वर्णन है --

"रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना ।।"

(यजु0, 19·76)

"एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह"

(यजु0, 8·28)

विविध रोग

1- ज्वर का वर्णन वेद में बहुतायत से मिलता है। वहाँ ज्वर का कारण, उसके प्रकार और निवारण का उपाय भी बताया गया है। यथा --

"यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परिवृङ्ग्ध तक्मन् ।
यदर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
ह्रुडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परिवृङ्ग्ध तक्मन् ।
यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः ।
ह्रुडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परिवृङ्ग्ध तक्मन् ।
नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने।"

(अथर्व0, 1·25·1-4)

"नमो रूराय च्यवनाय चोदनाय धृष्णवे ।
नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः ।"

(अथर्व0, 7·116·1-2)

"अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ।।"

(अथर्व0, 6·20·3)

"यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।"

(अथर्व0, 9·8·6)

"अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ्वा परेहि ।।"

"यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परासुव।
अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ।
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ।

(अथर्व0,5•22•2-5)

"यत् त्वं शीतोऽथ रूरः सह कासावेपयः ।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परिवृङ्ग्धि नः।"

(अथर्व0, 5•22•13)

"तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम्"

(अथर्व0, 5•22•13)

"गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परिदद्मसि ।"

(अथर्व0,5•22•14)

भगन्दर या(अर्श) की दवा पृश्निपर्णी बताई गई है --

"अराय्यमसृक् पावानम् यश्च स्फातिं जिहीर्षति । गर्भादम्
कण्वम् नाशाय पृश्निपर्णी सहस्व च" ।

(अथर्व0, 2·25·3)

कुष्ठनाशक ओषधियाँ निम्न मन्त्र में वर्णित हैं --

"नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्"

(अथर्व0, 1•23•1)

"आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् ।"

(अथर्व0, 1·24·2)

"ऐतु देवस्त्रायमाण: कुष्ठो हिमवतस्परि"

(अथर्व0, 19·39·1)

गठिया की दवा दशवृक्ष बताई गई है --

"दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ।"

(अथर्व0, 2·9·1)

चर्म-रोग की दवा वटवृक्ष है --

"विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पती विश्लपाकस्योषधे
मोच्छिष: पिशितं च न" ।

(अथर्व0

रुधिरस्राव (Haemorrage) की औषधि का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ।"

(अथर्व0, 2·3·5)

हृद्रोग तथा कामला रोग का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गोरोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ।"

(अथर्व0, 1·22)

नेत्र-रोगों के निवारणार्थ भी औषधियों का वर्णन है --

"तिस्रो दिवस्तिस्र: पृथिवी: षट्चेमा: प्रदिश: पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ।"

(अथर्व0, 4·20·2)

बालों की ओषधि निम्न मन्त्र में है --

"देवी देव्यामधिजाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ।
दृंह प्रत्नाञ्जनयाजातान्जातानु वर्षीयसस्कृधि ।
यस्ते केशो वपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।
इदं ते विश्वभेषज्याभिषिञ्चामि वीरुधा ।"

(अथर्व0, 6·136·1-3)

स्पर्श से रोग फैलने की ओषधि निम्न मन्त्र में वर्णित है, वह ओषधि है अपामार्ग --

"श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत्सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ।"

(अथर्व0, 7·65·3)

कीटाणु-जनित रोग की ओषधि भी वर्णित है, ये कीटाणु हैं अमीवा और दुर्णाम् --

"यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ।"

(ऋ0, 10·162·2)

"यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचै:
तदग्ने विद्वान् पुनराभर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयाम: ।"

(अथर्व0, 5·29·5)

अथर्ववेद(8·6) में रोग के कारणभूत अनेक कीटाणुओं का विस्तृत विवरण दिया है जिनमें मुख्य है -- राक्षस, पिशाच और यातुधान ।

वाजीकरण की ओषधि निम्न मन्त्र में है --

"तां त्वा वयं खनाम्योषधिं शेपहर्षणीम्"

(अथर्व0, 4·4·1)

"उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ।"
(अथर्व0,4•4•4)

"आहं तनोमि ते पसो अधिज्यामिव धन्वनि"
(अथर्व0, 4•4•7)

निद्रा लाने की औषधि निम्न मन्त्र में है --

"सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ।"
(अथर्व0, 4•5•1)

विष दूर करने की औषधि निम्न मन्त्र में है --

"देवा अदुः सूर्यो ऽदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥"
(अथर्व0, 6•100•1)

सर्प-विष-दूरीकरण निम्न मन्त्र में है --

"अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि। विषे विषमपृक्था विषमिद्
वा अपृक्थाः। अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि"
(अथर्व0, 7•88•1)

क्षेत्रिय रोग की औषधि निम्न मन्त्र में वर्णित है --

"उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥"
(अथर्व0, 2•8•1)

कृमि-नाश का वर्णन निम्न मन्त्र में हैं --

"इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ॥"
(अथर्व0,2•31•1)

"ओते मे इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति"

(अथर्व0, 5·23·1)

गर्भदृंहण का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।

एवा ते ध्रियतां गर्भोऽनु सूतुं सवितवे ।।"

(अथर्व0, 6·17·1)

इषु-निष्काशन का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।

इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं विवृहामसि ।"

(अथर्व0, 6·90·1)

कास-नाश का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"यथा सूर्यस्य रश्मय: परापतन्त्याशुमत् ।

एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ।"

(अथर्व0, 6·105·3)

उन्मत्तता-मोचन का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"पुनस्त्वा दुरप्सरस: पुनरिन्द्र: पुनर्भग: ।

पुनस्त्वा दुर्विश्वेदेवा यथानुन्मदितो ससि ।"

(अथर्व0, 6·111·4)

क्लीब करने का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।

एवा भिनद्मि ते शेपो मुष्या अधि मुष्कयो: ।।"

(अथर्व0, 6·138·5)

अच्छे दाँतों का वर्णन निम्न मन्त्र में वर्णित है --

"यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सत: पितरं मातरं च ।

तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेद: ।।"

(अथर्व0, 6·140·1)

"उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमंगलौ"

(अथर्व0, 6·140·3)

वेद में कहा है कि सुअर, नेवले आदि औषधियों की अच्छी परख रखते हैं। उसी प्रकार चील, हंस, गाय, अज, रघट और मेष भी औषधियों के पारखी हैं, मैं उन सब औषधियों का संग्रह करता हूँ --

"वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ।
या: सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदु: ।
वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिण: ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ।
यावतीनामोषधीनां गाव: प्राश्नन्त्यघ्न्या यावती नाम जावय:।
तावतीस्तुभ्यमोषधी: शर्म यच्छन्त्वाभृता:"

(अथर्व0, 8·23-25)

औषधियाँ प्राणशक्ति से उत्पन्न होती है--

"आथर्वणी राङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधय: प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ।।"

(अथर्व0, 11·4·16)

अपामार्ग को क्षुधानाशक व तृषानाशक कहा है तथा वह सारे औषधियों का प्राणभूत है --

"क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ।।"

(अथर्व0, 4·17·6)

"अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी"

(अथर्व0, 4·17·8)

पुनर्युवा बनाने वाली विद्या ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में है --

"युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथु: शचीभि:'

(ऋ0 1.117.13)

यक्ष्मा-नाशक ओषधि का विशेष विवेचन निम्न मन्त्र में है --

"अंगादंगाल्लोम्नो लोम्नो जातं पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते।"
(ऋग्० 10.163.6)

यज्ञ-चिकित्सा से अनेकशः लाभ होते हैं। यथा --

"मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् "
(अथर्व०, 3.11.1)

"यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ।।"
(अथर्व०, 3.11.2)

गुग्गुलु के सेवन से यक्ष्मा व स्पर्शजन्य रोग नहीं होते --

"न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथोऽश्नुते ।
यं भेषजस्य गुग्गुलो सुरभिर्गन्धो अश्नुते ।।"
(अथर्व०, 19.38.1)

यज्ञ एक पूर्ण चिकित्सा-पद्धति है --

"प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च
म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे
श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" ।
(यजु०, 18.2)

"अयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे दीर्घायुत्वं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।"
(यजु०, 18.6)

"मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" ।
(यजु०, 18.11)

"आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां
श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा
यज्ञेन कल्पताम्" (यजु०, 18.29)

"उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ।"

(अथर्व0, 19·63·1)

उपरोक्त ज्ञान द्वारा हम पूर्णायु करें --

"पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः
शतम् प्रब्रवाम शरदः शतम्"

(यजु0, 36·24)

शंखमणि का धारण करना आयु, बल, वर्चस् के लिए नितान्त उपादेय है --

"शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्व भेषजः कृशनः पात्वंहसः ।।"

(अथर्व0, 4·10·3)

"शंख आयुष्प्रतरणो मणिः"

(अथर्व0,4·10·4)

"तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय
कार्शनस्त्वाभि रक्षतु"

(अथर्व0, 4·10·7)

इसी प्रकार आत्म-रक्षार्थ (अथर्ववेद(8·5) में प्रतिसरमणि, स्राक्त्यमणि, संजयमणि और देवमणि बाँधने का वर्णन आता है। वरणमणि अथर्ववेद(10·3) में, फालमणि अथर्ववेद(10·6·29) में, दर्भमणि, अथर्ववेद(19·28, 29, 30) में, औदुम्बरमणि (19·31) में, जंगिडमणि अथर्ववेद(19·34, 19·35) में, शतवारमणि (अथर्व0, 19·36) में, अस्तृतमणि(अथर्ववेद, 19·46) में बाधने का वर्णन आता है, जो सारे रोगों का नाश करके बल बढ़ाता है। इसके अलावा अंजनमणि (अथर्व0,4·9·1) में, पर्णमणि(अथर्व0,3·5·1) में , औदुम्बमणि(अथर्व0,19·31·1) में, अभीवर्तमणि(अथर्व0,1·29·1) में वर्णित है, जो सर्वविध उपादेय हैं।

ये ओषधियाँ तथा मणियाँ नानाप्रकार से लाभ पहुँचाने वाले हैं --

"ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आरभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यां सर्वस्मा ओषधे त्वा ।"

(अथर्व0,4·17·1)

Lord Ampthill writes --

"European physicians learnt the Science from the works of Arabic doctors; while the Arabic doctors many centuries before had obtained their knowledge from the works of great Indian physicians such as Dhanvantari, Charak and Sushruta."

Prof. Wilson says --

"The ancient Hindus attained as thorough a proficiency in medicine and surgery as any people whose acquisitions are recorded."

William Hunter says-

"Indian medicine dealt with the whole area of the Science. It described the structure of the body, its organs, ligaments, muscles, vessels and tissues. The materia medica of the Hindus embraces a vast collection of drugs belonging to the mineral, vegetable and animal kingdoms, many of which here now been adopted by the European physicians. Their phamacy contained ingenious process of preparation, with elaborate directions for the administration and classification of medicines. Much attention was devoted to hygiene, regiman of the body, and diet."

शल्य चिकित्सा

वेद में रुके हुए मूत्र को सलाई लगाकर बाहर निकालने का वर्णन है --

"प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिः ।"

(अथर्व0, 1·3·7)

शल्य-कर्म के निमित्त तेज अस्त्र हों--

"वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना"

(अथर्व0, 12·5·66)

शल्यार्थ बालकाट कर त्वचा हटानी पड़ती है, फिर मांस काटकर स्नायु काटा जायगा पुनः अस्थियों को भग्न करके मज्जा को काटना पड़ेगा फिर सन्धि-भाग पृथक्-पृथक् करने होंगे। ऐसा वेद-मन्त्रों में वर्णन आता है--

"लोमान्यस्य संछिन्धि त्वचमस्य विवेष्टय"
"मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य संवृह"
"अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि"
"सर्वास्याङ्गा पर्वाणि विश्रथय"

(अथर्व0, 12·5·68, 70, 71)

अथर्ववेद(6·139·5) में आता है कि न्योला सांप को काट-काट कर पुनः जोड़ डालता है --

"यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः ।
एवा कामस्य विच्छिन्नं संधेहि वीर्यावति।"

(अथर्व0, 6·139·5)

अश्विनौ, सोने के हाथ, विश्पला की लोहे की जंघा, शिर का पुनर्सन्धान तथा मूत्र का बहिर्निःसारण शल्य-क्रिया द्वारा करने में परम दक्ष हैं। यथाहि--

"अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरंधि:"

(ऋ0, 1·116·13)

"सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम्"

(ऋ0, 1·116·15)

"आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिर: प्रत्यैरयतम्"

(ऋ0, 1·117·22)

"यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ।
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव --- " ।

(अथर्व0, 1·3·6-7)

इन्द्रदेव ने ग्रीवा के अतिरिक्त अन्य अङ्गों का संधान किया था --

"य ऋते चिदभिश्रिष: पुरा जत्रुभ्य आतृद: ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्त्ता विहुतं पुन: ।।"

(ऋ0, 8·1·12)

इसी प्रकार क्षतांग- संरोहणी का वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"रोहिण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।
रोहयेदमरुन्धति"

(अथर्व0, 4·12·1)

एक अन्य मन्त्र में कहा है -- मज्जाहय धातु मज्जा धातु से, चर्म, चर्म द्वारा और मन्त्रौषधि से हड्डी का और मांस का मांस से रोहण या नैरुज्य हो --

"मज्जा मज्जा संधीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ।।"

(अथर्व0, 4·12·4)

Elphinston says --

"Their surgery is as remarkable as their medicine."

Mrs. Manning says --

"The surgical instruments of the Hindus were sufficiently sharp, indeed, as to be capable of dividing a hair longitudinally."

Sir William Hunter says --

"The Surgery of the ancient Indian physicians was bold and skilful. They conducted amputations, practised lithotomy; performed operations in the abdomen and uterus, cured hernia, fistula, piles, set broken bones and dislocations, A special branch of surgery was devoted to rhinoplasty, or operation of improving deformed ears and noses and forming new ones, a useful operation which European surgens have now borrowed."

Mr. Weber says --

"The Indian seem to have attained a special proficiency, and in this department, European surgens might, perhaps, even at the present day still learn something from them as indeed they have already borrowed from them the operation of Rhinoplasty (Making artificial noses and ears)"

Dr. Seal says--

"The Hindus practised dissection on dead bodies, postmortem operations as well as major operations in abstetric surgery were availed of for embryological observations."

वस्तुत: भाषा-विज्ञान का प्रेरक अग्नि है।

"अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्"

(ऐ०उप०, 1·2·4)

अर्थात् अग्नि ही शब्द या ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। अग्नि का "अ" अक्षर पुरोहित है, प्रारम्भ में आता है व ध्वनि का मूल है तथा व्यन्जनों के उच्चारण में सहयोगी है।सूर्याग्नि सारे जगत् की आत्मा है। सूर्योदय होते ही चिड़ियों की चहचहाहट व वाणी के क्रिया-कलाप शुरू हो जाते हैं। अग्नि का "ग्न" अक्षर व्यन्जन का संयुक्त रूप है। अत: "अ" अक्षर से ही भाषा का विकास हुआ है --

"अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषमश्विनौ ।

द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयत्तां तानुज्जेषम् ।।"

(यजु०, 9·31)

यदि हम ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि वेदारम्भ में ही अ,आ,इ,ई,उ,ऋ,ए तथा ओ स्वरों का बोध होता है--

अग्निम् में अ+इ ; ईळे से ई+ए का, पुरोहितम् से उ+ओ का, ऋत्विजम् से ऋ का होतारम् से आ का।

इसी प्रकार व्यन्जनों में कवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, चवर्ग, पवर्ग तथा अन्तस्थ(य,र,ल,ळ,व) और ऊष्म(स,ह) का दर्शन हमें होता है तथा अयोगवाह रूपों में अनुस्वार, अनुनासिक और विसर्जनीय ये तीन रूप भी हमें प्राप्त होते हैं। कुल मिलाकर भाषा-विज्ञान के विकास का मूल-मन्त्र हमें ऋग्वेद के आरम्भ में ही मिल जाता है। जब बीज मिल गया फिर तो विकास अपनी परम्परा कायम कर लेता है। इस मन्त्र का "ऋत्विजम्" विशेषण अग्नि द्वारा ऋतु-विज्ञान की संचालकता की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

काम विज्ञान

हर कार्य के मूल में काम है --

"कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्"

(ऋ0, 8·7·17)

इस प्रकार जगत् और जीवन दोनों काम से आभृत हैं। "सोऽकामयत" द्वारा ब्रह्म भी सकाम होकर सृष्टि-निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं। अत: धर्माविरुद्ध काम की सर्वत्र समीहा की गई है --

"कामेन मा काम आगन् हृदयाद्‌हृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ।
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हवि: ।
तन्न: सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ।"

(अथर्व0, 19·52·4-5)

मनु महाराज लिखते हैं --

"काम्यो हि वेदाधिगम: कर्मयोगश्च वैदिक: ।
संकल्पमूल: कामो वै यज्ञा: संकल्पसम्भवा: ।
व्रता: नियमधर्माश्च सर्वे संकल्पजा: स्मृता: ।
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्
यद् यद् हि कुरुते किञ्चिद तत् तत् कामस्य चेष्टितम् ।"

(मनु0, 2· 2-4)

पर जब काम का श्रेयस्कर रूप प्रपन्च से सम्बद्ध हो जाता है उसी क्षण वह काम अमंगलकारी हो उठता है। तब मानस ग्रन्थियाँ बढ़ने लगती हैं और आदमी सुख की नींद सो भी नहीं पाता। शक्तियाँ मेरे भीतर हैं पर उनके समुचित विकास पर ध्यान न देकर जब हम बाहर रखी छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए दौड़ लगाना शुरू कर देते हैं तो वह काम निम्नगा प्रवृत्ति का हो जाता है। काम की तृप्ति आनन्द से होती है पर यह आनन्द सुख

दु:ख से ऊपर की अवस्था है। यही आत्मतृप्ति है यहाँ पहुँचकर आदमी आत्म-काम बन जाता है। यही काम का ऊर्जस्वीकरण है, प्रच्छाय शीतल निकेतन है। अत: काम का आनन्दमय रूप ही सेव्य है अन्यथा --

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन: ।
काम: क्रोध: तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।"

(गीता, 16.21)

यह काम मुक्ति और भुक्ति दोनों में आत्मा के साथ रहकर उसे दैवी और पार्थिव भोगों का आस्वादन कराता है। यही काम चक्षु बन जाता है, यही श्रोत्र बन जाता है --

"यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्"

(ऋग्वेद,- 10.121.10)

यह काम अध्यक्ष, उग्र और बलपूर्ण है--

"अध्यक्षो वाजी मम काम उग्र: कृणोतु मह्यमसपत्नमेव"

(अथर्व0, 9.2.7)

यह काम शत्रुओं को मारकर पुरुष के उत्तरोत्तर विकास में सहयोगी बनता है --

"अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमावहन्तु ।।"

(अथर्व0, 9.2.11)

देवताओं ने इसी की सहायता से असुरों और दस्युओं को पराजित किया --

"येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रोदस्यूनधमतमोनिनाय ।
येन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्मा ल्लोकात् प्रणुदस्व दूरम् ।।"

(अथर्व0, 9.2.17)

यही काम सर्वप्रथम उत्पन्न है जिसकी श्रेष्ठता का पार देव, पितर और मनुष्य कोई भी नहीं पा सकता --

"कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ।।"

(अथर्व0, 9·2·19)

पर वेद के अनुसार काम के दो रूप हैं -- भद्र और अभद्र, शिव और अशिव। हमें काम के अशिवरूप का परित्याग करके काम के शिवस्वरूप का वरण करना चाहिए। प्रभु शिवत्व की पराकाष्ठा हैं, सुभग हैं वही शिवरूप काम के प्राप्तव्य हैं। भगवती श्रुति काम के इसी शिवस्वरूप को अपनाने की आज्ञा देती हैं --

"यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्राः याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्व अन्य पापीरपवेशया धियः ।।"

(अथर्व0, 9·2·25)

गीता में अशिव काम को मारने की बात सर्वत्र कही गई है। वह नरक का द्वार है।

अग्नि विज्ञान (विद्युत विज्ञान)

अग्निदेव ज्योति से ही ज्योतिष्मान् हैं। वह अमृतमय दूत हैं --

"अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान"

(यजु0, 13·40)

"अग्निं दूतं पुरो दधे"

(यजु0, 22·17)

"विश्वस्य दूतममृतम् ---- ---- "

(यजु0, 15·33)

यह अग्नि परम गतिशील है --

"स दुद्रवत् स्वाहुतः --- --- "

(यजु०, 15·34)

"अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः"

(यजु०, 3·15)

"अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि
स इद्देवेषु गच्छति"

(ऋ०, 1·1·4)

अग्नि में तरंगे होती हैं --

"यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो अग्नेर्भ्राजन्ते र्चयः ॥"

(ऋ०, 1·44·12)

अग्नि ध्वनि का जनक है, वह कव्यवाहन है --

"अग्ने अच्छा वदेह नः"

(यजु०, 9·28)

"यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम्"

(यजु०, 19·64)

"अग्निर्गन्धर्वः" (यजु०, 18·38)

"अग्निर्जुषत नो गिरः" (ऋ०,5·13·3)

वह हव्यवाहन भी है --

"वह्निरसि हव्यवाहनः"

(यजु०, 5·31)

विद्युत् पवमान(बहने वाला) है, उसकी लहरें अन्तरिक्ष में चलती हैं --

"चरन्ति विद्युतो दिवि" (ऋ०,9·41·3)

"अग्निर्ऋषिः पवमानः" (यजु०, 26·9)

"विभूरसि प्रवाहण:" (यजु0, 5·31)

यह वाक् विद्युत् का ही रूप है --

"स वागपचक्राम । सा यज्ञमेव यज्ञपात्राणि प्रविवेश ।"

(शत0, 1·1·4·16-17)

अग्नि-विज्ञान द्वारा अन्तरिक्ष में गमन सम्भव है --

"अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेन वयं गमेम विष्टपं स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ।।"

(यजु0, 18·51)

अग्नि का स्थान जल में है --

"घृतस्य धारा: समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदा:"

(नि0, 7·4·4)

"आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योति: पश्यन्ति वासरम्"

(ऋ0, 8·3·66)

"अप्स्वग्ने सधिष्ट वसोस्वधीरनुरूध्यसे।"
गर्भे सन् जायसे पुन: ।"

(यजु0, 12·36)

"योऽनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्य विप्रास ईकत अध्वरेषु"

(ऋ0, 10·30·4)

वृष्टि-विज्ञान

यज्ञ से वृष्टि जलों का निर्माण होता है --

"वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"

(यजु0, 18·9)

"अभे जनित्रीर्भुवनस्यं पत्नीरपो वन्दस्व सवृध: सयोनी"

(ऋ0, 10·30·10)

"आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्" ।

(ऋ0, 10·121·7)

"निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु"

(यजु0, 22·22)

"दिव्या वृष्टिः स चताम्"

(यजु0, 13·30)

सूर्य की किरणे पृथ्वी से टकराकर जब ऊपर द्यौ की ओर जाती है और अन्तरिक्ष में जल के स्थान में पहुँचती है तभी पृथ्वी घृत(जल) से आर्द्र होती है, इसी का वर्णन निम्न मन्त्र में हुआ है --

"कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादित घृतेन पृथिवी व्युद्यते ।।"

(ऋ0, 1·164·47)

जलों के निर्माता तत्व मित्र और वरुण हैं --

"मित्रावरुणौ वृष्ट्या अधिपती तौ मावताम्"

(अथर्व0, 5·24·5)

अतः वे अतिवृष्टि भी न करें --

"विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व"

(यजु0, 15·6)

यह हाइड्रोजन या वरुणतत्त्व 2 भाग और आक्सीजन एक भाग मिलाकर जब इसमें से विद्युत को गुजारते हैं तब जल(H_2O) उपजता है। इनके 2:9 अनुपात का तथा वरुणतत्त्व के आधिपत्य का वर्णन निम्न मन्त्र में स्पष्ट है --

"मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृत एकविंश स्तोमः"

(यजु0, 14·25)

ये जल वायु द्वारा पृथ्वी पर गिराए जाते हैं --

"मरुद्भि: प्रच्युता मेघा: वर्षन्तु पृथिवी मनु"

(अथर्व0, 4·15·7)

जलों के निर्माण में मित्रावरुणों ही प्रमुख हैं --

"अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः ।

याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिंचन याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ।।"

(यजु0, 10·1)

"मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।

धियं घृताचीं साधन्ता ।"

(ऋ0, 1·2·7)

"यजानो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्"

(यजु0, 33·3)

अर्थात् हे अग्नि, आप हमारे लिए मित्र और वरुण तत्त्वों को संगत कीजिए। वसिष्ठ जल को कहते हैं। अश्विनो और अप्सरा: विद्युत को तथा गन्धर्व पर्जन्य को कहते हैं।

"उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा"

(यजु0, 7·9)

"ऋती नो मित्रावरुणा तु विजाता उरुक्षया ।

दक्षं दधाते अपसम्"।   (ऋ0, 1·2·9)

जलों में विद्युत का वास है --

"अपां त्वा ज्योतिषि सादयामि"

(यजु0, 13·53)

यजुर्वेद के एक मन्त्र में वर्षा कराने और रोकने का ज्ञान हमें प्राप्त होता है --

"विश्वस्य मूर्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमस्वायु-
रपो दत्तोदधिं भिन्त। दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्या-
स्ततो नो वृष्ट्याव"   (यजु0, 18·55)

यज्ञ द्वारा वृष्टि निम्न रूप में आती है ---

"मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह ---- " (यजु0, 2·16)

वन मेघ-निर्माण में सहायक होता है तथा भूमि को वर्षा के जल से अधिक कटने नहीं देता ---

"अद्रिरसि वानस्पत्य:"

(यजु0, 1·14)

"स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्"

(यजु0, 6·16)

पृथ्वी और द्यौ दोनों जल के प्रदाता हैं ---

"येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पय: पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हा:
उक्थशुष्मान् वृषभरान् स्वप्नसस्तॉं आदित्यॉं अनुमदा स्वस्तये ।"

(ऋ0, 10·63·3)

पर्जन्य ही पिता है ---

"विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद् गन्धर्वो अभवद् द्वितीय: ।
तृतीय: पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ।।"

(यजु0, 17·32)

यजुर्वेद ने आकाश के 17 स्तरों का उल्लेख किया है, जो अनुसन्धेय है ---

"व्योमा: सप्तदश" (यजु0, 14·23)

आजकल वैज्ञानिक पृथ्वीमण्डल के आकाश प्रदेश को पाँच भागों में बाँटते हैं ---

1. Troposphere,
2. Stratosphere
3. Ionosphere
4. Mesosphere
5. Ecsasphere.

अतः पर्यावरण-सन्तुलन द्वारा हम इन स्तरों को बनाए रखें --

"द्यां मा लेखी अन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव"

(यजु०, 5·43)

"शन्नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः ।

शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽभिवर्षतु ।।"

(यजु०, 36·10)

"वाताय स्वाहा, धूमाय स्वाहा, अभ्राय स्वाहा, मेघाय स्वाहा"

(यजु०, 22·26)

वर्षा द्वारा भूमि और अग्नि द्वारा द्युलोक तृप्त होता है --

"भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः"

(ऋ०, 1·164·51)

अग्नि और मरुत् ही वर्षा के कारण हैं --

"अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति। मरुतः सृष्टां नयन्ति"

(तै०, 72·4·10)

"यज्ञाद् भवति पर्जन्यो ---- -

(गीता, 3·14)

"देवी ऊर्जाहुतिं दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं

वयोधसं देवी देवमवर्धताम्"

(यजु०, 28·39)

वेद में जल-प्राप्ति के ये स्थान कहे हैं --

"पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।

पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्"

(यजु०, 18·36)

द्युलोक में भी समुद्र है --

"किंस्वित् समुद्रसमं सरः" (यजु०, 23·47)

"द्यौः समुद्रसमं सरः" (यजु०, 24·48)

यज्ञ से अपूर्व जल पाया जा सकता है --

"तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा ऽऽपृणध्वम्"

(यजु०, 25·28)

अग्नि-वायु घृताची(जल-प्राप्त कराने वाले) हैं --

"घृताची स्थो धुर्यौ पातं सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्।
यज्ञ नमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे ---- ।"

(यजु०, 2·19)

वन वर्षा में उपयोगी है --

"देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो
मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् "

(यजु०, 28·20)

यज्ञ द्वारा इच्छित वर्षा होती है --

"अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ।
वपां ते अग्निरिषितो अरोहत् ।"

(यजु०, 12·103)

"वर्षवृद्धमसि" (यजु०, 1·16)

अतः हम यज्ञ करें --

"इममद्य यज्ञं नयताऽ" (यजु०, 1·12)

"हविष्मतीरिमा आपो हविष्मां आविवासति"

(यजु०, 6·23)

का०सं०(11·10) में आता है --

"अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति धामच्छदिव भूत्वा वर्षति
मरुतस्सृष्टां वृष्टिं नयन्ति। यदासा आदित्यो अर्वाङ्
रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथवर्षति"।

"विद्युद् हीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति"

(ऐ०ब्रा०, 2·41)

"तस्या एते घोरे तन्वौ विद्युच्च ह्लादुनिश्च"

(शत०, 12·8·3·11)

"तौ यदि कृष्णौ स्यातमन्यतरो वा कृष्णस्तत्र विद्याद्वर्षिष्यत्येष्म: पर्जन्यो वृष्टिमान्भविष्यतीत्येतद् विज्ञानम्"

(शत०, 3·3·4·11)

"अयं वै वर्षस्येष्टे योऽयं पवते"

(शत०, 1·8·3·12)

"तस्माद्यां दिशं वायुरेति तां दिशं वृष्टिरन्वेति"

(शत०, 82·3·5)

"मरुतो वै वर्षस्येशते"

(शत०, 9·1·2·5)

"उदीरयथा मरुत: समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिण:"

(ऋ०, 5·55·5)

"इतो ह्यग्निर्वृष्टिं वनुते"

(शत०, 3·8·2·22)

"सौम्यानि वै करीराणि सौमी ह उ त्वेवाहुतिरमुतो वृष्टिं च्यावयति"

(मै०सं०, 1·10·12)

"वर्ष्यं उदके यजेतैतद्ध्यन्नाद्यस्य नेदिष्टं वृष्टिकामो यजेत वायुर्वा इमे समीरयति"

(मै०सं०, 4·3·3)

"आपो ह वै वृत्रं जघ्नुस्तेनैवेत द्वीर्येणाप: स्यन्दन्ते"

(शत०, 3·9·4·14)

उत्तर दिशा में बिजली बहुत चमकती है, जो जलों का तेज है—

"एतस्यामुदीच्याग्न्दिशि भूयिष्ठं विद्योतते"

(षड्0ब्रा0, 2·4)

"विद्युद्वा अपां ज्योतिः" (शत0, 7·5·2·49)

जब बादल हो तो ऊँचा शब्द करने से वर्षा होती है --

"तस्माद् बृहतस्तोत्रे दुन्दुभीनुद्वादयन्ति वर्षुकः पर्जन्यो भवति"

(जै0ब्रा0, 1·143)

घृत की धाराओं वाली हवि वृष्टि कराती है --

"घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । "

अस्मभ्यं वृष्टिमावय" (ऋ0, 9·49·3)

अग्नि में 99 हजार आहुतियाँ पड़ें तो वृष्टि-यज्ञ का कार्य पूरा हो सकता है --

"एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्त्रा ।

तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि।"

(ऋ0, 10·98·10)

"स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः"

(शत0, 14·1·1·6)

"एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः"

(शत0, 4·3·4·3)

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" (शत0, 1·7·1·5)

"अग्नेर्वैधूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद् वृष्टिः"

(शत0, 5·3·5. 17)

देवापि ने शान्तनु के लिए वृष्टि को उतारा था --

"यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।

देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत ।।"

(ऋ0, 10·98·7)

गर्भ-विज्ञान

इस विज्ञान का वर्णन हमें ऐतरेयोपनिषद् तथा गर्भोपनिषद् में प्राप्त होता है। गर्भोपनिषद् में यह बहुत विस्तार से वर्णित है कि प्रथम रात्रि में गर्भ कलल, सात रात्रि में बुद्बुद तथा आधे मास में पिण्डाकार और महीने में कठिन पिण्ड बन जाता है। जीवात्मा जीवनमय इस गर्भ में सातवें महीने प्रविष्ट होता है। ऐतरेयोपनिषद् के अनुसार आत्मा पहले पुरुष के शरीर में आता है, पुनः वीर्य-सिंचन द्वारा यह स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट होता है —

"ऋतुकाले सम्प्रयोगादेकरात्रोषितं कललं भवति । सप्तरात्रोषितं बुद्बुदं भवति। अर्धमासाभ्यन्तरे पिण्डो भवति। मासाभ्यन्तरे कठिनो भवति। मासद्वयेन शिरः सम्पद्यते ---- "।

(गर्भोपनिषद्)

"पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतस्तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जयति तदस्य प्रथमजन्म"

(ऐतरेयोपनिषद्)

विमान-विज्ञान

वेद में विमानों द्वारा लोकान्तरगमन का वर्णन मिलता है —

"यन्त्रमशीय" (यजु०, 4·18)

"इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षांस्यपहंस्यग्ने
ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ।"

(यजु०, 18·52)

नीचे के मन्त्र में गरुत्मान् नामक विमान का वर्णन है —

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दांस्यङ्गानि यजूंषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत"

(यजु०, 12·4)

Jacolliot says --

"Astonishing fact, the Hindu Revelation (Veda) is of all revelations the only one whose ideas are in perfect harmony with modern Science, as it proclaims the slow and gradual formation of the world."

Mrs. Wheeler Willox says --

"We have all heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great vedas the most remarkable works containing not only religious ideas for a perfect life, but also facts which all the science has proved true. Electricity, Radium, Electrons, Airships all seem to be known to the seers who found the Vedas."

N.B. Pavagee writes --

"The Veda is the fountain head of knowledge, the prime source of insperation, nay the grand repository of pȧty passages of devine wisdom and even eternal truths."

"श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान्गच्छ तन्नौ संस्कृतम्"

(यजु0, 4·34)

विमान के पृथ्वी- अन्तरिक्ष- द्युलोक और दिशाओं में जाने का वर्णन हमें प्राप्त होता है —

"विष्णोः क्रमोऽसि ---- पृथिवीमनुविक्रमस्व ।

विष्णोः क्रमोऽसि ---- अन्तरिक्षमनुविक्रमस्व।

विष्णोः क्रमोऽसि ---- दिवमनुविक्रमस्व ।

विष्णोः क्रमोऽसि ---- छन्द आरोह दिशोनु विक्रमस्व ।

(यजु0, 12·5)

निम्न मन्त्र में पाँच साधनों वाले तथा सात पहियों वाले विमान का वर्णन है, जो सर्वत्र चला जाता है तथा मन के संकल्प द्वारा उड़ता है —

"सोमापूष्णा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।

विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम्।"

(ऋ0, 2·40·3)

एक अन्य मन्त्र में तीन पहियों वाले, बिना लगाम के घोड़ों वाले विमान का वर्णन है, जो पृथ्वीस्थ तथा स्वर्गस्थ लोगों के लिए सुखावह है —

"अनश्वो जातो अनभी शुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः ।

महत्तद्वोदेव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ।।"

(ऋ0, 4.36.1)

एक अन्य मन्त्र में वायु के वेग वाला, मन से भी तेज, तीन इंजन वाला बाज के आकार का विमान वर्णित है —

"आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।

यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा वातरंहाः ।।"

(ऋ0, 1·118·1)

यजुर्वेद(1·15) की व्याख्या में स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि पहले पेट्रोल की जगह पारे का प्रयोग होता था। वह विमान बनाने का दावा भी करते थे। उनकी यह बात भोजकृत समरांगण सूत्रधार से सिद्ध होती है जहाँ पारे के लिए रसराज का प्रयोग है। भरद्वाज का विमानसूत्र प्रसिद्ध ही है। इसके अतिरिक्त नारायण की विमानचन्द्रिका, शौनककृत व्योमयानतन्त्र, गर्ग की यन्त्रकल्प, वाचस्पति की यानविन्दु, चाक्रायणीकृत खेतायनदीपिका और ढुंढिनाथ कृत व्योमयानार्क प्रकाश विमान के सम्बन्ध में प्रामाणिक पुस्तकें हैं।

विमान कला आर्यों एवं आर्यावर्त्त की पुरातन कला है। पुष्पक विमान भी कामगति वाला था - रावण की उक्ति देखें --

"यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम्।
वीर्यादावर्जितं भद्रं येन यामि विहायसम्।"

(वा0रामा0,आरण्य0,48·6)

भरद्वाज की विमानसंहिता में लिखा है कि वेद में विमान का वर्णन है --

"निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः।
नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्व रूपकम्।"

(वृत्ति 10)

जो आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के स्वरुप को जानता है वह समुद्रिय (आकाशीय) नौकाओं या विमानों को भी जानता है --

"वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेदा नावः समुद्रियाः"

(ऋ0,1·25·7)

एक अन्य मन्त्र में वर्णित है कि जब लादू पोत जलतरंगों के उत्पात पूर्ण समुद्र में डूबता हुआ उसके अध्यक्ष को छोड़ देता है तब उसे ज्योतिर्मय

और समय दो शक्तियाँ अर्थात् (अश्विनौ) जल सम्पर्क से रहित "अन्तरिक्ष प्रुद्भि:" (आकाश में उड़ने वाली) नौकाओं से वहन करती हैं या उड़ा ले जाती है —

"तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहा ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभि: ।।"

(ऋ0, 1·116·3)

एक अन्य मन्त्र में आता है कि अबाध्य रथ(विमान) की मूर्धा में लगा अन्य चक्र जो और चक्रों से अलग है, भूमि वाले चक्रों से अलग है तथा जिसे दो शक्तियाँ (अश्विनौ) नियन्त्रित करती हैं वह आकाश में घूमता है (द्यां परि-ईयते) —

"न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथु: ।
परि द्यामन्यदीयते ।"

(ऋ0, 1·30·19)

नौ-परिवहन विज्ञान

वेद के निम्न मन्त्र में आकाशचारी तथा जलचारी पोत का वर्णन है —

"यास्ते पूषन्नावो अन्त: समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमान: ।।"

(ऋ0, 6·58·3)

निम्न मन्त्र में जलपोत का वर्णन हुआ है, जो समुद्र तट पर है —

"अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथ: ।
धिया युयुज्र इन्दव: ।"

(ऋ0, 1·46·8)

"अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्"

(ऋ0, 1·116·5)

उपर्युक्त मन्त्र में सौ डाँड़ों वाली (100 Oars) विशाल समुद्री पोत का वर्णन हुआ है।

खनिज-तत्त्व-विज्ञान

वेद के निम्न मन्त्र में पत्थर, मिट्टी, पर्वत, बालू, वृक्ष, स्वर्ण, कांस्य, ताम्र, लौह, सीसे आदि खनिज पदार्थों का वर्णन हुआ है --

"अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्"।

(यजु0 18·13)

पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह कथन कि हीरे में चमक लाने वाले तत्त्व (Phosphorescence) की खोज 1663 ए0डी0 में राबर्ट बाइल (Robert Boyle) द्वारा की गई थी, भ्रान्त धारणा लगती है, क्योंकि यह हीरा पुराने कोयले की खानों से प्राप्त होता है। भोज जो ग्यारहवीं शती के थे, लिखते हैं --

"अन्धकारे च दीप्यते"

(पी0सी0रे0 हिस्ट्री ऑफ हिन्दू कमेस्ट्री, वाल्यूम 2, पृ0 40) ।

तार-विज्ञान

यह श्वेतधातु से निर्मित होता है, जो विद्युत का सुचालक है, इससे विद्युत से सक्रिय (Charge) करते हैं। इस प्रकार यह बड़े काम की चीज है, जो युद्धादि में सन्देश भेजती है ---

"युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ।।"

(ऋ०, 1·119·10)

दयानन्द जी ने इसका अर्थ ऋग्वेदभाष्य भूमिका में दिया है। यहाँ अश्विनौ से तात्पर्य (Electricity) से है। उन्होंने इस यन्त्र के प्रयोग पर बल दिया है।

वनस्पति और जन्तुविज्ञान

निम्न दो मन्त्रों में वनस्पतियों और जीवों के बारे में अच्छा प्रकाश डाला गया है। पक्षियों में कपिन्जल, गोरैयुया, तित्तिर, बटेर, ककट और विककर का वर्णन है ---

"अग्निश्च माआपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" ।

(यजु०, 18·14)

"वसन्ताय कपिन्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान्" ।

(यजु०, 24·20)

इसी प्रकार अन्यत्र भी द्रष्टव्य है ---

"समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान्। सोमाय हंसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्नि-

भ्यां क्रुञ्चानग्निमित्राय मद्गून्वरुणायचक्रवाकान्। अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपोतान्। सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् । अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः संधिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् । भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्दिवे कशान्दिग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः। वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून्विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् । ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय महिषान्बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् प्रजापतये पुरुषान्हस्तिन आलभते वाचे प्लुषीश्चक्षुषे मशकान्छ्रोत्राय भृङ्गाः। प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभायगवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलगोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती। मयुः प्राजापत्य उलोहलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः। सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्करस्ते नुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः। सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक्। सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः। पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हंसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्ते कूपारस्य ह्रियै शल्यकः। एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्याऽऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी। अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रोमासां कश्यपो रोहित्कुण्ड-

णाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः। वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिन्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः। श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽअरण्याय सृमरो रुरु रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः। खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः।"

(यजु0, 24·21–40)

"व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।

उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षोऽपबाधयास्मत् ।"

(अथर्व0, 12·1·49)

वनस्पतियों में अपामार्ग, वट, पीपल, खदिर दर्भ, कुष्ठ आदि नाम बहुतायत से पाये जाते हैं --

"शं नो ओषधीर्वनिनो भवन्तु ---- "

(अथर्व0, 19·10·5)

"वनस्पतीभिः पृथिवी सजोषा ---- "

(ऋ; 7·34·23)

वनस्पतियाँ ही यज्ञ को पूर्ण करती हैं, वे ही यज्ञयोग्य हैं --

"अग्निर्हर्येव यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियइति वनस्पतयो हि यज्ञिया न हि मनुष्या यज्ञेरन्यद्वनस्पतयो न स्युस्तस्मादाह वनस्पतिर्यज्ञिय इति" ।

(शत0, 3·2·2·9)

रसायन विज्ञान

यह विज्ञान तत्वों और यौगिकों का विज्ञान है। इसका उपयोग अब उनके मिश्रण के लिए (Medicine) में होने लगा है। जैसे पानी दो गैसों

मित्र(Oxygen) और वरुण (Hydrogen) के संयोग से बना है उसी पानी के कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं। जल वसिष्ठ को भी कहते है अप्सरस: (Electricity) है --

"स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् त्सहस्त्रदान उत वा सदान: ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरस: परिजज्ञे वसिष्ठ: ।।"
(ऋ0, 7·33·12)

"त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतै: सहस्त्रवल्शमभि संचरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठा: ।।"
(ऋ0, 7·33·9)

"विद्युतो ज्योति: परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत् त्वा विश आजभार ।।"
(ऋ0, 7·33·10)

"ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेद: प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु"
(ऋ0, 10·51·3)

"उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जात:"
(ऋ0, 7·33·11)

"सत्रे ह जाताविषिता नमोभि: कुम्भे रेत: सिषिचतु: समानम्।
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ।।"
(ऋ0, 7·33·13)

"त्रय: कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्त्र: प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा:।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वां इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठा: ।।"
(ऋ0, 7·33·7)

अन्य मिश्रणों का भी वेद में वर्णन है यथा आमिक्षा का वर्णन आता है जो खौलते दूध के साथ खट्टी दही मिलाकर बनाया जाता है।

"धानाः करम्भः सक्तुः परीवापः पयो दधि ।
सोमस्य रूपं हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ।"

(यजु०, 19·21)

एक जगह वेद में मधुपर्क का वर्णन है, जो दधि, घृत और मधु के मिश्रण से बनता है। यह अनुपात विषम होना चाहिए अन्यथा सम मात्रा में घृत और मधु अमृत की जगह विष बन जाते हैं —

"यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।

(अथर्व०, 10·3·21)

सोमपेय का वर्णन वेद में सर्वत्र है। जहाँ सोमरस के साथ एक निश्चित मात्रा में दूध मिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त मधुपेय का भी वर्णन मिलता है। इसमें सोम के साथ ही अन्य द्रव्य भी मिलाये जाते हैं। यथा —

"आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना"

(ऋ०, 1·34·11)

"अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथो त आयातं मधुपेयमश्विना।।"

(ऋ०, 10·41·3)

वर्तमान युग में निर्वात (Space) में बहुत सारे मिश्रण तैयार किये जाते है जिन्हें बनाना पृथ्वी पर सम्भव नहीं। स्वर्णभस्म को रासायनिक प्रक्रिया के अन्तर्गत तैयार किया जाता है, जो औषधीय गुणों से पूरित होता है। यह स्वर्णभस्म यजुर्वेद में दाक्षायण नाम से सुख्यात है। यह भस्म मृतकों में प्राण फूंकने वाली है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य है —

"यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुतेदीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः"

(यजु०, 34·51)

दक्ष अग्नि को कहते हैं ।

"अग्ने: प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।

य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति।"

(अथर्व0, 19·26·1)

"यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनव: पूर्व ईषिरे ।

तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा संसृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ।

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।

यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ।"

(अथर्व0, 19·26·2-3)

"स नो हिरण्यजा: शङ्ख: कृशन: पात्वंहस:"

(अथर्व0, 4·10·1)

"तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय

शतशारदाय कार्शनस्त्वाभिरक्षतु"

(अथर्व0, 4·10·7)

मोती भस्म (Calcium produced from pearl)
जो रासायनिक तरीकों से तैयार होता है, बहुत मात्रा में भी सुपाच्य
होता है।

वसिष्ठ जल को कहते हैं (नि0, 5·15 स्कन्द स्वामी)।

यजुर्वेद(13·54) में प्राण को वसिष्ठ कहा है। शतपथ-ब्राह्मण
(8·1·1·6) में भी इसे प्राण कहा है। ऋग्वेद(2·9·1) में इसे अग्नि कहा है।
शतपथ-ब्राह्मण(14·9·22) में इसे जिह्वा कहा है। अत: वेदों में वसिष्ठ
(Proper Noun) नहीं है —

"अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठ: सहस्रंभर: शुचिजिह्वो अग्नि:"

(ऋ0, 2·9·1)

धातुओं को टाँका लगाने का भी वर्णन प्राप्त होता है —

"लवणेन सुवर्णं संदध्यात्"

"सुवर्णेन रजतं संदध्यात्" ।

(गोपथ०पू०, 1·14)

भौतिकशास्त्र

इस संसार के पीछे तीन शक्तियाँ क्रियाशील हैं — परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति (God, Soul & Matter)। यहाँ भौतिकशास्त्र में हम (Matter) का अध्ययन करते हैं। हर वस्तु सनातन नियमों से ओत-प्रोत है चाहे वह भौतिक नियम (Physics) या आध्यात्मिकनियम (Metaphysics)। इन्हीं नियमों के कारण विश्व में एकता और समरूपता है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं —

"त्रय: केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ।।"

(ऋ०, 1·164·44)

"ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत तत: समुद्रो अर्णव: ।।"

(ऋ०, 10·190·1)

"असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह न: प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनु: ।।"

(ऋ०, 10·5·7)

"अविर्वै नाम देवत ऋतेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रज: ।।"

(अथर्व०, 10·8·31)

वस्तुत: पदार्थ और ऊर्जा अन्योन्याश्रित हैं, उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। अन्तरिक्ष ऊर्जा का जनक है। ऊर्जा के सम्बन्ध में कुछ मन्त्र द्रष्टव्य हैं --

"भूर्जज्ञ उत्तानपादो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥"

(ऋ0, 10·72·4)

"पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥"

(ऋ0, 1·164·13)

"तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥"

(ऋ0, 10·82·6)

"अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आविवेश ॥"

(अथर्व0, 10·8·40)

"अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्त ऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥"

(अथर्व0, 11·1·1)

भूत का अर्थ है ऊर्जा-संयुक्त पदार्थ । ऊर्जा तत्त्वों का या पञ्च-तन्मात्राओं का गुण(Property) है। आइंस्टीन कहते थे "Matter and energy are indistinguishable" यह जगत् परम गतिमान् है --

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्"

(यजु0, 40·1)

यह जगत् चक्रीय क्रम में सृष्टि और विनाश की प्रक्रिया विरच रहा है, जो कार्य-कारण नियम के अनुसार ही है, इसके चलाने वाले परमेश्वर

हैं --

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्,
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।"
(ऋ०, 10·190·3)

"अयं पन्था: अनुवित्त: पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवेकः ।।"
(ऋ०,4·18·1)

"वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद् दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ।।"
(ऋ०, 3·2·12)

पञ्चमहाभूत से ही पञ्चतन्मात्रायें उदित हुई हैं जिन्हें परमाणु या (atom) कहते हैं। इन्हीं पाँचों तत्त्वों से सम्बद्ध कुछ मन्त्र यहाँ उद्धृत हैं --

"पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ।।"
(यजु०, 23·52)

"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ।।"
(ऋ०, 10·81·3)

"यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ।।"
(ऋ०, 10·72·6)

यहाँ रेणु से (atom) अभिप्रेत है।

ताप, प्रकाश, विद्युत और चुम्बकत्व ये अग्नि के विभिन्न रूपान्तरित ऊर्जा-रूप हैं। इसी ताप से गति उत्पन्न होती है --

"दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥"

(ऋ० 10·45·1)

अर्थात् अग्नि ही सौर-पृथ्वी और अन्तरिक्ष में सूर्य, जातवेदा और नृमणा के रूप में प्रकट हुआ।

"समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥"

(ऋ०, 10·45·3)

"त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥"

(ऋ०, 2·1·1)

सूर्य रश्मियाँ

इस सूर्य रश्मियों (Cosmic rays) के अनेक वर्ग (groups) हैं यथा वयोवर्ग, मरीचिवर्ग, मरुद्वर्ग और ऋभु-वर्ग। प्रथमतः वायुवर्ग एक प्रकार की ऊष्मरश्मियाँ हैं जिन्हें यजुर्वेद (1·24) में तिग्मतेजः कहा है -- कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जो वयो, मरीचि और मरुद्वर्ग से सम्बद्ध हैं --

"वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा न्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥"

(ऋ०, 5·59·7)

"वाततित्वषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः।

(ऋ०, 5·57·4)

"विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वाततित्वषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥"

(ऋ०, 5·54·3)

"साकं जाता: सुभ्व: साकमुक्षिता: श्रिये चिदा प्रतरंवावृधुर्नर:।
विरोकिण: सूर्यस्येव रश्मय: शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।।"
(ऋ0, 5.55.3)

"आ विद्युन्मद्भिर्मरुत स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णै:।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमाया: ।।"
(ऋ0, 1.88.1)

"ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परि ज्रय:।।"
(ऋ0, 1.64.5)

वर्षा करना व इसे वहन करना भी मरुतों का कार्य है । यथा—

"उदीरयथा मरुत: समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिण: ।।"
(ऋ0,5.55.5)

"समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभि:।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नय: ।"
(ऋ0, 1.164.51)

ऋभु सूर्य-रश्मियाँ हैं (Solar Rays)।

"विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तास: सन्तो अमृतत्वमानशु:
सौधन्वना ऋभव: सूरचक्षस: संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभि: ।।"
(ऋ0, 1.110.4)

आकाशगंगायें बहुत सी हैं, जिनमें हमारी आकाशगंगा काले घोड़े पर स्वर्णाभूषणों की तरह शोभायमान होती है। ये भौतिक बल अन्तरिक्ष को जगमगा देते है —

"अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभि: पितरो द्यामपिंशन्
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विददगा: ।"
(ऋ0, 10.68.11)

यह बृहस्पति (Electricity) ही है जो रात्रि और दिन के उजास को बनाती है, निम्न मन्त्र से यह बात स्पष्ट है --

"बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण विसप्तरश्मिरधमत् तमांसि ।।"

(ऋ०, 4·50·4)

अन्तरिक्षीय धूलकण

अन्तरिक्ष धूलिकणों से परिव्याप्त है इसके लिए पांसुरे शब्द का प्रयोग हुआ है। रजस् और पांसु शब्दों का प्रयोग वेद में मिलता है --

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूळ्हमस्य पांसुरे ।"

(ऋ०, 1·22·17)

वेद में दश दिशाओं का वर्णन है जो विद्युत् की चुम्बकीय शक्तियों से युक्त हैं, ये दिशाएँ अन्तरिक्ष की सीमाएँ हैं। पृथ्वी के कारण ही दिशाओं का अस्तित्व है इन्हें वेद में "विज्मो अन्तान्" (The ends of the earth) कहा है, मन्त्र इस प्रकार है --

"यस्तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ।"

(ऋ०, 4·50·1)

अग्नि ही सूर्य के रूप में परिवर्तित हुआ तथा वायु इसका सहयोगी हुआ। निम्न मन्त्र देखें --

"यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ।"

(ऋ०, 1·83·5)

एक मन्त्र में वर्णन है कि सूर्य, अग्नि, वायु और आप: से निर्मित है। इसे जैमिनीय ब्राह्मण में(1·3·30) संवत्सर भी कहा है --

"अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्यो भिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानर:।
अछिन्नपत्रा: प्रजा अम्नुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टि: सचताम्।"
(यजु०, 13·30)

एक मन्त्रमें अन्तरिक्षीय समुद्र का वर्णन है --

"उक्षा समुद्रो अरुष: सुपर्ण: पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहित: पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ।।"
(ऋ०, 5·47·3)

सूर्य की विभिन्न क्रियाओं का दर्शन हमें वेदों में मिलता है जिसमें से कुछ द्रष्टव्य हैं --

"सविता यन्त्रै: पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविताद्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ।।"
(ऋ०, 10·149·1)

"इन्द्रो दिव: प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम्।
महीं चिद् द्यामातनोत् सूर्येण चास्कम्भ चित् कम्भनेन स्कभीयान् ।।"
(ऋ०, 10·111·5)

"इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखै: ।"
(ऋ०, 7·99·3)

"रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभि: पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय: शतादश ।"
(ऋ०, 6·47·18)

"सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थु: ।।"
(ऋ०, 1·164·2)

"ब्रह्म जज्ञानम् प्रथमं पुरस्तात् विसीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ।।"

(अथर्व०,

"अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ।।"

(ऋ०, 1·164·1)

"आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।"

(ऋ०, 1·35·2)

विश्व के संरचना और विस्तार का बहुधा वर्णन हमें वेदों में प्राप्त होता है। वह वरुण (Air), सोम (Electricity) तथा इन्द्र (Electromagnetic Wave) के आधार पर टिका हुआ है, कुछ मन्त्र उदाहरणार्थ द्रष्टव्य हैं --

"यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ।"

(ऋ०, 2·12·2)

"स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसा धराचीनमकृणोदपामपः
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ।।"

(ऋ०, 2·17·5)

"धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ।।"

(ऋ०, 7·86·1)

"द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा"

(ऋ०, 6·70·1)

"अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुर्णवो नृचक्षाः ।।"

(ऋ०, 3·22·2)

"त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वया ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ।"

(ऋ०, 1·91·22)

"यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम्"

(ऋ०, 10·88·3)

पृथ्वी के बारे में भी कुछ मन्त्र द्रष्टव्य हैं --

"अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्यदेवत्वमाजानमग्रे ।।"

(यजु०, 31·17)

"इयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्या --- "।

(ऋ०, 1·164·35)

"अयं गौः पृश्निमक्रमीत --- ।"

(यजु०, 9·6)

"या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।"

(ऋ०, 10·65·6)

गेंद पर कोई भी बिन्दु उसका केन्द्र होता है यतः गेंद वर्तुल है, इसी प्रकार यह वेदी पृथ्वी का केन्द्र है, यही बात निम्न मन्त्र में है --

"यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना"

(ऋ०, 1·143·4)

धूमकेतुओं (Comets) का भी वर्णन वेद में मिलता है, जो सूर्य द्वारा निर्मित होता है। वह शुचि अग्नि का ही एक रूप है --

"असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद् दिवि श्रितः ।।"

(ऋ0.5.11.3)

ग्रिफिथ इस मन्त्र का अनुवाद इस प्रकार करते हैं --

"Pure unadorned from thy two mothers art thou born, thou comet from vivasvan as a charming sage with oil they strengthened thee, o agni (Suchi) worshipped god, thy banner was the smoke that mounted to the sky (i.e. thy smokes became the comet)

वेदों में मृत्यु, पुनर्जन्म तथा मोक्ष का वैज्ञानिक आधार

वैदिक ऋषि कहते आए हैं हे ईश्वर "मृत्योर्मा अमृतं गमय" । यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि मृत्यु शरीर की हुआ करती है, आत्मा की नहीं --

"मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्"

(अथर्व0, 8.2.23)

पर आश्चर्य है हम हमेशा अपने को शरीर से अधिक कुछ नहीं समझते। हम शरीरमय हो गए हैं। यह प्रेय(Pleasure) ही मृत्यु है तथा श्रेय (good) ही अमरता का द्वार है। मृत्यु इस शरीर की चौथी अवस्था है, जो अपरिहार्य है, केवल वह स्थानान्तरण है। स्वामी विवेकानन्द

लिखते हैं, "आत्मा ऐसा वृत्त है जिसकी परिधि कहीं नहीं है किन्तु जिसका केन्द्र शरीर में अवस्थित है और मृत्यु का अर्थ है इस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित हो जाना।"

जब आत्मा शरीर का द्रष्टा बन जाता है तब शास्त्रों की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस अपना नाम तक नहीं लिख पाते थे पर आत्मा के दर्शन उन्हें हो चुके थे जैसा उपनिषदों में कहा है, "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्य: मन्तव्य: निदिध्यासितव्य:"।

हमारा शरीर (Cells) कोशिकाओं से बना है जो हर सात साल में मरकर पुन: नवीन हो जाती है। एक तरह से शरीर हर क्षण क्षीण होता रहता है।

सुकरात, दयानन्द, भगत सिंह आदि ऐसे अनेकों उदाहरण है जिनके लिए शरीर साधनमात्र था, उन्होंने अपने सामने अपनी मृत्यु का साक्षात्कार किया था।

कुछ पाश्चात्य मनीषियों के विचार मृत्यु के सम्बन्ध में देखने योग्य है। यथा --

"To die, is to begin to live. It is to end an old, stale, weary work and to commence.
A newer and a better."

"To himself every one is immortal;
He may know that he is going to die,
But he can never know that he is dead."

(Samuel Butler)

"The last day does not bring extinction,
But a change of place."

(Cicero)

"Cowards die many times before their deaths;
The valient never taste of death but once.
Of all the wonders that I yet have heard;
It seems to me most strange that man should fear;
Seeing the Death, a necessary end,
Will come when it will come".

(Shakespeare)

"Death is but a name, a date,
A milestone by the stormy road,
Where you may lay aside your load,
And bow your face and rest and wait,
Defying fear, defying fate."

(J. Miller)

पुनर्जन्म के विषय में अनेकों मन्त्र हमें वेद में मिलते हैं। यथा -- हे प्रभु, हमें अगले जन्म में पुन: आँख, पुन: प्राण तथा अन्य भोग प्राप्त हो, हम पुन: उदित होते हुए "सूर्य की ज्योति देखें"

"असुनीते पुनरस्मासुचक्षु: पुन: प्राणम् इह नो धेहि भोगम्
ज्योक् पश्येम सूर्यम् उच्चरन्तम् अनुमते मृळ्या न: स्वस्ति ।
पुनर्नो असुम् पृथिवी ददातु पुनर्द्यौ: देवी पुनरन्तरिक्षम्
पुनर्न: सोम: तन्वं ददातु पुन: पूषा पथ्यां या स्वस्ति"

(ऋ0, 8·1·23,6-7)

"पुनर्मा एतु इन्द्रियम् पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च"

(अथर्व0, 7·6·67, 1)

मरते समय मनुष्य में जिस भाव की प्रबलता होती है, वही भाव दूसरे जन्म में उभर उठेगा —

"यं यं वापि स्मरन्भावम् त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भाव भावित: ।।"

(गीता, 8·6)

यह आत्मा ही सारे देहों का धारक है —

"नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसक: ।
यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ।।"

(श्वेता0, 5·10)

प्राय: यह देखा गया है कि जिस मृत्यु में अत्यधिक कष्ट होकर (accidental) तुरन्त जन्म हो जाता है उसकी स्मृति दूसरे जन्म में भी बनी रहती है। यथा —

"ये मृता: सहसा मर्त्या: जायन्ते सहसा पुन:
तेषां पौराणिको भाव: कंचित् कालं हि तिष्ठति ।
तस्मात् जातिस्मरा: लोके जायन्ते बोधसंयुता:
तेषां विवर्धतां संज्ञा स्वप्नवत् सा प्रणश्यति ।।"

(मह0, अनु0प0, 227-32-33)

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी मृत्यु में प्रत्यय सम्बन्धवाद (Association of Ideas) का सिद्धान्त काम करता है। वेद कहते हैं अमर जीवात्मा मरणधर्मा शरीर के साथ संयुक्त होता है —

"अपाङ् प्राङ् एति स्वधया गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येना सयोनि:"

(अथर्व0, 9·10·16)

अच्छे बुरे शरीरों को धारण करने का कारण गुण है --

"ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसा: ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसा: ।।"

(गीता, 14·18)

जो नीचे हैं, वे ऊपर चले जाते हैं, ऊपर वाले नीचे गिर जाते हैं। जीवात्मा के कर्म धुरे की भाँति उसे लोकान्तरों में तथा एक योनि से दूसरी में ले जाते हैं --

"ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहु: ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहु:
इन्द्रश्च या चक्रथु: सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ।"

(ऋ0, 1·164·19)

"अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभि: अमर्त्यो मर्त्येना सयोनि: ।"

(ऋ0, 1·164·30)

"अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीची: स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्त: ।।"

(ऋ0, 1·164·31)

यह आत्मा अनेक जन्मों वाला है --

"य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्त: बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ।।"

(ऋ0, 1·164·32)

यह अज्ञान ही नाना योनियों में भटकने का हेतु है --

"न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्य: सन्नद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्या: ।।"

(ऋ0, 1·164·37)

यह आत्मा जलचरों, वृक्षों की योनियों में भी जाती है --

"अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे। गर्भे सन् जायसे पुनः ।"

(यजु0, 12·36)

"प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।

संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ।।"

(यजु0, 12·38)

शारीरिक दोषों से वृक्षादि स्थावरयोनि, वाणी के पाप से पक्षी आदि योनि तथा मनोकृत पापों से चाण्डालादिक अधोगति प्राप्त होती है --

"शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।

वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ।"

(मनु0, 12·9)

"देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः ।

तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ।।"

(मनु0, 12·40)

पितृयान और देवयान दो मार्ग है मनुष्यों के लिए --

"द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।

ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ।।"

(ऋ0, 10·88·15)

वेद-सम्मत कर्म ही करे अन्यथा --

"इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।

पापान् संयान्ति संसारान् अविद्वांसो नराधमाः ।।"

(मनु0, 12·52)

देवयान और पितृयान मार्ग में से जो किसी के भी योग्य नहीं होते वे क्षुद्र भूत हैं और बार-बार संसार में आते-जाते रहते हैं --

"अथ एतयोः पथोः न कतरेण चन । तानि इमानि क्षुद्राणि असकृत् आवर्तीनि भूतानि भवन्ति । जायस्व म्रियस्व इति एतत् तृतीयं स्थानम् । तेन असौ लोको न संपूर्यते । तस्मात् जुगुप्सेत"

(छा०उप०, 5·10·8)

अतः इष्टापूर्त्त या श्रद्धा-तप का आचरण अवश्य करें, जिससे बार-बार जन्म न हो ---

"आ ब्रह्म भुवनाँल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।"

(गीता०, 8·15-16)

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ।"

(गीता०, 8·13)

"यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ।
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्यो अमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते ।
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते सहृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्यो अमृतो भवति एतावदनुशासनम् ।"

(कठ०, 6·7, 14-15)

मुक्तात्माएँ ब्रह्मलोक में परमात्मा के समीप रहकर सारे लोकों व कामों को प्राप्त होती है। उनके चक्षु, मन आदि दैवी होते हैं जिनसे वे रमण करते हैं ---

" स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसा एतान् कामान् पश्यन् रमते। ये एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात् तेषां सर्वे च लोका: आत्ता: सर्वे च कामा:। स सर्वान् च लोकान् आप्नोति। सर्वान् च कामान् । य: तमात्मानमनुविद्य विजानातीति" ।

(छा0, 8· 12·5–6)

जीवात्मा जब विविध योनियों, लोकों आदि में घूमकर थक जाता है तब ऋत की प्रथमजा(ऋतम्भरा प्रज्ञा) का आश्रय लेकर आत्मा द्वारा आत्मा में प्रविष्ट होता है और आनन्द पूर्वक सर्वत्र विचरण करता है, वह आनन्दरूप हो जाता है —

"परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वा: प्रदिशो दिशश्च ।
उपास्थाय प्रथमजामृतस्यात्मना त्मानमभिसंविवेश ।।"

(यजु0, 32· 11)

"परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परिलोकान् परिदिश: परिस्व:
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ।"

(यजु0, 32· 12)

यह मुक्तावस्था देवयान मार्ग से होकर मिलती है —

"ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठात् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान् स्वर्ग: पन्था: सुकृते देवयान: ।"

(अथर्व0, 18·4· 14)

"देवा यज्ञमृतव: कल्पयन्ति हवि: पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि
तेभियाहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजाना स्वर्गं यन्ति लोकम् ।"

(अथर्व0, 18·4·2)

"स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा:"

(अथर्व0, 18·4·4)

"ऋतस्य पन्थामनुपश्यसाध्वंगिरस: सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभि: स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति
तृतीये नाके अधि विश्रयस्व ।"

(अथर्व0, 18·4·3)

पितृयान मार्ग का वर्णन निम्न मन्त्रों में है --

"आरोहत जनित्रीं जातवेदस: पितृयाणै: सं व आरोहयामि ।
अवाड्ढ व्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ता: सुकृतां धत्त लोके"

(अथर्व0, 18·4·1)

"युयमग्नेशंतमाभिस्तनूभिरीजानमभिलोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्ठिवाहो वहाथ यत्र देवै: सधमादं मदन्ति ।"

(अथर्व0, 18·4·10)

"सांगा: स्वर्गे पितरो मादयध्वम्"

(अथर्व0, 18·4·64)

"आयात पितर: सोम्यासो गम्भीरै: पथिभि: पितृयाणै: ।
आयुरस्मभ्यं दधत: प्रजां च रायश्च पोषैरभि न: सचध्वम् ।।"

(अथर्व0, 18·4·62)

मोक्ष होने पर आत्मा दिव्य स्वर्गलोक में जाकर स्थित होता है, जिसका वर्णन निम्न मन्त्र में है --

"यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमान अमृते लोके अक्षिते
यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिव: ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्त: तत्र माममृतं कृधि ---- ।
यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधि ---- ।
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद: प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ता: कामा: तत्र मामृतं कृधि ---- ।

(ऋ0, 9·113·7, 9, 10, 11)

अर्थात् जहाँ काम हैं, निकाम हैं, स्वधा है, तृप्ति है। जहाँ आनन्द है, मोद है, प्रमुद है. जहाँ दिव्य ऐश्वर्यों की पराकाष्ठा है, जहाँ भोग चेतना-मुख से भोगे जाते हैं, क्लेशों का सर्वथा अभाव है, हे अमृत-वर्षक प्रभु हमें वहीं ले चलो।

वैदिक शिक्षा पद्धति की वैज्ञानिकता

व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास करना ही वैदिक शिक्षा-पद्धति की आधारशिला है। बालक को माता-पिता के कुल से हटाकर गुरुकुल में रखा जाता था जहाँ गुरु व्यक्तिगत रूप से शिष्य से परिचित रहता था। शिष्य की दिनचर्या के साथ-साथ वह शिष्य के मानसिक स्तर से भी परिचित होता था और इस प्रकार वह शिष्य के स्तर को दिन-प्रतिदिन ऊँचा उठाता था। शिष्य भी गुरु-गृह में वास करके अपनी शारीरिक- मानसिक और आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करता था। फलत: वैदिक शिक्षा-पद्धति चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व-विकास और सामाजिक अभ्युत्थान में पूर्णत: सफल थी।

बालक की शिक्षा में संस्कारों का बहुत महत्त्व है। जिनमें कुछ संस्कार प्रसव-पूर्व के हैं तथा कुछ प्रसव के बाद के हैं। प्रसव-पूर्व संस्कारों में गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन प्रमुख हैं तथा प्रसवोत्तर संस्कारों में अन्नप्राशन, निष्क्रमण और कर्णवेध। फ्रायड मानते हैं कि "जब बच्चा माँ की गोद में अँगूठा चूस रहा होता है तभी से उस पर वे संस्कार पड़ रहे होते हैं जो उसके भावी जीवन का निर्माण करते हैं।"

भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त इतिहास के लेखक का कहना है कि "प्राचीन काल में जितनी साक्षरता भारत में थी उतनी उस समय किसी दूसरे देश में नहीं थी। राजा अश्वपति और दशरथ का यह दावा था कि उनके

राज्य में कोई अशिक्षित नहीं है। प्राचीन शिक्षा पद्धति से भारत ने न केवल सैकड़ों वर्षों तक मौखिक परम्परा द्वारा विशाल वैदिक वाङ्मय को सुरक्षित रखा, किन्तु प्रत्येक युग में दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, वैद्यक रसायन आदि शास्त्रों में ऐसे मौलिक विचारक, विद्वान् उत्पन्न किये जिनसे भारत का मस्तक आज भी ऊँचा है।"

वैदिक भारत की शिक्षा के पाठ्य-विषय भी अतिव्यापक थे। छान्दोग्य (10·1·2) में जिन शिक्षाओं का वर्णन है, उनमें मनुष्यशास्त्र (Anthropology), गणित, उत्पातविद्या (Physical Geography), निधि विद्या (Minerology), वाकोवाक्य विद्या (Logic), एकायनविद्या (Ethics), भूतविद्या (Zoology, Anatomy) क्षत्रविद्या, ज्योतिष, सर्पदेवजनविद्यादि प्रमुख हैं, जिनका अध्ययन नारद जी ने किया था।

सायण ने महाप्रज्ञ, मध्यमप्रज्ञ तथा अल्पप्रज्ञ के रूप में तीन प्रकार के विद्यार्थियों का उल्लेख किया है। सूश्रुत में रटने वाले छात्र की उस गधे से समता की गई है, जो अपने पर भार का तो अनुभव करता है किन्तु यह भार किस चीज का है, यह नहीं जानता। प्राचीन शिक्षा- पद्धति में चरित्र तथा धारणा-शक्ति का महत्त्व था, जबकि आज की शिक्षा पुस्तकालयों में बन्द है। प्राचीन-कालिक पण्डित स्वयं एक पुस्तकालय या विश्वकोष हुआ करता था।

वैदिक शिक्षाशास्त्री शिक्षा के सम्बन्ध छः बातों का ध्यान रखते थे --

1- पर्यावरण

इसके भी तीन स्तर है --

(क) भौतिक पर्यावरण,

(ख) मानसिक पर्यावरण, और

(ग) सामाजिक पर्यावरण ।

प्रथम तो शिक्षा- संस्थाओं को प्रकृति के शुद्ध वातावरण में रखा जाना चाहिए वरना गली-कूचों में शिक्षा-संस्थाओं के चलाने से उनके मस्तिष्क को शहरों के गन्दे संस्कारों से बचाना सम्भव न होगा। गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति से बालक एक प्रकार से सामाजिक परिवार में पलकर राष्ट्र की धरोहर बनता है तथा उसमें "सह नाववतु सह नौ भुनक्तु" की भावना का विकास होता है। आचार्य बालक को उपनयनोपरान्त अपने गर्भ में माता की तरह धारण करके उसकी बुरे संस्कारों से रक्षा करता है --

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त: ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवा:"

ऐसे ही विनीत, शिक्षित ब्रह्मचारियों द्वारा मानवों को अपने-अपने चरित्र की शिक्षा लेनी चाहिए --

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन: ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा: ।"

(मनु0, 2.20)

ब्रह्मचारी के लिए "तप" पहली शिक्षा है। उसे उपदेश दिया जाता है "कर्म कुरु", "दिवा मा स्वाप्सी:", "क्रोधानृते वर्जय", "उपरि शय्यां वर्जय"। वह बालक भी तप से जीवन की साधना करता है --

"स आचार्यं तपसा पिपर्ति"
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत"

(अथर्ववेद ब्रह्मचर्य सूक्त)

शिष्य को "अन्तेवासी" कहा है, मानों वह गुरु के भीतर बसता है। वहाँ (गुरुकुल में) वह अपराविद्या या अविद्या (Scientific Knowledge) तथा पराविद्या (Spiritual Knowledge)

दोनों को सीखकर लोक-परलोक में आनन्द करता है --

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।"

(ईशो0, 11)

वैदिक अध्यापन-पद्धति में आगमन पद्धति (Inductive Method) तथा निगमन पद्धति (Deductive Method) का भली-भाँति प्रयोग किया गया है। गोपालन भी शिक्षा का एक अंग था। "तत्त्वमसि" यह आगमन पद्धति का तथा "सदेवेदमग्र आसीत्" यह निगमन पद्धति का दृष्टान्त है। दीक्षान्त भाषण के समय उससे यह आशा की जाती थी कि जो कुछ उसने पढ़ा है, उस पर वह अमल भी करेगा --

"सत्यं वद। धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । --- सत्यान्ना प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्। --- मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। --- एष आदेशः, एष उपदेशः, एषा वेदोपनिषद्, एतदनुशासनम्।"

(तैत्ति0, 7·11·1,2,3,4)

गुरु को इसीलिए आचार्य कहते थे क्योंकि वह शिष्यों को सदाचरण सिखलाते थे - "आचारं ग्राहयतीति आचार्यः"।

विद्या और तप से प्राणियों की आत्मा शुद्ध होती है तथा वाणी का संयम भी प्राप्त होता है --

"विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति"

(मनु0, 5·109)

"वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते"

(नीतिशतक, 15)

अतः बालकों को पढ़ाना अत्यावश्यक है -

"माता शत्रु: पिता वैरी येन बालो न पाठित:"

(चाणक्य, 9)

जिससे वह बड़ों के सुचरितों पर चले, दुराचरणों को कभी न अपनावें --

"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि"

(तै0शिक्षा 11)

शिष्यों को वृद्धों की सेवा करने की शिक्षा भी दी जाती थी जिससे उनकी विद्या, मनोबल, आयु और यश में पर्याप्त वृद्धि होती थी --

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन: ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ।"

(मनु0, 2·121)

वैदिक-शिक्षा पद्धति में स्त्री-शूद्र सबको पढ़ने का समान अधिकार था। मन्त्र द्रष्टव्य है --

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य: ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।"

(यजु0, 26·2)

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्"

(अथर्व0, 3·24·11·18)

शिक्षा प्राप्ति के लिए आहार की शुद्धि परमावश्यक है। क्योंकि आहार शुद्धि से ही सत्व- शुद्धि सम्भव है --

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि:, सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति:"

(छा0, 7·26·2)

वर्तमान शिक्षा केवल लौकिक है। वस्तुत: मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक दोनों शिक्षाओं की महती आवश्यकता है --

"अन्धन्तम: प्रविशन्ति ये विद्यामुपासते"

(यजु0, 40·12)

"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया मृतमश्नुते"

(यजु0, 40·14)

वैदिक शिक्षा का प्रथम पाठ यही है कि संसार परमात्मा से ओत-प्रोत है और हम त्यागपूर्वक ही सब चीजों का उपभोग करें --

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद्धनम् ।"

(यजु0, 40·1)

वैदिक शिक्षा का द्वितीय पाठ है कर्म --

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा: ।"

(यजु0, 40·2)

वेद में प्रश्नोत्तर शैली द्वारा शिक्षण का प्रकार दर्शाया गया है। यथा --

"आ शिक्षायै प्रश्निनम् उपशिक्षाया अभिप्रश्निनम्"

(यजु0·30·10)

"कस्त्वा युनक्ति - स त्वा युनक्ति
कस्मै त्वा युनक्ति - तस्मै त्वा युनक्ति" ।

(यजु0, 1·6)

"कोऽसि- कतमोऽसि - कस्याऽसि को नामाऽसि"

(यजु0, 7·29)

"क: स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुन: ।
किं स्विद्धिमस्य भेषजं किमावपनं महत् ।।"

(यजु0, 23·45)

"सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुन: ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ।।"

(यजु0, 23·46)

वेद ने शिक्षा के लिए दर्शन एवं श्रवण-शक्ति को बहुत अधिक महत्त्व दिया है -- "प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शनम्"। इस प्रकार दर्शन, श्रवण, प्रश्न, मननादि की शिक्षा से ज्ञान की पूर्णता और परिपक्वता होती है।

आज की शिक्षा-पद्धति में अर्थ एवं काम-विषयक शैक्षिक-विषयों का ही समावेश है और उनको ही अध्ययन होता है। धर्म तथा मोक्ष इन दो विषयों का शिक्षण नहीं होता है। मोक्ष का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा से है तथा धर्म का सम्बन्ध बुद्धि से है। अर्थ से शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं अर्थ से उपार्जित काम से मन की तृप्ति तक ही गति हो पाती है। फलत: शिक्षा में धर्म और अर्थ दोनों का समावेश होने से उनके फलरूप काम और मोक्ष सहज ही प्राप्त हो सकते है और मनुष्य की परमोन्नति भी हो सकती है।

वेद के अंग के रूप में शिक्षा को हमारे शास्त्रों में प्रथम स्थान पर रखा गया है तथा उसे वेद का प्राणरूप कहा गया है, "शिक्षा प्राणं तु वेदस्य" (पा०शिक्षा, श्लोक 42)। सायण के शब्दों में स्वर,वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा को शिक्षा कहते हैं --

"स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा"

(ऋ०,भा०भू०,पृ० 49) ।

पाणिनीय शिक्षा तथा व्यास-शिक्षा शिक्षा-ग्रन्थों में सर्वप्रमुख हैं। शिक्षा के छ: अंग तैत्तिरीय उपनिषद् (1·2) में निम्नवत् बताये गये हैं --

"वर्ण:,स्वर:,मात्रा,बलम्,साम,संतान:,इत्युक्त:,शीक्षाध्याय"

वैदिक शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य आत्मतत्त्व का सम्बोध ही है, क्योंकि "इह चेदवेदीत् अथ सत्यमस्ति, न चेदवेदीत् महती विनष्टि:" । मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से लौकिक-सम्पत्ति न माँगकर आध्यात्मिक सम्पत्ति माँगी थी, "यन्नु म इयं सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात् स्यामहं तेनामृता"।

तब याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को "द्वे विद्ये वेदितव्ये परा च अपरा च" की शिक्षा दी थी। वस्तुत: आत्मतत्त्व-वेत्ता के आगे भौतिक जगत हाथ जोड़कर नतमस्तक हो जाता है। इस प्रेयमार्ग और श्रेयमार्ग में से सुधीजन श्रेय मार्ग का ही वरण करते हैं --

"नाल्पे सुखमस्ति भूमा वै सुखम्" ।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में ऐसे राष्ट्र की कल्पना की गई है जिसका स्वरूप सर्वाङ्गीण है। अर्थात् चाहे समाज हो या धर्म, राजनीति हो या विज्ञान, हर दृष्टि से वैदिक राष्ट्र दिव्य राष्ट्र लगता है। अनेक भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने वेद में मौलिक ज्ञान-विज्ञान की सत्ता की सराहना की है तथा वेदों में भारतीय मनीषा के श्लाघ्यतम प्रतिफलन को आँका है। भूमि को माता मानने की भावना हमें सर्वप्रथम वेदों में मिलती है, इस प्रकार सारे भारतवासियों में भ्रातृ-भावना भरने का प्रयास किया गया है। यहाँ के वन, नदी, पर्वत और समुद्रों की सुरम्यता को काव्यमयी भाषा द्वारा उजागर किया गया है। यह संसार प्रभु का काव्य है, जो कभी मृत किंवा जीर्ण नहीं होता। वेदों में राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए परस्पर एक रहने और सव्रत रहने की भी कामना की गई है। शत्रुओं को, चाहे वह अध्यात्म-स्तर पर हों या भौतिक स्तर पर, उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने की भी कामना की गई है; इसके लिए राष्ट्रनायक की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। देश के बहुमुखी कल्याण के लिए यज्ञ-यागादिकों को भी करने की प्रेरणा दी गई है। विविध भाषा-भाषियों व विभिन्न मत-मतान्तरों के मध्य आपसी भाईचारा व सौहार्द रखने की प्रेरणा वेदों में यत्र-तत्र-सर्वत्र प्राप्त होती है। क्योंकि राष्ट्र समष्टिनिष्ठ है जबकि धर्म और भाषा व्यष्टि तक ही सीमित रहने से एक सीमा तक उपेक्षित किए जा सकते हैं।

स्वराज्य शब्द भी वेदों की देन है। संस्कृत और संस्कृति का गठ-जोड़ भी हमें वेदों में ही मिलता है। कृषि करने के लिए वेद में जगह-जगह

प्रेरित किया गया है।

वेदों में मातृभूमि, मातृसंस्कृति और मातृभाषा के प्रति अत्यन्त समादर प्रकट किया गया है। गायों को अघ्न्या कहकर उन्हें न मारने की सलाह भी दी गई है।

सर्वत्र राष्ट्रमंगलकामना व अन्ताराष्ट्रियमंगलकामना की प्रचुरता हमें वेदों में दिखाई देती है। वेद सार्वजनीन और सार्वभौम हैं। वेदों से सारे संसार का कल्याण होता है। वेद मानव-चिन्तनधारा के अक्षय कोष है जिनमें मानव जीवन के विविध पहलुओं के दर्शन होते हैं जिनसे यह विस्पष्ट है कि हमारे मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण राष्ट्रीय भावना के प्रति पूर्णतया सजग रहे हैं। वैदिक राष्ट्र सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय की भावना से ओत-प्रोत है। हमारा यह नैतिक दायित्व है कि हम राष्ट्र के विकास में अहर्निश सजग रहकर सक्रिय योगदान दें और राष्ट्रीय धारा से अलग होकर परमात्मा के कोप के भाजन न बनें। हम भद्र और शिव बनकर ही वैदिक मार्ग के अनुयायी हो सकते हैं क्योंकि वेद इन्हीं का पोषक और संवर्धक है। वेद अस्पृश्यता-निवारण, नारी-शिक्षा, विधवा-विवाह, संस्कृतभाषा या राष्ट्रभाषा, गोरक्षा, राष्ट्रिय-सम्पन्नता, राजनैतिक सम्प्रभुता और अन्नबहुलता तथा स्वदेशी राज्य की प्रशंसा के गीत गाते रहे हैं। इन्हीं का प्रचार और प्रसार करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। वेदों का अनन्त ज्ञान वह भी छन्दोमयी भाषा में, यह किसी सामान्य मस्तिष्क का कार्य न होकर परम मनीषी ऋषियों की देन है, जो भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं।

यों तो साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य आदि शब्द वैदिक साहित्य की ही देन है पर उसकी सबसे बड़ी देन राष्ट्र शब्द है इसमें देश, राज्य, जाति और संस्कृति निहित है। अतः हमारी परम उत्कण्ठा है कि-

"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः" (यजु० 9·23)

राष्ट्र एकता का प्रतीक है। उसकी भक्ति करना प्राणी का परम पुनीत कर्तव्य है। यह निष्ठा हमें विभाजन से दूर हटाकर भावनात्मक एकता में प्रतिष्ठित करती है। अन्त में वैदिक राष्ट्रगान के साथ ही हम अपने विषय का पटाक्षेप करते हैं ---

"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्, दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽ-नड्वान्, आशु: सप्ति:, पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठा, सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्, निकामे निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्ताम्। योगक्षेमो न: कल्पताम्।"

(यजु0. 22·22)

सहायक ग्रन्थ-सूची

सहायक ग्रन्थ-सूची

ऋग्वेद संहिता : सातवलेकर, सं० 1940, स्वाध्याय मण्डल द्वारा प्रकाशित

यजुर्वेद संहिता : वेबर, सं० 1972, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।

अथर्ववेद संहिता : सं० श्रीराम शर्मा, 1960, गायत्री तपोभूमि, मथुरा.

वैदिक सम्पदा : वीरसेन वेदश्रमी, गोविन्द राम हासानन्द, दिल्ली-6.

वेदामृतम् : डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, (भाग 1-8), 1986, विश्व भारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर वाराणसी ।

वैदिक वाङ्मय का इतिहास : भगवद्दत्त, 1974, प्रणव प्रकाशन, दिल्ली, 26.

प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग : सत्यकेतु विद्यालंकार, 1986, सरस्वती सदन दिल्ली-29.

सत्यार्थ प्रकाश : दयानन्द, 1974, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा.

शुद्ध मनुस्मृति :

वैदिक निबन्धावली : मुंशीराम शर्मा, 1963, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी-1.

वेदार्थ चन्द्रिका : मुंशीराम शर्मा, 1967, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी-1.

वैदिकी : मुंशीराम शर्मा, 1972, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर-12.

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार : सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, 1975, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली.

वैदिक साहित्य और संस्कृति बलदेव उपाध्याय, 1967, शारदा मन्दिर, वाराणसी ।

महाभारत वचनामृतम् : वासुदेव शास्त्री, सं0 1983, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली-7.

वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, भाग1-3 : प्रियव्रत सिद्धान्तालंकार, 1983, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली

वेदों में भारतीय संस्कृति : आद्यादत्त ठाकुर, 1967, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

वैदिक साहित्य : रामगोविन्द त्रिवेदी, 1950, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना : हरिनारायण दीक्षित, 1984, देववाणी परिषद्, दिल्ली.

उपनिषत्सु कर्मवाद : : डॉ0 जातवेद त्रिपाठी, 1989, परिमल प्रकाशन, दिल्ली-7.

शतपथ-ब्राह्मण(1-5 भाग) : 1987, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-7.

ऋग्यजु: सामार्थ्व सूक्ति-सुधा : जगदीश्वरानन्द, 1983, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-6.

भारतीय संस्कृति : डॉ0 राजकिशोर सिंह, 1982, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2.

निरुक्त : भगवद्दत्त, सं0 2021, रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर.

समाज और धर्म : राधाकृष्णन्, 1963, राजपाल एण्ड संस,

दिल्ली.

विमानसंहिता	:	भरद्वाजकृत
शुद्ध महाभारत	:	ईश्वरी प्रसाद, सं0 2034, सत्य प्रकाशन, मथुरा.
भगवद्गीता	:	गीताप्रेस, गोरखपुर
वैदिक राजनीतिशास्त्र	:	वी0पी0 वर्मा
वैदिकसंहितासु समुपलब्धानां देवीनामध्ययनम्	:	रणविजय सिंह, 1986, शोध प्रबन्ध, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
Indian Culture through the Ages(1-2 Parts)		S.V. Venkateshvar, 1986, Gyan Publishing House, Delhi-7.
Dhama & Society	:	G.H. Mess, 1986, Gyan Publishing House,Delhi-7.
Socio-Economic Life of India in the Vedic Period	:	H.P.Chakraborty,1986, Sanskrit Pustak Bhandar, Calcutta-6.
Vedic India	:	H.P. Chakraborty, 1981, Sanskrit Pustak Bhandar, Calcutta,6.
Sciences in the Vedas	:	Vaidyanath Shastry, 1970, Arya Pratinidhi Sabha,Delhi-1.
Regveda,Mahabharat	:	M.N. Dutt, 1988, Parimal Publications,Delhi.
